पुष्पधनु

पुष्पधनु

प्रबोधकुमार सान्याल



लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद - १



अनुवादक : हंसकुमार तिवारी

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग,
इलाहाबाद-१ द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण : १९७७

कामेश्वर नाथ भार्गव
सुपरफ़ाइन प्रिंटर्स,
इलाहाबाद-३ द्वारा मुद्रित

मूल्य : १८.००

पुष्पधनु



एक

मिहिजाम की सूनी बैहार और रास्ते के किनारे पत्ते बहुत झरे। सुबह की हवा में अभी भी सरदी की चुभन रहती है। लेकिन बेला जितनी ही बढ़ती है, धूपतपा उदास वसंत उतर आता है।

सूखे खेत-पथार धू-धू करते हैं। पश्चिम की ओर रेल की लाइन जामताड़ा से आगे सीधे जसिडिह की ओर चली गई है और उसके दूसरी तरफ चित्तरंजन का नया उपनिवेश बन रहा है। लेकिन इधर पूरब के इलाके में अभी भी बस्तियाँ बहुत कम हैं, अभी भी इस तरफ के रास्तों और प्रांतरों में काफी लोग-बाग नहीं नजर आते।

जलवायु-परिवर्तन के लिए थोड़े-से जो लोग आए थे, करीब-करीब वे सभी अब जा चुके हैं। दो-एक घर रह गए हैं, ये लोग भी जाने-जाने को हैं। इधर बिजली नहीं आई है, कुएँ के अलावा पानी का अच्छा इन्तजाम नहीं है। जाड़े की साग-भाजी खत्म होने आई,—सनीचर और मंगल को लगने वाली संताली हाट के सिवाय और कहीं खास कुछ नहीं मिलता। इन कारणों से छोटे-से इस स्वास्थ्यकर शहर का आकर्षण बहुत घट गया है।

स्टेशन की ओर से कच्चा-पक्का एक रास्ता टेढ़ा-मेढ़ा होता हुआ खुली जगह के किनारे-किनारे पूरब की ओर आया है। बीच में संताल मजदूरों की एक-आध बस्ती मिलती जरूर है, लेकिन रास्ता सीधे एक बगीचे वाले मकान के बगल से उतर कर नई कॉलोनी की तरफ चला गया है।

बगीचे वाले इस मकान में अभी भी स्त्री-पुरुषों की एक टोली रह रही है। ये सब 'गीताली संघ' के सदस्य हैं, लेकिन गृहस्थ नहीं हैं। ये लोग साल में दो-तीन बार बाहर कहीं डेरा डालते हैं, अब की मिहिजाम आए हैं। दल के साथ मैनेजर रमेश बाबू और परिचालिका ईशानी राय हैं। लगभग डेढ़ महीने से इन लोगों की चहल-पहल होती रही, अब इनके

जाने का समय हो आया है। इनसे यहाँ का पथ-प्रांतर गुलजार रहता है। ये घाट-बाट में गीत गाते फिरते हैं, झुंड बनाकर दूर संताल-टोले की ओर चले जाते हैं और हफ्ते में दो बार हाट से जिस भी कीमत पर आमिष-निरामिष जो भी मिल जाता है, लूट लाते हैं। उनके साथ तीन-चार नौकर हैं, रसोइया है, वर्तन माँजने वाली नौकरानी है। उन्हें कोई फिक्र नहीं है। सवेरे से उनके कमरों में गाना-बजाना चलता है; दोपहर में लूडो-कैरम-ताश-पचीसी, तीसरे पहर मैदानों में दौड़-धूप और साँझ से नाच और रिहर्सल। उनकी सेहत की खूबसूरती देखकर रोमांच हो आता है। रात की सरदी में भी स्त्रियों के बिखरे बालों की वहार में पसीना झलकता है और पुरुषों के बटन खुले कुरते भी पसीने से तर-बतर रहते हैं।

इन सब कामों के साथ उन्हें एक और काम था। वह यह कि कौन नया चेंजर आया और कौन-कौन वापस चला गया, इसका हिसाब रखना। नया कोई आता तो उनमें से बहुतेरे जबरदस्ती जाकर उससे परिचय कर आते। उसी पर गप्पें लड़तीं, उसी पर टीका-टिप्पणी चला करती। किसी में कोई खासियत नजर आती, तो उस पर उनका अटूट ध्यान लगा रहता। इसी तरह से उनके डेढ़ महीने यहाँ निकल गए।

उनके जाने का समय हो आया था।

ठीक ऐसे ही समय एक दिन साँझ से पहले कलकत्ते से एक्सप्रेस गाड़ी मिहिजाम आई। पश्चिम के प्रांतर के छोर पर उस समय सूरज डूब रहा था। बगीचे के सामने खुली जगह में उन लोगों की महफिल जुटी थी। तभी ठीक रास्ते के किनारे उन लोगों ने देखा कि गठरी-मुटरी लिए दूर से कोई गृहस्थ धीरे-धीरे चले जा रहे हैं। इसी गाड़ी से आये हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। उनके पीछे दो कुली हैं। फिर नया चेंजर आया शायद !

बड़ी दूर से वे करीब आए। एक खूबसूरत नौजवान, सर पर घने घुंघराले बाल, कंधे पर एक नन्हा-सा बच्चा। उसके पीछे नंगे पाँवों घाँघरावाली एक बच्ची। क्यों, चप्पल के एक जोड़े की ऐसी क्या कीमत लगती ! उस बच्ची के पीछे दुबली-पतली एक बीमार बहू; बदन पर ढेरों गरम कपड़े, मगर उसके भी पैरों में जूता नहीं। उन्नीसवीं सदी की मनोवृत्ति, और क्या ! बहू की गोद में भी एक शिशु। हाय भगवान्, बंगाली ही बना रक्खा, आदमी नहीं बनाया।[1] दूर से भी साफ दिखाई

१. रेखेछो बांगाली कोरे मानुष करोनि। —रवीन्द्रनाथ

दे रहा था, युवक तंदुरुस्त है, लेकिन बाकी सब बीमार, लिकलिक ।

और आगे बढ़ आए वे। साथ में काफी गठरी-मोटरी। रस्सी में बँधा मैला बिस्तर, अंदर से फटी कथरी झूल रही थी। रंग उड़ा हुआ बक्सा, बालटी, बोरिया, कपड़े की गाँठ। दोनों कुली बोझ से लदे। युवक के एक कंधे पर कंबल, उसके साथ चमड़ा बँधा एक कैमरा लटक रहा था, दूसरे कंधे पर बच्चा। बगल में छाता के साथ एक लाठी बँधी। परदेस की बात, एक लाठी तो चाहिए ही। छाता—कहीं बारिश हो। लेकिन छाते की मूठ से एक कालिख लगी मैली लालटेन झूल रही थी। भले आदमी के दाएँ हाथ में एक सूटकेस। जेब से जाने क्या तो बाहर निकलता आ रहा था ! बाँस की बाँसुरी लग रही थी ! लेकिन छाते की मूठ से मैली लालटेन जो झूल रही थी। हेना मित्तिर हँसी के मारे जैसे लोट पड़ेगी। हँसी में छूत होती है—रोबिन सामंत और मंजुश्री, दोनों ने रूमाल और आँचल से अपने मुँह को दबा लिया।

वह छूत एकाएक ईशानी जैसी गंभीर प्रकृति की स्त्री को भी लगी। वह किधर को अपना मुँह फेरे ? तब तक वे लोग करीब आ पहुँचे थे। लेकिन ईशानी ने भरसक अपनी हँसी को जब्त करके उन लोगों पर डाँट बताई, 'ऐ, हो क्या रहा है ?'

सामंत और मंजु उठकर अंदर भाग गए। ईशानी सिर झुकाए गंभीर बनी रही। वे बगल से निकल नहीं जाते तो मान बचाना शायद मुश्किल होता। परिहास के रस से मधुचक्र चंचल हो उठा था। उनमें से एक ने दबे गले से दो पंक्ति कविता पढ़ दी—

कैसी अनुपम शोभा, कैसा अरे अनोखा साज ।
मैं तो सोच रहा था जाने हैं कोई महराज ।।

माजरा उस भले आदमी की नजर से बचा नहीं। लेकिन सभ्य आदमी के आचरण में एक बाहरी पालिश रहने से बहुत अशोभन भी छिप जाता है, शायद हो कि यह बात वह भला आदमी भी जानता है।

जो भी हो, बगल से गुजरते हुए वह सज्जन अचानक जरा ठिठक गये। सचमुच ही छाप मारा-सा चेहरा। अपने बारे में गजब की उदासीनता। छाते की मूठ से लालटेन झूल रही है, उस कौतुक का जरा भी ख्याल नहीं। नहीं, उम्र भी ज्यादा नहीं है। रूप से उसकी लंबाई मेल खाती है। खूबसूरत नौजवान !

उसने पूछा—इधर माधवी कुंज कौन-सा मकान है ?

ईशानी ने मुँह उठाकर देखा। एक स्त्री और एक पुरुष प्रायः एक ही साथ बोल उठे, 'बस, यह रहा। दीवाल के बगल से बढ़ जाइए, तीसरा मकान। विपिन सेन का मकान है। सामने ही बेर का पेड़।'

किसी और ने कहा, 'टूटा हुआ फाटक, गुलाबी रंग की दीवाल।'

'चलिए मैं दिखा देता हूँ।'

एक तरुण उठ खड़ा हुआ।

रमेन बाबू अंदर से बाहर आ रहे थे। उन्होंने पूछा, 'कलकत्ते से आ रहे हैं, क्यों ? कब तक रहिएगा ?'

—'जी, बस कुछ दिन रहना है।'

—'ठीक है। कोई जरूरत हो तो कहिएगा, हम लोग हैं। और कुछ दिन पहले आए होते तो अच्छा था। यहाँ की सरदी अच्छी होती है। ठीक से पचता-वचता है। आपका शुभ नाम ?'

—'शांतनु चौधरी।'

—'बड़ा अच्छा नाम है। बच्चों के लिए, बहूजी के लिए कभी कोई जरूरत पड़े तो बताइएगा। हम लोग अभी हैं। साथ में छोटे बच्चे हैं, दूध की तो जरूरत होगी ? आप जाइए, मैं अभी भिजवा देता हूँ। अरे, आप के पास तो कैमरा देख रहा हूँ, तसवीर का शौक है ? जेब में बाँसुरी है, बजाते हैं ?'

शांतुन सिर्फ जरा मुस्कुराया। उसके बाद धन्यवाद देकर आगे बढ़ा। कुछ दूर जाकर दीवाल के बगल में पहुँच कर बहू ने धीमे से कहा, 'जानती होती कि सड़क की कुतिया-सी घूमने की नौबत आएगी, तो तुम्हारे साथ नहीं आती।' उसके चेहरे पर बेहद खीज और असंतोष झलक उठा था।

साँझ के बाद गीताली संघ के सदस्य अपने कमरों में चले गए, ऐसे में शांतनु फिर बगीचे के फाटक पर आ खड़ा हुआ। उसके दोनों हाथ में दो बाल्टियाँ। लेकिन उन प्रवीण-से भले आदमी रमेन बाबू पर कहीं नजर नहीं पड़ रही थी। शांतनु इधर-उधर ताकने लगा। अंदर के हर कमरे में एक-एक पेट्रोमेक्स था, जिसकी तेज रोशनी बाहर छिटकी पड़ रही थी। उधर रसोई की ओर से किसी-न-किसी कलकंठी की खुली हँसी बीच-बीच में गूँज उठती थी।

शांतनु लौटे कि रुका रहे, यह सोचने लगा—पानी के बिना तो उसका काम ही नहीं चलने का, कि ऐन वक्त पर ईशानी बाहर निकली।

शांतनु आगे बढ़कर बोला, 'जी मैं तो अजीब परेशानी में पड़ गया हूँ, वहाँ पानी-वानी कुछ नहीं है। मैं दो डोल पानी ले जाऊँगा।'

ईशानी ने कहा, 'क्यों, उस मकान में कुआँ नहीं है?'

—'कुआँ बगल वाले मकान में है, मगर माली ताला लगाकर जाने कहाँ चला गया है। आप कुआँ बता दीजिए मैं भर लूँगा।'

ईशानी बोली, 'उतने बड़े-बड़े डोल, आपसे कैसे भरते बनेंगे? पानी बहुत नीचे है।'

शांतनु ने कहा, 'उसकी चिन्ता आप न करें, मैं भर लूँगा।'

मुँह फेर कर ईशानी ने आवाज दी, 'नन्दू जरा बाबू के यहाँ दो डोल पानी तो दे आ। न-न आप छोड़ दीजिए। आपके ताक़त खूब है, मान गई मैं।'

नन्दू आकर दोनों बालटी उठा ले गया।

शांतनु ने कहा, 'तो आपसे एक अनुरोध और कर लूँ। यहाँ मिट्टी के तेल की दुकान किधर है, मुझे बता दीजिए। हमारे साथ मोमबत्ती थी, मिल नहीं रही है।'

—'तो यह कहिए कि अँधेरे में ही हैं?'—ईशानी जरा चिंतित-सी हो पड़ी बोली, 'अच्छा रुकिए, मैं अभी आई।'

तीनेक मिनट के बाद उसने एक बोतल मिट्टी का तेल लाकर शांतनु को दिया। बोली, 'दूकान तो है, लेकिन स्टेशन से भी आगे। आप अब अभी वहाँ जाने की कोशिश न करें।'

पानी की बालटियाँ लेकर नन्दू पहले ही चला गया था। अब शांतनु ने डेग उठाया। लेकिन डेग उठाते ही जाया नहीं जा सकता,—अपने उन दो खूबसूरत हाथों से जो अपरिचित स्त्री मिट्टी के तेल की बोतल ले आई है, उसे फौरन तकलीफ उठाकर साबुन से अपना हाथ धोना पड़ेगा, इस शर्म की अनुभूति ने शांतनु को गाड़-सा दिया। धन्यवाद जताना हास्यास्पद है, कृतज्ञता जाहिर करना तो और भी बेमानी। लिहाजा शांतनु ने महज एक बार मुड़कर देखा।

ईशानी ने कहा, 'और भी कोई जरूरत हो, तो कहिए?'

शांतनु सकपका गया। फिर बोला, 'इसके पहले आप लोगों ने बच्चों के लिए दूध भेज दिया, मैं अभी मिट्टी का तेल लिए जा रहा हूँ—इन सब चीजों की कीमत तो है आखिर! इसी से शर्म आ रही है।'

ईशानी जरा हँसी। बोली, 'इधर बहुत बार पानी भी दाम देकर

खरीदना पड़ता है। असमय का पानी—दाम बहुत है।'

बात किस वजन की हुई, समझ में नहीं आई। शांतनु ने फिर उसे निहारा। उसके निरुपाय से चेहरे को देखकर ईशानी को कुछ कौतुक हुआ। लेकिन तुरंत ही वह बोली, 'तो आप जाइए, बच्चे सब अँधेरे में हैं।'

शांतनु ने अपने को धिक्कारा। स्त्रियों के सामने खड़े होकर उसे अभी बात करना नहीं आया। मौके पर एहसान पाकर वह नकद दाम से उसे चुकाना चाहता है, अपने साथ वह यही असत् शिक्षा ले आया है!

दो दिन के बाद उसने रमेन बाबू के साथ फिर ईशानी को देखा। फूलों की टोकरी लिए पीछे-पीछे नौकर था। स्टेशन से लौट रहे थे वे।

'अरे वाह साहब' रमेन बाबू बोल उठे 'खूब जम बैठे आप भी।'

शांतनु नजदीक आया। बोला, 'जी हाँ।'

—'ठीक है। महीना भर रह जाइए। यहाँ हजम अच्छा होता है।'

'रुकिए भी आप!' ईशानी ने टोका, 'किसी को देखते ही यों हजम वाली बात तो न कहा कीजिए।'

रमेन बाबू ने कहा, 'अरे, वही तो यथार्थ है। बदहजमी की शिकायत होती तो तुम्हारे अपने चेहरे में यह लावण्य कहाँ होता? अपने गीत में यह मिठास कहाँ से पातीं तुम? यह जो फल की टोकरी साथ जा रही है, यह किसी काम भी आती? हाजमा बढ़ता है, तभी तो मिहिजाम इतना मनोहर है। तुम सब बच्चे हो अभी। खैर, आप करते क्या हैं?'

शांतनु ने कहा, जी, 'खास कुछ नहीं।'

'लगता है गाने-बजाने का शौक है! उस दिन साथ में बाँसुरी तो देखी थी। तो वह क्या आखिर रक्खी ही रहेगी?'

शांतनु विनय से सिर्फ जरा मुस्कराया।

—'ठीक है, ठीक है। कैमरे से तसवीर लेते हैं। वह भी तो एक शौक ही है। कुछ-न-कुछ करते रहना चाहिए। जा कहाँ रहे हैं?'

शांतनु ने कहा—'जरा बाजार की तरफ जा रहा हूँ।'

ईशानी ने कहा—'यह तो बाजार का रास्ता नहीं है। आपको बहुत घूम कर जाना होगा।'

रमेन बाबू ने कहा, 'अजी, ये घूमने को ही तो निकले हैं। तुम्हें भी तो तेल-साबुन खरीदने के लिए जाना है। इन्हीं के साथ चली जाओ न।'

'चलिए।'—ईशानी ने शांतनु की ओर ताका। रमेन बाबू नौकर के साथ डेरे की ओर चल दिए—बीच में एक व्यवधान रखकर शांतनु ईशानी के साथ चलता रहा। वातावरण में स्वच्छंद स्वाधीनता का उल्लास था।

धूप तीखी हो उठी थी। कुछ दूर चलने पर शांतनु ने कहा, 'आपको तकलीफ ही दी मैंने।'

मुस्कुराकर ईशानी बोली, 'न-न तकलीफ कैसी! लेकिन आपका वह छाता साथ रहता तो इस धूप में मेरा सर बचता!'

ये सब बातें बड़ी पेचीदी हैं। शांतनु इतना समझता नहीं। जरा देर में वह बोला, 'आपकी टोली तो काफी बड़ी है। यहाँ असुविधा नहीं हो रही है? मसलन, चीजों की यहाँ इतनी कमी है।'

'मेरे दल के किसी को देखने से आपको यह नहीं लगेगा कि यहाँ किसी को असुविधा हो रही है। बल्कि सब की सेहत ही बन गई है। आइए, इस बगीचे के पास ले चलें।'

खुली जगह का रास्ता एक समय सँकरा होकर बगीचे की ओर मुड़ गया। यहाँ गुलाब की खेती होती है। यहाँ से फूल कलकत्ता भेजे जाते हैं।

टप् से ईशानी बोल उठी, 'आपने उस दिन का कर्ज नहीं चुकाया?'

शांतनु ने हँसकर कहा, 'कर्ज? ओ, कहिए, क्या करना होगा?'

ईशानी की हँसी से रास्ता गूँज उठा। कौतुक महसूस करके शांतनु ने कहा, 'मैंने सोच रक्खा है, एक तरकीब से आप लोगों का कर्ज चुकाऊँगा।'

ईशानी ने मुँह फेर कर देखा—'क्या?'

—'अपने कैमरे से आपकी तसवीर खींच दूँगा।'

—'हम लोगों पर अपने कच्चे हाथ को माँज लेना चाहते हैं, क्यों?'

'कच्चा हाथ!' शांतनु हँस उठा—'बहुतेरे अखबार वाले मेरी खींची हुई तसवीर छापते हैं। हाथ अगर निहायत कच्चा होता, तो वे तसवीर नहीं लेते। मुझे इजाजत दीजिए, पहले मैं आपकी तसवीर लूँ।'

ईशानी ने कहा, 'हमारे साथ और भी स्त्रियाँ हैं। उन्हें छोड़कर सिर्फ मेरी तसवीर लेना अच्छा नहीं होगा। और फिर मैं अपनी तसवीर खींचने भी नहीं देती हूँ।'

शांतनु कुछ देर चुपचाप चलता रहा।

ईशानी बोली, 'आपसे जान-पहचान हुई, इसकी खुशी हुई। लेकिन

खरीदना पड़ता है। असमय का पानी—दाम बहुत है।'

बात किस वजन की हुई, समझ में नहीं आई। शांतनु ने फिर उसे निहारा। उसके निरुपाय से चेहरे को देखकर ईशानी को कुछ कौतुक हुआ। लेकिन तुरंत ही वह बोली, 'तो आप जाइए, बच्चे सब अँधेरे में हैं।'

शांतनु ने अपने को धिक्कारा। स्त्रियों के सामने खड़े होकर उसे अभी बात करना नहीं आया। मौके पर एहसान पाकर वह नकद दाम से उसे चुकाना चाहता है, अपने साथ वह यही असत् शिक्षा ले आया है!

दो दिन के बाद उसने रमेन बाबू के साथ फिर ईशानी को देखा। फूलों की टोकरी लिए पीछे-पीछे नौकर था। स्टेशन से लौट रहे थे वे।

'अरे वाह साहब' रमेन बाबू बोल उठे 'खूब जम बैठे आप भी।'

शांतनु नजदीक आया। बोला, 'जी हाँ।'

—'ठीक है। महीना भर रह जाइए। यहाँ हजम अच्छा होता है।'

'रुकिए भी आप!' ईशानी ने टोका, 'किसी को देखते ही यों हजम वाली बात तो न कहा कीजिए।'

रमेन बाबू ने कहा, 'अरे, वही तो यथार्थ है। बदहजमी की शिकायत होती तो तुम्हारे अपने चेहरे में यह लावण्य कहाँ होता? अपने गीत में यह मिठास कहाँ से पातीं तुम? यह जो फल की टोकरी साथ जा रही है, यह किसी काम भी आती? हाजमा बढ़ता है, तभी तो मिहिजाम इतना मनोहर है। तुम सब बच्चे हो अभी। खैर, आप करते क्या हैं?'

शांतनु ने कहा, जी, 'खास कुछ नहीं।'

'लगता है गाने-बजाने का शौक है! उस दिन साथ में बाँसुरी तो देखी थी। तो वह क्या आखिर रक्खी ही रहेगी?'

शांतनु विनय से सिर्फ जरा मुस्कराया।

—'ठीक है, ठीक है। कैमरे से तसवीर लेते हैं। वह भी तो एक शौक ही है। कुछ-न-कुछ करते रहना चाहिए। जा कहाँ रहे हैं?'

शांतनु ने कहा—'जरा बाजार की तरफ जा रहा हूँ।'

ईशानी ने कहा—'यह तो बाजार का रास्ता नहीं है। आपको बहुत घूम कर जाना होगा।'

रमेन बाबू ने कहा, 'अजी, ये घूमने को ही तो निकले हैं। तुम्हें भी तो तेल-साबुन खरीदने के लिए जाना है। इन्हीं के साथ चली जाओ न।'

'चलिए।'—ईशानी ने शांतनु की ओर ताका। रमेन बाबू नौकर के साथ डेरे की ओर चल दिए—बीच में एक व्यवधान रखकर शांतनु ईशानी के साथ चलता रहा। वातावरण में स्वच्छंद स्वाधीनता का उल्लास था।

धूप तीखी हो उठी थी। कुछ दूर चलने पर शांतनु ने कहा, 'आपको तकलीफ ही दी मैंने।'

मुस्कुराकर ईशानी बोली, 'न-न तकलीफ कैसी! लेकिन आपका वह छाता साथ रहता तो इस धूप में मेरा सर बचता!'

ये सब बातें बड़ी पेचीदी हैं। शांतनु इतना समझता नहीं। जरा देर में वह बोला, 'आपकी टोली तो काफी बड़ी है। यहाँ असुविधा नहीं हो रही है? मसलन, चीजों की यहाँ इतनी कमी है।'

'मेरे दल के किसी को देखने से आपको यह नहीं लगेगा कि यहाँ किसी को असुविधा हो रही है। बल्कि सब की सेहत ही बन गई है। आइए, इस बगीचे के पास ले चलें।'

खुली जगह का रास्ता एक समय सँकरा होकर बगीचे की ओर मुड़ गया। यहाँ गुलाब की खेती होती है। यहाँ से फूल कलकत्ता भेजे जाते हैं।

टप् से ईशानी बोल उठी, 'आपने उस दिन का कर्ज नहीं चुकाया?'

शांतनु ने हँसकर कहा, 'कर्ज? ओ, कहिए, क्या करना होगा?'

ईशानी की हँसी से रास्ता गूँज उठा। कौतुक महसूस करके शांतनु ने कहा, 'मैंने सोच रक्खा है, एक तरकीब से आप लोगों का कर्ज चुकाऊँगा।'

ईशानी ने मुँह फेर कर देखा—'क्या?'

—'अपने कैमरे से आपकी तसवीर खींच दूँगा।'

—'हम लोगों पर अपने कच्चे हाथ को माँज लेना चाहते हैं, क्यों?'

'कच्चा हाथ!' शांतनु हँस उठा—'बहुतेरे अखबार वाले मेरी खींची हुई तसवीर छापते हैं। हाथ अगर निहायत कच्चा होता, तो वे तसवीर नहीं लेते। मुझे इजाजत दीजिए, पहले मैं आपकी तसवीर लूँ।'

ईशानी ने कहा, 'हमारे साथ और भी स्त्रियाँ हैं। उन्हें छोड़कर सिर्फ मेरी तसवीर लेना अच्छा नहीं होगा। और फिर मैं अपनी तसवीर खींचने भी नहीं देती हूँ।'

शांतनु कुछ देर चुपचाप चलता रहा।

ईशानी बोली, 'आपसे जान-पहचान हुई, इसकी खुशी हुई। लेकिन

यह फोटो-वोटो खींचने का शौक स्कूल के लड़के-लड़कियों का है। यह हमें नहीं सोहता।—चलिए'—

ईशानी आगे-आगे चली। शांतनु ने पीछे से कहा, 'मैंने आज तक किसी लड़की की तसवीर नहीं खींची है।'

—'नहीं ही खींची तो क्या!' ईशानी ने पलटकर ताका। लोग लड़कियों की तसवीरों का व्यापार करते हैं, आप वैसों के दल में नहीं ही रहें तो अच्छा! बाल-बच्चों को लेकर बाहर आए हैं, उनका शरीर-स्वास्थ्य ठीक करने की कोशिश कीजिए, वही ज्यादा अच्छा होगा।'

वे दोनों दक्खिन के रास्ते पर आ पहुँचे। यह रास्ता स्टेशन को चला गया है। यहाँ-वहाँ दो एक दूकानें। उन्हीं में से एक दूकान में ईशानी दाखिल हुई। शांतनु उसके पास जा खड़ा हुआ।

साबुन-वाबुन कुछ चीजें खरीद कर ईशानी बोली, 'आपको क्या लेना है, लीजिए!'

शांतनु ने कहा, 'मैं कुछ साग-भाजी खरीदूँगा।'

—'वह सब आप आज कहाँ पाएँगे? कल पैठ का दिन है। पैठ के सिवाय कहीं कुछ मिलने का नहीं। उस समय आपने हमारे मैनेजर से क्यों नहीं कहा? वह कोई इन्तजाम कर देते। बेचारी! मैं देखती हूँ, परदेस आकर आप सबको कष्ट ही दे रहे हैं! अब क्या लेकर घर जायँगे आप? और अब इतना कुबेर भी हो गया!'

ईशानी परेशान सी हो उठी।

शांतनु ने निरुपाय होकर कहा, 'जानता हूँ, लौटने पर घर में मेरे नसीब में नसीहत है! लेकिन मुझसे यह सब नहीं होता-हवाता।'

ईशानी चकित-सी होकर बोल उठी—'नहीं होता-हवाता? मतलब? दुनिया क्या इसके लिए माफ करेगी आपको? हाथ में कैमरा उठाए सिर्फ तसवीर खींचते फिरने से कहीं घर-गिरस्ती चलती है?

—'अब मैं चलूँ।' शांतनु ने आगे बढ़ना चाहा।

—'ठहरिए जनाब। बहादुरी न कीजिए।'—दूकानदार के पैसे चुका कर ईशानी जल्दी से निकल आई। बोली, 'चलिए। घर में तीन-तीन छोटे बच्चे हैं। उनके लिए दूध है?'

शांतनु ने कहा, 'है।'

—'लेकिन दूध होने से ही तो गिरस्ती नहीं चलेगी। रसोई के सरो-सामान चाहिए। मेरे साथ आइए। मैं आज भर का इन्तजाम कर दे

सकूँगी। आप बड़े अजीब आदमी हैं ! तीन-चार दिन आए हो गए और अभी तक गिरस्ती नहीं बसा पाए। जल्दी चलिए।'

ईशानी का चेहरा धूप से लाल हो उठा। बैहार का रास्ता सख्त ढेलों से भरा हुआ है। तेजी से चला नहीं जाता। बालों से कपाल पर पसीना ढुलक आया। बगीचे में पहुँचने में पंद्रह मिनट लग गए। उस दिन के लायक इन्तजाम हो गया।

शांतनु का नसीब ही खोटा है। किसी भी प्रकार से उसे व्यक्ति-स्वतंत्रता प्रकट करने का मौका नहीं मिलता। एकांत में बातचीत का अवसर भी हाथ आया, तो शुरू से आखीर तक फटकार, आदि से अंत तक हितोपदेश। वह अयोग्य है, बेवकूफ है, बेहिसाबी है। लेकिन इसके लिए सोचने की भी बात नहीं। वे और ही समाज के हैं, यह और ही दुनिया का आदमी है।

करीब-करीब एक हफ्ता हो गया। उसी बगीचे की दीवाल के पास से शांतनु को दिन में कम-से-कम पाँच-सात बार आना-जाना पड़ता है। छोटे बच्चे को कंधे पर लिए उसका उसी एक रास्ते से आवागमन। सुबह दूध लाने जाता, उसके बाद एक बार स्टेशन जाता खाने की चीजें लाने। हाट का दिन होता तो बच्चे को कंधे पर लिए गठरी भी ढोकर लाता। कभी एक गट्ठर कोयला, तो कभी नमक-तेल। वह बच्चा लेकिन कंधे ही पर ! अजीब है, जरा भी खीज या थकावट नहीं। लद्दू जीव है, और क्या !

एक दिन ईशानी ने फिर पकड़ा। हँसकर बोली, 'बच्चा बड़ा दुलरुआ है, न ?'

—'बच्चे सब वैसे ही होते हैं !' शांतनु ने कहा।

—'लेकिन उसे चलने-फिरने दीजिए। लंगड़ा क्यों बना रक्खा है ?'

—'चलने से उसे तकलीफ़ होगी। बुखार भी आ सकता है।'

ईशानी ने उसकी ओर एकटक देखा। फिर बोली, 'आपके लाड़ के अत्याचार से लेकिन इसका इहलोक परलोक दोनों जायगा। बच्चा अपने पैरों चलता है, तभी बड़ा होता है।'

शांतनु हँसते-हँसते बेहाल !—पोथी रटंत यह विद्या तो सदा से सुनता आ रहा हूँ।

वड़ी लापरवाही दिखाकर शांतनु बच्चे को लेकर चला गया। आज मानो अपनी बात में उसने खोजकर दृढ़ता पाई है। वात्सल्य अंधा नहीं है, वही शक्ति है। उसी ने शांतनु को सबल रक्खा है, उसी से उसे वल मिला है। आज गोया ईशानी चोट खाकर चुप रह गई। एक ही बात में शांतनु ने सारा तिरस्कार उसे लौटा दिया।

युवक-युवतियों की चुहल अब वैसी सुनाई नहीं पड़ती। हाट में अव वह चहल-पहल भी नहीं है, खुली जगहों में अव उनकी दौड़-धूप नहीं, घर में गाना-बजाना सब बंद है। नाच और नाटक का रिहर्सल बंद हो गया है।—दो दिन से शांतनु को संदेह हो रहा था। उस दिन सवेरे उसने नंदू को पकड़ा।

—'तुम्हारे यहाँ ऐसा सन्नाटा क्यों हो गया नंदू ? वे सब गए कहाँ ?

नंदू ने कहा, 'तीन दिन हो गए, वे सब चले गए।'

शांतनु ने कहा, 'चले गए ? कहाँ ? मुझे तो पता नहीं चला ?'

—'रात रहते ही उठकर तड़के की गाड़ी से चले गए।'

'ओ !' शांतनु भौंहें सिकोड़कर खड़ा हो गया। खैर, उन सबका वह ऋणी रह गया। कष्ट में उसे बार-बार उनसे मदद मिली थी। याद रहेगा। कभी अगर कलकत्ते में भेंट हो गई तो अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करेगा।

छोटा-सा एक निश्वास छोड़कर वह चला जा रहा था।

नंदू ने कहा, 'लेकिन दीदी जी नहीं गई हैं। उन्हें अधिक हो-हल्ला पसंद नहीं है। और, वह उन लोगों की जमात की भी नहीं हैं।'

—'कहाँ है वह ?'—शांतनु ने उत्साहित होकर पूछा।

—'अंदर हैं। आइए न ?'

शांतनु ने कहा, 'अभी रहने दो। मैं जरा डाक्टर के पास जा रहा हूँ। कल से वच्चे को जरा बुखार हो आया है। फिर भेंट होगी।'

शांतनु जल्दी-जल्दी चला गया।

नंदू ने शायद अंदर जाकर कहा होगा, ईशानी तेजी से बाहर निकल आई। उसने बच्चे के लिए ही शांतनु को खोंच गड़ाई थी, सो उसके बीमार होने की बात सुनकर वह कुछ परेशान-सी हुई। वह कभी उनके यहाँ गई नहीं। उसका जाना पसंद नहीं भी आ सकता है। और, शांतनु ने भी उसे कभी आने को नहीं कहा। लेकिन आज बच्चे की बीमारी की बात सुनकर चुप रह जाना उसके सौजन्य को खटका। कम-से-कम पाँच

मिनट के लिए ही जाकर उसे देख आती। टाल जाना तो अशोभन-सा लगता है।

ईशानी निकली। चहारदीवारी के बगल से सीधे 'माधवी कुंज' गई।

इकतल्ला मकान जैसा होता है वैसा ही था। कमरे-वमरे वैसे अच्छे नहीं थे। उन्हीं में अव्यवस्थित-सी गिरस्ती। वही दुबली-पतली-सी बहू हँसती हुई निकली—'आइए आइए बड़ी खुशी हुई। बड़ा सौभाग्य हमारा।'

ईशानी ने कहा, 'जाने कब से सोच रही थी कि आकर किसी दिन परिचय कर जाऊँगी, फिर एक दिन न्योता करूँगी–लेकिन झमेलों के कारण हो नहीं पाया। मैंने सुना, बच्चे की तबीयत खराब है ?'

बहू ने कहा, 'जी ! मामूली-सी। जरा बदन गरम हो आया है। और कुछ खास नहीं। परदेस की बात, डर हो आता है। जब से यहाँ आई हूँ, आप लोगों की सहायता मिल रही है। हम पर आप का बहुत कर्ज चढ़ गया।'

ईशानी ने कहा, 'ठीक तो है। चढ़ने दीजिए कर्ज कभी चुकता कर दीजिएगा।'

ईशानी की माँग में सिंदूर नहीं था, लिहाजा और कुछ बताने की जरूरत नहीं थी। लेकिन जरा अस्वाभाविक-सा तो लगता है ! उम्र पच्चीस पार कर गई होगी। गला खाली। दाएँ हाथ में सोने की एक निहायत पतली-सी चूड़ी, बाईं कलाई में घड़ी। लेकिन गजब, रूप और तंदुरुस्ती से सारा चेहरा चमचमा रहा है। अंगुली की नोक तक में स्वस्थता की छटा।

बहू ने कहा, 'रुकिए, अपने पति से आपका परिचय करा दूँ। अजी ओ, सुनते हो ? जरा इधर तो आना। जरा देख जाओ, सोने की सरस्वती किसे कहते हैं !'

स्त्री की पुकार सुनकर एक सज्जन हँसते हुए इस कमरे में आए। कुछ सोचने से पहले, कुछ बोलने से पहले, एक बार वह ईशानी के पास आकर खड़े हुए। शांतनु नहीं, बिल्कुल अनचीन्हे एक आदमी।

भले आदमी ने कहा, 'अपने चचेरे भाई के साथ इन लोगों को भेजा था। लेकिन वह बिलकुल निकम्मा है, किसी काम का नहीं। अभागे ने समय पर हाट-बाजार नहीं किया, घर-गिरस्ती की कोई खोज-खबर नहीं

रक्खी। उसके ऊपर भार देकर मैंने भारी भूल की। उसे निकाल बाहर करूँ तो मेरा गुस्सा ठंढा हो। सुना आप लोगों ने बड़ी मदद की !'

बहू ने रंजिश के साथ कहा, 'तकदीर बुरी है, जभी वैसे कुलच्छन देवर के हाथों यह दुर्गत हुई !'

ईशानी ने इसी बीच अपने को जरा सम्हाल लिया। बोली, 'आखिर वह दिन भर करते क्या हैं ?'

बहू ने कहा, 'देखिए न जाकर, या तो कहीं सूने में बैठकर बाँसुरी बजा रहा है या कि पद्य लिख रहा है। वह नहीं तो निकम्मों का और कोई काम। तसवीर बना रहा होगा !'

—'वह आपके चचेरे देवर हैं ?'

—'हाँ, मेरी मौत ! मैं कहती हूँ, कोई काम काज करे तो करे, नहीं तो निठल्ले बैल से सूना गुहाल बेहतर ! नाते-गोते के लड़के को हम लोग ही बिठाकर कब तक खिलाते रहेंगे, आप ही कहिए !'

ईशानी ने कहा, 'वह तो ठीक ही है। लेकिन शादी-वादी कराके देखिए न, कहीं सुधर जायँ।'

—'शादी-वादी ?' भले आदमी उखड़ गए—'वैसे लड़के को अपनी लड़की देता कौन है ! चावल-चूल्हा का ठिकाना नहीं, खिलाने-पहनाने की ताकत नहीं—उसके गले में माला डालकर आखिर वह लड़की अपने गले में फाँसी लगाएगी क्या ?'

बहू ने कहा, 'बंगाल हो तो भी क्या, लड़कियाँ इतनी सस्ती नहीं हैं !'

देर तक बेशुमार गालियों की बौछार चलती रही। एकाएक ईशानी उठ खड़ी हुई। बोली, 'मिलकर बड़ी खुशी हुई। अब मैं चलूँ। सब काम छोड़कर आपके बच्चे को देखने के लिए आई थी। कोई डर की बात नहीं, यह सुनकर निश्चिंत हुई।'

भले आदमी ने कहा, 'बीच-बीच में आ जाया करें, तो खुशी होगी।'

ईशानी यहाँ से भाग जाए तो जान बचे। दम घुट रहा था। किसी तरह से नमस्कार करके वह निकल पड़ी।

अपने घर में जाने से पहले मैदान के सामने वह एक बार ठिठक पड़ी। अब तक वह एक बड़े ही कौतुक के धोखे में थी। लेकिन शांतनु ने कभी इसकी चर्चा नहीं की, उसने भी कोई उत्सुकता नहीं दिखाई।

सारा कुछ एक अंदाज और ख्याल पर ही खड़ा था।

ईशानी के मानो जान में जान आई।

रसोइया रामतीरथ हाट जाने को निकल रहा था, ईशानी को देख कर बोला, 'माँजी, उस घर के बाबू आपका इन्तजार कर रहे हैं।'

—'उस घर बाबू ? ओ, कहाँ हैं वह ?'

—'बाहर के कमरे में बिठाया है।'

ईशानी जल्दी से अंदर गई। शांतनु सकुचाया-सा एक चौकी पर एक किनारे बैठा था। ईशानी को देखकर उसने सिर उठाया। बोला, 'माफी माँगता हूँ, आपके यहाँ अनधिकार आ गया हूँ।'

—'गलती जब कर ही बैठे हैं, तो जरा बैठिए। मर्द लोग अजीब ही जीव होते हैं। जाने-अनजाने आप लोग धोखा दिए बिना रह नहीं सकते।'

शांतनु और भी सकुचा गया। बोला, 'कहाँ, मैंने तो आपको कभी धोखा नहीं दिया है!'

ईशानी ने कहा, 'दिया है, आपको खबर नहीं है।— खैर, ऐ नंदू चाय दे जा। आज थोड़ी गरमी-सी लग रही है, क्यों! आप एकाएक यहाँ ? बात क्या है ?'

शांतनु ने कहा, 'नंदू से पता चला, आप हमारे यहाँ गई हैं। सो आपके सामने खड़े होकर भाई-भाभी की गालियाँ क्या सुनना! इसलिए आप ही के यहाँ बैठ गया।'

—'आपका ख्याल गलत है। आपकी कविता की बड़ी तारीफ कर रहे थे वे।'

—'झूठ बात है। मैं यकीन ही नहीं कर सकता।'

'सच कह रही हूँ।' ईशानी ने मुस्कुराते हुए कहा, 'लक्ष्मण के बाद आप ही आदर्श भाई और देवर हैं! उन्होंने यह बात भी बता दी। कहाँ है, जेब से कविता-वविता कुछ निकालिए न, सुनूँ। कुछ न हो, अपनी बनाई कोई तसवीर ही दिखाइए। समय कटे।'

शांतनु ने कहा, 'आपको क्या यहाँ समय काटने लायक कुछ नहीं है ?'

—नहीं, कुछ भी नहीं है। कुछ था भी नहीं।' कहती हुई ईशानी चौकी के एक कोने में बैठ गई।

नंदू दोनों के लिए चाय दे गया। शांत भाव से ईशानी ने पूछा,

'उनके छोटे बच्चे को क्या आप सचमुच ही प्यार करते हैं ?'

चाय का प्याला हाथ में लेकर शांतनु ने कहा, 'वे लोग यह नहीं चाहते कि बच्चा मेरे पास रहे। देख लेते हैं तो छीन ले जाते हैं, पीटते हैं उसे। मैं उसे छिपा कर ले आया करता हूँ, उन्हें पता नहीं होता। कभी अगर खाने की कोई चीज खरीद देता हूँ, तो देख लेने पर वे छीन कर फेंक देते हैं। दुलारने पर सोचते हैं, मैं शायद बच्चे को भगाए लिए जा रहा हूँ।'

—'आपका प्यार पग-पग पर अपमानित होता है, इससे आपको चोट नहीं पहुँचती ? मान लीजिए, उन्हें अगर पसंद नहीं आए तो एक दिन तो आपको चला ही जाना पड़ेगा।'

—'बच्चे को छोड़ कर यहाँ से चला जाऊँगा।'

—'चले जाना बरदाश्त होगा आपको ?'

शांतनु ने कहा, 'एक न एक दिन बरदाश्त हो ही जायगा।'

ईशानी ने अब अपना प्याला उठाया। पूछा, 'आपके माता-पिता नहीं हैं ? भाई-बहन ?'

अब की शांतनु जरा सजग हो उठा। बोला, 'ये सब बड़ी निजी बातें हैं। मेरे कोई नहीं है, यह कहने पर आप दिलासा देंगी, मैं लेकिन इसके लिए नहीं आया हूँ।'

ईशानी बोली, 'वह मैं समझ सकी हूँ। मुट्ठी भर भीख के लिए आपका जी न चाहेगा। लेकिन आपका व्यक्तित्व अगर इतना ही जोरदार है, तो उनके जूठन पर क्यों पड़े हैं ?'

शांतनु चुप होकर चाय की चुसकी लेने लगा। जरा देर में बोला, 'देखिए, मन की जटिलता को बहुत बार खुद भी नहीं समझ पाता। इसके सिवाय, यह कहना भी बड़ा कठिन है कि किसके जीवन में कौन-सी बात छिपी हुई है !'

प्याला रखकर शांतनु उठ खड़ा हुआ। बोला, 'तो मैं चलूँ।'

—'नहीं, रुकिए।' ईशानी बोली, 'मेरा आप पर बहुत ऋण है। बदले में मेरी थोड़ी मदद कर सकेंगे ?'

—'आपकी मदद !' शांतनु हो-हो करके हँस उठा—'मेरा इम्तहान ले रही हैं शायद ? आपके चारों ओर इतने-इतने लोग हैं, इतना आडंबर है—मैंने इतने दिनों तक अपनी आँखों देखा है, और आप मेरी मदद चाह रही हैं ?'

ईशानी ने कहा, 'आपकी मदद मिलती, तो मेरा बड़ा उपकार होता !'

शांतनु के लिए परिस्थिति पर विश्वास करना मुश्किल था। यह गोया कोई कोरी कवि-कल्पना हो। राजकुमारी एक चरवाहे से मदद माँग रही है, जो कि स्वयं बिलकुल निस्सहाय है। शायद इसके पीछे यही मनोभाव हो सकता है कि अपनी मुट्ठी में पाकर बुद्धू बनाओ ! इसके बाद एक-दो बात और आगे बढ़े तो घर में नौकर-चाकर हैं ही ! यानी—

शांतनु ने दरवाजे की ओर ताका।

ईशानी ने कहा, 'देखिए और कुछ न सोचिए। पहले मैं आपसे एक बात सच-सच कह दूँ कि वे लोग चले गए तो मैं जैसे जी गई। इसमें संदेह नहीं कि मैं उन्हीं के दल की हूँ। उन्हीं के साथ पाँच बरस बीते है। फिर भी मैं एक बात कहूँगी कि वह मेरा इच्छित नहीं था।'

—'तो इच्छित क्या है ?' शांतनु ने सीधे प्रश्न किया।

—'मैं एक खास लक्ष्य की ओर जाना चाहती हूँ, मगर ऐसा कोई नहीं है, जो मेरी मदद करे।'

शांतनु ने फिर सवाल का तीर फेंका, 'आपने क्या अभी तक अपनी घर-गिरस्ती नहीं बसाई ?

—'घर-गिरस्ती !'

ईशानी सहसा खिलखिला कर हँस पड़ी। फिर बोली, 'आप तो कवि हैं न ? कलाकार ? फिर यह कैसा अजीब सवाल आपका ?'

—'माफ कीजिएगा, औरतों की कल्पना की दौड़ ब्याह तक ही होती है', शांतनु ने कहा, 'इससे ज्यादा कुछ करने के लिए वे अपना दिमाग नहीं खपाती।'

'चौपट !' ईशानी ने कहा, 'देख रही हूँ, शुरू से आखिर तक मेरी भूल ही है। आपको मैंने जैसा बेबस-सा समझा था, आप वैसे बिलकुल नहीं हैं। यह सब क्या कह रहे हैं आप ?'

ईशानी का खुला-खिला हँसता मुखड़ा देखकर शांतनु के स्वर में दुस्साहस झलक आया। वह बोला, 'ठीक तो है। मुझे मालूम हो गया। मित्रों से भी कह रक्खूँगा। मुझसे आप की कोई मदद हो सके तो खुशी हो होगी उससे। बल्कि एक काम करिए न ? आजकल उम्र वाली बहुतेरी कुमारियाँ और इच्छावती विधवाएँ चुपचाप अखबारों में ब्याह का विज्ञापन देती हैं। आप उधर भी थोड़ा ध्यान दे सकती हैं। आपके

भले के लिए ही कह रहा हूँ।'

हँसी रोकने में ईशानी का दम घुटता जा रहा था। मुँह पर हथेली रखकर वह बोली, 'अब मैंने समझा, शिशु आप को इतना प्रिय क्यों है ? शिशु-सा नादान हुए बिना शिशुओं से पटरी नहीं खाती।'

शांतनु ने हँसकर कहा, 'मगर आपका यह मदद माँगना डर का कारण है, यह तो मानती हैं न ?'

ईशानी ने कहा, 'डर का कारण किसलिए ?'

शांतनु उठ खड़ा हुआ। बोला, 'माफ कीजिएगा, यह चर्चा बेकार है। मेरी इतनी ही सीमा है, इससे बाहर कदम नहीं बढ़ाना चाहता !'

ईशानी ने पूछा, 'फिर कब आ रहे हैं।'

शांतनु ने कहा, 'आ तो सकता हूँ, मगर यह मदद वाली बात से अकारण ही मन में धुकधुकी हो रही है।'

दोनों खूब हँस पड़े।

ईशानी बगीचे के फ़ाटक तक साथ गई। बोली, 'जिसके मन में किसी तरह की कोई चाल नहीं है, उसे आप बड़ी ठेस लगाए जा रहे हैं। अब आकर क्षमा माँगिएगा।'

नमस्कार करके शांतनु तेजी से निकल गया।

दो

तीन-चार दिन से उधर का कोई अता-पता नहीं चला। ईशानी के मन में थोड़ी-सी हलचल, थोड़ी-सी बेचैनी है—शांतनु से भेंट नहीं हो रही है। इधर कलकत्ते से चिट्ठी आई है। रमेन बाबू ने लिखा है, तुम्हारे आए बिना रिहर्सल जम नहीं रहा है। उन लोगों के कालेजों का इम्तहान करीब है, इम्तहान के बाद उन लोगों को नियमित रूप से रिहर्सल में लाने की जरूरत है। तुम आ जाओगी, तब वे लोग ध्यान देंगे।

हाट के दो दिन निकल गए। ईशानी खुद गई थी। इधर-उधर खोजा था। शांतनु हाट भी नहीं गया। उस घर में जाकर खोज-पूछ करे तो कैसे? नंदू को भी भेजे तो उसका मतलब गलत लगाया जा सकता है। ईशानी चुपचाप प्रतीक्षा कर रही थी।

रामतीरथ खेत-पथार के पार पहड़तल्ली की ओर गया था, जिधर संतालों का टोला है। बातों ही बातों में उस दिन रामतीरथ ने बताया, शांतनु बाबू को मैंने उस तरफ घूमते देखा है।

— तुम से कुछ बोले नहीं?

— नहीं माँ जी, उन्होंने मुझे देखा नहीं। मैंने भी उनको तंग नहीं किया। वह कागज-पत्तर लेकर पहाड़ के पास काम कर रहे थे।

नंदू को लेकर ईशानी तीसरे पहर उधर ही गई। लेकिन कहावत है, जहाँ बाघ का डर होता है, वहीं साँझ होती है। अचानक पहाड़ के मोड़ पर उसके भैया-भाभी से भेंट हो गई! तीन रोगी बच्चे बगल में टें-टें कर रहे थे। वे सब साँझ को टहलने के लिए निकले थे। ईशानी मुस्कुराती हुई रुक गई। दिन डूबे की रंगीन छटा में पहाड़ के पास वह वनलक्ष्मी-सी लग रही थी। उसके यों ही बँधे जूड़े में बसंत मंजरी का गुच्छा खुँसा था।

भाभी आगे बढ़ आईं। हँसकर बोलीं, इन संतालिनों की तंदुरुस्ती

का नाज देखते-देखते आँखें घिस गईं, मैं आपको दिखाकर उनका वह अहंकार तोड़ना चाहती हूँ। उस दिन तो हमें यह नोटिस दे आई कि आप चली जाएँगी। मगर आपके जाने से तो मिहिजाम अँधेरा हो जायगा।

ईशानी ने कहा, दो-एक दिन और है। अब वास्तव में ही नोटिस आ गया है। अब जाना ही पड़ेगा।

भैया जरा दूर थे। करीब आ गए। बोले, कलकत्ता लौटने पर आपके दर्शन कहाँ मिलेंगे ?

ईशानी ने कहा, मुश्किल है। मेरा कोई बँधा-बँधाया ठिकाना नहीं। बल्कि आप ही अपना पता दे दीजिए, मैं ही मिलने की कोशिश करूँगी।

भैया ने कागज-पेंसिल निकालकर पाइकपाड़ा की तरफ का एक ठिकाना दिया। ईशानी ने उसे अपने वैनिटी बैग में रख लिया। वह छोटा बच्चा पास आकर खड़ा हो गया, जो शांतनु का प्यारा है। ठोड़ी पकड़कर ईशानी ने उसे दुलारा। फिर पूछा, आपके लक्ष्मण-देवर ने अब काम-धंधे में जी लगाया है ? देखते ही देखते पति-पत्नी, दोनों का चेहरा सख्त हो आया। बोले, जी हो, तब तो लगाए ? आप पराए हैं, आपसे और क्या कहूँ ! उतना बड़ा लड़का है मगर रोजी-रोजगार की तरफ कोई ख्याल ही नहीं। हो भी क्यों ? जात-गोत का लड़का है पर घर का दुश्मन है। फूटी पाई की मदद नहीं, बैठा कर खिलाओ।

भैया ने कहा, अब मैंने भी सोच लिया है, अगले महीने से यदि माहवार खर्च नहीं देगा, तो जहाँ जो चाहे वहाँ चला जाए। मेरे यहाँ अब उसके लिए जगह नहीं।

ईशानी ने पूछा, पढ़ाई-लिखाई कहाँ तक की है उन्होंने ?

भैया ने कहा, यही तो अफसोस है। बड़ा ही मन लगाकर बी० ए० पास किया। लेकिन यह बात कभी नहीं सोची कि पेट कैसे चलेगा। और कुछ न सही, मास्टरी तो जुट ही सकती है। मगर वही हाल, कोई काम नहीं करेगा। ऐसे लोग देश के दुश्मन हैं, समाज के और घर के शत्रु हैं !

बात ठीक है। लेकिन ईशानी यदि उनके सामने खड़ी रहेगी तो एक गैर-हाजिर आदमी पर गालियों की वर्षा होती रहेगी। यह उसकी

रुचि को खल रहा था। रूखी बोली के पीछे स्नेह नहीं है, आक्रोश ही ज्यादा है। लिहाजा वहाँ ज्यादा देर खड़ा नहीं रहा जा सकता। नमस्कार करके ईशानी चल दी।

साँझ घनी हो आई। अब पहाड़ के आस-पास, खेत-पथार में उस आदमी को खोजते फिरना बेकार है। ईशानी सीधे स्टेशन की ओर चली। इसी रास्ते से मजदूर संताल-संतालिनें ट्रकों से चित्तरंजन की ओर जाती हैं। नन्दू पीछे-पीछे चला।

शांतनु को जितना निकम्मा करके उसके सामने रक्खा गया था वह उतना निकम्मा है या नहीं, इसमें संदेह है। जिस आदमी की लोक-समाज में निंदा होती है, स्त्रियों की दुनिया में उसका विचार और तरह का होता है। अयोग्य है, इसीलिए उसका निरादर हो, यह बात सत्य नहीं है। फिर भी गुणी आदमी के लिए निष्क्रिय रहना बेशक वाजिब नहीं है। देश के कर्म-जीवन में हलचल-सी आई है, जो आदमी आलस-विलास में इससे अलग रहेगा, उसका भविष्य अँधेरा होगा ही इसमें क्या शक? शांतनु से भेंट हो जाती तो वह उसे यह बात समझाने की जरूर कोशिश करती।

कई रास्तों से भटकती हुई ईशानी आखिर घर आ गई।

रात को वह रमेन बाबू को चिट्ठी लिखने बैठ गई। लिखा, मैं जल्दी ही आ रही हूँ, मगर ठीक दिन अभी निश्चित नहीं है। 'गीताली संघ' की उन्नति हो, यही मेरी कामना है। उसके सदस्यों से मुझे बहुत कुछ मिला है—स्नेह, प्रीति, प्यार, मित्रता, उपकार। उनके अपार स्नेह से मेरा जीवन लबालब भरा है। लेकिन अब कुछ दिनों के लिए मुझे छुट्टी चाहिए। छुट्टी की मुझे बड़ी जरूरत है। मुझे हो सकता है कि जगह-जगह जाना पड़े और कई कारणों से कुछ दिनों के लिए अज्ञात-वास करना पड़े इसके लिए मैं पहले से ही माफी माँगे लेती हूँ।

लिफाफे में चिट्ठी को बंद करके नन्दू के हाथ में देती हुई ईशानी बोली, अभी डाल दे—जिससे कल सवेरे की ही डाक से निकल जाय।

बेहद काम बाकी पड़े हुए हैं, कोई भी पूरा नहीं हुआ। पिछले दो महीने का हिसाब-किताब है। ढेरों कागज पड़े हैं। बैंक की दो चिट्ठियाँ आई हैं, जवाब नहीं दिया गया है। मित्रों की बेहिसाब चिट्ठियाँ पड़ी हैं, बहुतेरी तो खोली तक नहीं गईं। किताबें बे-तरतीब बिखरी पड़ी हैं,

सहेजने को आदमी नहीं। प्रसाधन के अनगिनत उपकरण पड़े हैं, मगर उन्हें अब छूने को भी जी नहीं चाहता।

ईशानी ने एक बार इधर-उधर देखा और निरुपाय-सी होकर एक मोटी-सी किताब लिये अपनी खाट पर लुढ़क पड़ी।

काफी रात गए तक वह किताब लिये जगी रही।

तड़के, जब आसमान में हल्का उजाला फैलने लगा था, नन्दू एक बड़ा-सा लोटा हाथ में लिये बाहर निकला। ऐसे समय वह रोज ही ग्वाले के यहाँ जाता है। लेकिन जैसे ही वह बगीचे से बाहर निकला, उसने देखा, हाथ में एक सूटकेस लिये शांतनु बाबू इधर ही आ रहे हैं।

नन्दू ने पूछा, कलकत्ता जा रहे हैं बाबू ?

—हाँ ! तुम्हारी दीदी जी जग गई हैं नन्दू ? भेंट कर लेता।

नन्दू ने कहा, वह सो रही हैं। काफी रात तक जगकर पढ़ती रही थीं। सेहत पर बड़ा जुल्म करती हैं। जगा दूँ उन्हें ?

शांतनु ने कहा, जगाने से नाराज तो न होंगी ?

—नहीं-नहीं, आप आए हैं, यह सुनते ही दौड़ी आएँगी। आइए, अन्दर आइए।

नन्दू झटपट अन्दर जाने लगा। एकाएक पीछे से पुकारकर शांतनु ने कहा, नन्दू सुनो—

नन्दू लौट आया।—क्यों बाबू ?

—जाने दो। मैं अभी चलता हूँ। उन्हें जगाने की जरूरत नहीं।—शांतनु ने कहा—कलकत्ते जायेंगी, तो भेंट हो जायेगी। मैं चलता हूँ, अभी टिकट भी लेना है।

शांतनु कदम बढ़ाकर चलने लगा।

उसी रास्ते से, कुछ दूर जाने पर ग्वाला का घर पड़ता था। सो नन्दू भी शांतनु के साथ चला। नन्दू ने शांतनु को कलकत्ते का पता देने में भूल नहीं की। बताया कि उनके यहाँ लोग-बाग तो हैं, पर दीदी जी अकेली हैं।

चलते-चलते शांतनु ने पूछा, अकेली क्यों ?

—वह तो सदा अकेली ही हैं बाबू। दीदी जी कहती हैं, वह अकेली ही कलकत्ता आई थीं, किसी ने उनकी मदद नहीं की।

—और ? तुम लोगों को तनखाह-वनखाह कौन देता है नन्दू ?

—क्यों, वही देती हैं !

—उन्हें रुपया-पैसा कहाँ से आता है ?—शांतनु ने जानना चाहा।

नन्दू ने एक बार अवाक् होकर उसकी ओर ताका।—आप कह क्या रहे हैं बाबू ? आपने कुछ सुना नहीं क्या ! उनके तो दोनों पैरों के पास आकर रुपए जमा होते हैं। आखिर उतने रुपए खाए कौन ?

शांतनु ने पूछा, इतने रुपए कहाँ से पाती हैं वह ?

नन्दू ने कहा, हाय मेरे राम ! तब तो यह कहिए कि आप आदि-अंत कुछ जानते ही नहीं ?

—जानने की कोशिश खास अच्छी नहीं होती नन्दू। और फिर तुम तो जानते ही हो कि हम लोग निहायत मामूली आदमी हैं। रुपए-पैसे वालों से जान-पहचान रहने से तरह-तरह के लोग तरह-तरह की शंका करते हैं।

ग्वाले का घर आ गया। नन्दू ने जरा दुखी स्वर में कहा, बाबू, दीदी जी को आप वैसी न समझें, वह साक्षात् देवी हैं। उनका दान-खैरात देखने से नास्तिक का भी मन बदल जाता है।

शांतनु ने मुस्कुराकर कहा, तो अपनी दीदी जी से कहना, किसी दिन सलाम ठोंककर मैं भी हाथ पसारूँगा। खैर, तो चलता हूँ।

शांतनु तेजी से स्टेशन की ओर बढ़ चला। नन्दू ठिठककर जरा खड़ा रहा। वह अचंभे में आ गया। इतने दिनों की जान-पहचान के बाद भी एक दूसरे के बारे में नहीं जानते, यह नन्दू के लिए सचमुच ही एक अबुझ पहेली था।

दूध का लोटा लिये नन्दू लौटा तो उसने देखा कि कागज-पत्तर लेकर दीदी जी इसी बीच बरामदे पर आ बैठी हैं। चाय-नाश्ता देकर रामतीरथ सामने खड़ा है, शायद किसी हुक्म के इंतजार में।

सिर उठाकर ईशानी ने कहा, नन्दू, जरा उस मकान में जा तो। जाकर कह दे, हम लोग कल सबेरे की गाड़ी से चले जाएंगे। अगर उन्हें कलकत्ते का कोई काम हो, तो कहें, हम कर देंगे।

लोटा रामतीरथ को थमाकर नन्दू चला जा रहा था, ईशानी ने कहा, अगर हो सके, तो उस घर के छोटे बाबू को जरा बुला लाना।

नन्दू ने कहा, छोटे बाबू ! वह तो जरा ही देर पहले कलकत्ता चले गए, इसी गाड़ी से।

—किस के बारे में कह रहा है ?—ईशानी ने सिर उठाकर ...।

—शांतनु बाबू की कह रहे हैं न ? जाने से पहले सुबह वह आप से मिलने के लिए आए थे। आप उस समय सो रही थीं।

एकाएक बिगड़कर ईशानी ने कहा, मुझे बुला क्यों नहीं दिया ?

—मैं जगाने जा रहा था, उन्होंने ही मना कर दिया।

—मना कर दिया ? ओ,—ईशानी बिलकुल ठंडी पड़ गई।—तो रहने दे, अब तुझे उनके यहाँ नहीं जाना होगा। मान न मान मैं तेरा मेहमान ! जा, तू अपना काम कर।

कागज-पत्तर छोड़कर ईशानी खुद ही उठकर चली गई। बात बहुत साफ़ है। एक आदमी बिना किसी क़सूर के रात-दिन खरी-खोटी सुनता है और अपमान का अन्न मुँह में डालता है—शांतनु को उससे छुटकारा मिला अच्छा हुआ। ईशानी नहीं समझ पाती, एक पढ़े-लिखे आदमी के लिए यह अपमान बरदाश्त करना कैसे संभव है ? याद आया, दो-तीन दिन से वह उस घर में भैया-भाभी की दबी आवाज में तीखी फटकार सुन पा रही थी। ताज्जुब, कि शांतनु फिर भी चुप था ! शायद हो कि इनके प्रति उसका कोई बहुत बड़ा अपराध हो या वह हृदय से इन लोगों को क्षमा करना जानता हो।

हाट जाने से पहले रामतीरथ ईशानी के सामने आ खड़ा हुआ। बोला, आज मंगलवार को पैठ है माँ जी।

ईशानी ने कहा, रामतीरथ, आज घर के लिए थोड़ा बहुत सामान ले लेना। कल सुबह हम लोग चले जाएँगे। तुम जल्दी-जल्दी खाना-वाना बनाकर सामान सहेज लो, बकाएदारों के पैसे चुका दो। कल सुबह के एक्सप्रेस से ही चले चलेंगे। धोबी के यहाँ से कपड़े भी मँगा लेना।

— जी !

ईशानी उठकर नहाने चली गई।

× × ×

गाड़ी हवड़ा स्टेशन पर रुकी। दोपहर की धूप तीखी हो आई थी। जिस कोटि के लोग नए बसंत का स्वागत करते हैं, वे लोग फागुन की कड़ी धूप में असहाय से कलकत्ते के रास्ते पर कभी नहीं चलते। दुराशा के साथ निराशा तथा भूख के साथ आत्मग्लानि—ये कलकत्ते की सड़कों पर बिखरी पड़ी हैं।

स्टेशन से निकलकर पुल पार करके शांतनु घर की ओर चला। पैदल ही जाना था, इसमें शक नहीं। भैया और भाभी की दया से किराए के पैसे जरूर नसीब हुए थे, पर गिने-गुँथे। भैया यह मानते हैं कि बेकार आदमी के लिए ट्राम-बस से घर जाना विलास है। सूटकेस भारी तो लग रहा था। हाथ दुख जाने से माथे पर उठा लेना होगा। पाइकपाड़ा वह तीसरे पहर पहुँचेगा। ठीक तो है, कलकत्ते की शोभा देखते हुए चलो। बेजा क्या है? यदि पसीने से तर हो जाओ तो कुरते की आस्तीन से पोंछो—घर का मंगल शंख नहीं तेरे लिए, नहीं रे साँझ की दीप-जोत, नहीं प्रेयसी की नम आँखें।

इस कविता के याद आ जाने से शांतनु को अपने घुटनों में पर्याप्त बल महसूस हुआ। ना, अब बिना कुछ रोजगार किए नहीं चलेगा। कविता से रुपए कमाने जैसा नाम अभी उसका नहीं हुआ है। फोटोग्राफी के सिवाय चारा नहीं। कुछ दिन पहले कलवार के दो लड़कों को पढ़ाने का एक काम उसे मिला था। दोनों जून भोजन और उसी के यहाँ रहना। जेब खर्च के लिए कुछ थोड़ा-सा पैसा भी। पर बहुत हुआ तो दस रुपए। इससे तो नौकर अच्छा है। लड़कों को पढ़ाने की ऊबाने वाली जिम्मेदारी नहीं, इधर-उधर के फरमाइशें सुनो, महीने में कुल पचीस-तीस रुपए। कहीं मालिक की बीवी आँव या वातरोग से पीड़ित हों तो पैंतीस रुपए तक भी मिल सकते हैं।

यह तो मजाक रहा। सूटकेस अब ढोया नहीं जाता। यह मिहिजाम का रास्ता होता, तो ठीक था, ईशानी का वह नौकर मिल जाता। खैर बेदाग बच गया वह और जरा रुक गया होता तो ईशानी के फंदे में उसके पाँव फँसते। लेकिन उसे ठीक से समझा नहीं जा सका। वे लोग बेशक धनी हैं, मौज आनन्द से गिरस्ती करते हैं। वे पिकनिक में पाँच सौ रुपए खर्च करते हैं, खिलौनों का व्याह बाजा-गाजा बजाकर रचाते हैं, कुत्ता खरीदने के लिए विलायत जाते हैं, लेकिन कोई भिखमंगा भीख माँगता है, तो सरकार को गाली देकर कहते हैं, मुल्क से भिखमंगों को भगाओ।

यह मेरा यह तुम्हारा पाप
विधना की छाती का यह ताप
बहुत दिनों से जमकर आज वायुकोण में छा।
डरपोकों का डर, प्रबलों का—

फिर कविता आने लगी। शांतनु तेजी से कदम बढ़ाकर चलने लगा। बात का सार एक ही है कि कुछ कमाना जरूरी है। कमाने से ही सब ठीक हो जायगा। भैया के गले से शहद चुएगा, भाभी का पिघला स्नेह-प्रवाह—यहाँ तक कि उस दिन की वह जो श्रीमती ईशानी राय थीं, वह भी सम्मान भरी नजरों से देखना शुरू करेंगी। लेकिन गजब है, उस औरत को, किसी भी प्रकार से समझा नहीं जा सका। उसके मन में सचमुच ही मिहिजाम अमिट हो रहा। ऐसा एक अनोखा अनुभव—जो सदा अपने परमार्थ को ढोता चलेगा। पैनी बुद्धि के पीछे ईशानी की कैसी भीरु दृष्टि, कंठ में प्रसन्न स्नेह के साथ-साथ किस गजब की मिठास ! चमकता नक्षत्र जैसे अँधेरे आसमान में आदमी की पहुँच से परे रहता है, मिहिजाम उसके जीवन में वैसा ही हो रहा। ईशानी के साथ वह दूर क्षितिज तक फैला प्रांत, बसंत की रात की वह मायामयी चाँदनी, वन-बाग का वह निर्जन एकांत परिवेश, यह सब निगूढ़ भूखे-से जीवन में सदा के लिए रह गए।

तीसरे पहर शांतनु घर पहुँचा। कपाल से पसीना चू रहा था। उसका खूबसूरत चेहरा थकावट और अवसाद से चूर था, भूख-प्यास से दोनों आँखें धँस गई थीं।

संकरी गली पार करके अंदर की ओर उन सब का मकान। सामने बहुत बड़ा कच्चा आँगन, आस-पास चूना-बालू झड़ी दीवालें—बड़ी ही जरा-जीर्ण आबहवा। पुश्तों से वह लोग इस घर के बाशिंदा हैं। एक ही बहन थी, ब्याह करके किसी गाँव में अपनी ससुराल चली गई। दस-बारह साल हो गए, कोई खोज-खबर नहीं। छुटपन से ही वह सुनता आया है कि वह शायद इस घर के एक हिस्से का मालिक है। साथ ही बीस साल से यह भी सुनता आया है कि मामला-मुकदमा और कर-लगान के मारे इस घर का कोना-कोना बिका हुआ है। लिहाजा इस जायदाद का हिस्सा पाने का आशा-भरोसा बिलकुल ही नहीं है।

शांतनु मिहिजाम से लौट आया है, यह खबर अवश्य उसी समय अंदर पहुँच गई। लेकिन उसके कानों में एकाएक दबी हलचल-सी आई। वह बेहद थका हुआ था। किसी तरफ ध्यान देने की स्थिति उसके मन की नहीं थी उस समय। कुरता उतारकर वह चौकी पर लंबा हो गया। लगभग तीन सप्ताह वह बाहर रहा, इस कमरे में कोई आया ही नहीं, किसी ने झाड़ू भी नहीं लगाया। नाक में सीलन की बू भर रही

थी। लेकिन वह बड़ी देर तक चुपचाप पड़ा रहा। बोझ ढोने की वजह से अभी तक उसका हाथ टीस रहा था।

पूरा घर ही उसके खिलाफ है। बड़ी चाची, मामा, और-और चचेरे भाई-बहन, इस घर के आश्रित नाते के एक बहनोई, नाबालिगों का एक झुंड कुल मिलाकर बहुत बड़ा परिवार शांतनु के हिस्से में वह अकेला। अकेला होने के नाते उसका अस्तित्व घर में सभी के लिए बड़ा असुविधा-जनक था।

कमरे के बाहर जानें कौन-कौन आकर खड़ा हुआ है। दबी आवाज और हँसी-मजाक। अचानक उन्हीं में से उसकी विवाहित चचेरी बहन मीनू कमरे के अंदर आकर खड़ी हुई और हँसी—छोटे भैया, तुमने शादी कब की ?

शांतनु लेटा हुआ था, उठ बैठा।—शादी ? मतलब ?

मीनू ने कहा, और नहीं तो क्या ! तुम्हारे बीवी है। आज तक किसी को भी कुछ पता नहीं था। तुम भी छिपाए हुए थे।

शांतनु डपट उठा, कह क्या रही है तू ?

कि इतने में बड़ी चाची अंदर आईं। चिल्लाकर बोलीं, डाँटने से क्या होगा ? माँग में सिंदूर वाली तुम्हारी स्त्री रोज दिन में तीन बार तुम्हारी तलाश में यहाँ आती है—तो फिर ब्याह नहीं किया तो क्या ?

मीनू ने कहा, अब तक डूबकर पानी पिया जा रहा था ?

शांतनु का सुन्दर सौम्य चेहरा देखते ही देखते कठोर हो गया। बोला—यह सब तुम लोगों की कारसाजी है ! झूठी बात !

चाची जल-भुन उठीं—कारसाजी ? बीस दिन के अंदर बीस बार आकर तुम्हारी खोज-खबर वह ले गई है, टोले भर के लोग जान गए, चारों ओर खिल्लियाँ उड़ रही हैं—सबके सामने बीवी जी आकर घर में रो-पीट गईं—इसे कारसाजी कहते हो।

शांतनु ने कहा, इस पर मैं आपसे तर्क नहीं करना चाहता चाची जी।

—मैं भी नहीं चाहती शांतनु, मगर तुम इस घर में इस-उस जात की किसी औरत को उठा लाओ, मैं यह भी नहीं चाहती, कहे देती हूँ।

चाची जी क्रोध में बड़बड़ाती हुई अंदर चली गईं। मीनू उनके साथ ही गई। जानें कौन उसमें से कहती गई चलो ठीक है, बेला झुक आई है अभी ही वह आएगी, तब रंगे हाथों···

शांतनु ने किसी बात की परवा न की। चौकी पर फिर कुछ देर तक पड़ा रहा, उसके बाद उठा। बीच में जाकर वह नहा आया। यह वह खूब समझ रहा था कि छिप-छिपाकर सारा घर ही उसकी गति-विधि पर नजर रक्खे हुए है। दबी हँसी और छिटफुट फतवे उसके कानों में इधर-उधर से आ रहे थे।

कुछ देर के बाद भोजन की थाली लिये वही मीनू ही आई। थाली रखकर आसन बिछाकर वह बोली, नाराज मत होओ भैया, पहले दो कौर खा लो। जीती-जागती एक युवती तुम्हारी स्त्री बताती हुई अपना परिचय देकर यहाँ आ खड़ी होती है। इतनी बड़ी एक घटना को तुम सफेद झूठ कहना चाहते हो?

आसन पर बैठकर शांतनु ने थाली की तरफ हाथ बढ़ाया। उसके बाद बोला—जीती-जागती युवती तो हो सकती है। लेकिन बीवी और ब्याह, इसमें से कोई भी सच नहीं है।

—तुमने शादी नहीं की है? यह कहना चाहते हो कि सुषमा तुम्हारी स्त्री नहीं?

—नहीं।

—तो फिर कौन-सी कारस्तानी की है? कौन है वह लड़की?

दो-चार कौर खाकर एक घूंट पानी पी करके शांतनु ने कहा, इस तरह से मुझ पर तुम लोगों का हमला करना उचित नहीं हुआ है। चाची जी शांति के साथ मुझसे बातें कर सकती थीं।

मीनू बोली, वह शांत कैसे हों? चारों ओर तो डौंड़ी पिट गई। तुम चौधरी परिवार के लड़के हो, टोले-टोले में इस परिवार का नाम है, सगे-संबंधी प्रपंच कर रहे हैं—माँ का मिजाज ठीक रहे तो कैसे? अब शुरू से अंत तक बताओ मुझे कि क्या बात है।

—शादी मैंने नहीं की है मीनी।

—मान गई। मगर वही सब कुछ नहीं। ऐसे ही एक लड़की एका-एक माँग में सिंदूर पहनकर आकर नहीं कह बैठेगी कि वह तुम्हारी स्त्री है। तुम तो लिखे-पढ़े हो! इसके अंदर कोई बात नहीं है, क्या यह कहना चाहोगे?

मीनू जमकर बैठ गई। शांतनु ने कहा, तू भात की थाली सामने परोसकर मुझे फुसला करके राज निकालना चाहती है?

मीनू ने आजिजी से कहा, यह तुम्हारी बेवकूफी है। जैसे बेवकूफ

तुम सदा के हो। आखिर छिपा कुछ रहा भैया ? आखिर हाँड़ी हाट में ही फूट गई कि नहीं ? छिपा पाए ? जानते हो, कल भी वह तुम्हारी खोज में आई थी ?

शांतनु ने कहा, तुम सब क्या यह सुनना चाहती हो कि मैंने शादी की है ? तो सुन ले, शादी मैंने नहीं की है।

—तो उसकी माँग में सिंदूर कैसे आ गया ?

शांतनु ने कहा, एक पैसे का सिंदूर किसी भी पन्सारी के यहाँ मिल सकता है। और कोई भी लड़की उसे खरीदकर माँग में लगा सकती है। इसका नाम स्त्री-स्वाधीनता है।

शांतनु उठकर हाथ धोने के लिए चला गया। मीनू चुपचाप बैठी रही। दो-एक मिनट के अंदर लौटकर कुरता पहनकर शांतनु बाहर जाने को हुआ।

मीनू ने कहा, तुम तो चले जा रहे हो, मगर वह लड़की आई तो हम लोग क्या कहेंगे ?

शांतनु ठिठक गया। कहा, कह देना, इस घर में और चाहे जो भी रहता हो तुम्हारा पति नहीं रहता।

—यह बात वह सुनेगी ?

शांतनु ने कहा न सुने तो जरा और कड़ी बात सुना देना। कहना, तुम दुनिया के किसी भी ऐरा-गैरा आदमी को अपना पति मान सकती हो, किंतु दुनिया का वह कोई आदमी तुमको स्त्री नहीं मान सकता।

यह कहकर शांतनु तेजी से बाहर निकल गया।

एक अखबार के दफ्तर में फोटो की बाबत उसके कुछ रुपए बाकी थे। उन रुपयों को वसूल करने में कोई दो घंटे लग गये। बीच-बीच में इस तरह अचानक ही वह धनी हो उठता है। जैसा कि आज। कुछ दिन पहले एक शिक्षक के नाम पर नोट्स की किताब लिखकर उसे काफी कुछ रुपए मिल गए थे। घर लौटकर उस दिन उसने खासी दावत दी थी।

लेकिन आज घर में जो दुखद घटना घटी, उससे उसका शरीर रह-रह कर घिनघिना उठता था। संदेह नहीं, मामला पेचीदा हो गया है। ईशानी ने उस दिन बातों ही बातों में कहा था, व्यक्तित्व नहीं रहने से आदमी घटनाओं का खिलौना हो पड़ता है। वह अपने अनजाने ही अपनी बदकिस्मती ले आता है, जिसका नतीजा उसकी उपलब्धि से परे

होता है। उसकी अनिच्छा होते हुए भी उसी पर जीवन का इतिहास तैयार होता है, जिस पर उसका कोई बस नहीं।

कालीघाट के आसपास बहुत से रास्ते बहुत ओर को चले गए हैं। उन्हीं में से किसी एक गली में घुसकर शांतनु सीधे एक घर में जा पहुँचा। सामने ऊँचा बरामदा, उसी के एक ओर दरवाजा। भीतर के आँगन के चारों ओर कुछ गृहस्थ किराए पर रहते थे। आँगन में जाकर खड़े होने से वे कमरे अँधेरे दीखते हैं।

शांतनु को देखकर प्रौढ़-सी एक विधवा माथे पर घूँघट काढ़े बाहर निकल आईं। शांतनु के खूबसूरत और मजबूत चेहरे का अपना खास एक आकर्षण है। इसीलिए आस-पास के किराएदारों की कुछ लड़कियाँ एक बार उचक-उचककर झाँक गईं। शांतनु को सभी पहचानती हैं।

शांतनु ने बरामदे के किनारे पर ही बात छेड़ी। जरा उत्तेजित होकर बोला, आपकी लड़की शायद रोज ही मेरे यहाँ जाती आती रही है। बात क्या है?

विधवा महिला ने कहा, अंदर आकर बैठो बेटे। समझ ही सकते हो, तुम्हारी कोई खोज-खबर नहीं पाकर सुषमा परेशान-सी हो गई थी।

—क्यों आखिर?— शांतनु ने सीधे ताका। उसके अंदर जो क्रिया-प्रतिक्रिया चल रही थी, उसकी उत्तेजना उसके चेहरे पर स्पष्ट थी।

—मैं सुषमा को बुला देती हूँ बेटे!— महिला जल्दी से अंदर चली गईं।

तीनेक मिनट लगे। उसके बाद ही एक तरुणी मुस्कुराती हुई बाहर आई। साँवला रंग, उम्र बीस-बाईस, चेहरे पर लावण्य की छाया, माँग में सिंदूर का नाम नहीं। लेकिन शांतनु के चेहरे पर गंभीरता की सख्ती देखकर सुषमा ने अपने को जब्त किया। बोली, अंदर आओ। माँ के सामने कुछ बोले तो नहीं न?

शांतनु ने कहा, कुछ कहा नहीं है, मगर अब कहने को मजबूर हूँ। तुम लोगों ने यह क्या हरकत की है, बोलो पहले।

—ओह, धीरे-धीरे बोलो। तुम कह गए थे, तीन दिन में लौट आओगे। बीस-बाईस दिन क्यों लगा दिए?

—उससे क्या हो गया मेरे लिए कोई लड़की परेशान है यह सुनना भी मुझे अच्छा नहीं लगता।— शांतनु ने कहा—और फिर तुम माथे

में सिंदूर लगाकर मेरे यहाँ कह आई हो कि मैं तुम्हारा पति हूँ ? इसका क्या मतलब हुआ ? तुम्हारी माँ इस बारे में क्या कहती हैं ? तुम मेरी स्त्री हो, यह बात कब साबित हुई ?

शांतनु दबे गले से बोल रहा था। फिर भी घबराकर सुषमा बोली, चिल्लाओ मत, कहती हूँ ! मुझसे जब लोग पूछें, तो मैं क्या जवाब दूँ ? जाते समय तुम माँ से कह गए थे, कि सुषमा के लिए आप कोई फिक्र न करें, उसका कोई न कोई ठिकाना हो जायगा। तुम्हारी इस बात से उन्हें जो समझना चाहिए था, समझ लिया।

शांतनु कुछ देर चुप रहा। फिर बोला, उसका मतलब क्या यह हुआ कि तुम मेरे ही संग गठबन्धन करके ससुराल जाओगी ? मेरे घर जाने को तुमसे किसने कहा था ? तुमने माथे में सिंदूर क्यों लगाया ? और, वहाँ मुझे अपना पति कैसे बना आई ? इरादा क्या है तुम लोगों का ?

सुषमा ने जरा डरकर बाहर की ओर ताका उसके बाद बोली, छोड़ो भी, इन बातों को यहाँ कहने की कोई जरूरत नहीं है, बाहर चलो, फिर मैं आदि से अंत तक सब बताऊँगी। चाय पिओगे ?

शांतनु ने कहा, 'नहीं'।

—तो फिर रुको, मैं आई।—यह कहकर सुषमा बगल के कमरे में चली गई। उस कमरे में सुषमा की माँ थीं। दोनों में जानें क्या बातें हुईं। उसके पाँचेक मिनट बाद सुषमा फिर इस कमरे में आ खड़ी हुई। कुमारी लड़की बाहर जाने को जैसी सजती-संवरती है, वैसी ही सजी हुई। बोली, चलो।

बाहर निकलकर मोड़ से आगे बड़े रास्ते पर पहुँचकर सुषमा ने कहा, मैं तुम्हें मुसीबत में डालूँगी, तुमने यह कैसे सोच लिया है ?

रंजिश के साथ शांतनु ने कहा, घर में मैं मुँह दिखाने के लायक नहीं रहा, जानती हो ?

—तुम्हारे यहाँ न जाती तो मैं और क्या करती ?

इसीलिए सिंदूर भरकर गई ? और यह कह आई कि तुम मेरी स्त्री हो ?

सुषमा ने कहा, इसके सिवा और किस बहाने तुम्हारे यहाँ जाकर

—तुम्हारे जाने का यही नतीजा हुआ कि जल्दी ही मुझे वह घर छोड़कर चल देना पड़ेगा।

—व्यग्र होकर सुषमा बोली, कहाँ जाओगे?

शांतनु ने कहा, जहाँ मेरा जी चाहेगा वहाँ जाऊँगा। तुमको कैफियत देने की जरूरत नहीं समझता।

—तुम क्या सच ही नहीं चाहते कि मैं तुमसे कोई नाता रक्खूँ?—सुषमा ने नजर उठाकर देखा।

शांतनु ने साफ शब्दों में कहा, अंधे आकर्षण को छोड़ो, अपनी पारिवारिक समस्याओं में मुझे मत उलझाओ, बात-बात में प्रेम की चर्चा न करो। तभी मुझसे नाता रह सकता है।

सुषमा बड़ी देर तक चुप बैठी रही। उसके बाद एकाएक अपने आप ही बोली, मेरे लिए अब कोई उपाय नहीं है। योगेन-दा हमें अगर अपने पास से हटा सकें तो जी जाए। चाचा का कोई भरोसा ही नहीं। भैया ने हाथ समेट लिया। छोटा भाई आदमी नहीं बन सकेगा। मेरी अपनी भी कोई व्यवस्था हो जाती, तो भी काफी सुविधा होती। लेकिन सभी तरफ अँधेरा है।

दोनों फिर चुप हो गए। चाँद लगभग माथे पर आ गया। उतना बड़ा बगीचा प्रायः सूना हो आया। दोनों के जीवन में आशा-आश्वासन खास कुछ कहीं नहीं दीख रहा था। शांतनु ने आखिर बदन झाड़ा। कहा, तो मैं चलूँ।

सुषमा में उठ खड़े होने का कोई आग्रह नहीं दिखाई दिया, वह सिर्फ बोली, तो कल फिर आ रहे हो न?

—रोज-रोज आने की तो कोई जरूरत नहीं समझता हूँ।

—तुम क्या मेरे पास न आकर मुझको तकलीफ देना चाहते हो?

शांतनु ने कहा, मैं चाहता हूँ, तुम्हें अपने आप पर बल हो। मेरे आने से तुम्हारा काम नहीं होगा। तुम अपना भविष्य आप ही सोचो, मुझे छोड़ दो। मैंने तुमसे पहले भी कहा है, अभी भी कह रहा हूँ, तुम मेरा भरोसा छोड़ दो। यदि मुझे कभी तुम्हारे लायक किसी काम का पता चला, तो मैं खुद ही आकर तुम्हें खबर दे जाऊँगा।

शिकायत के स्वर में सुषमा बोली, मैं अकेली अपना उपाय आप कैसे निकालूँगी यह नहीं बताया।

—चोट खाओगी, ठोकरें खाओगी, दुःख-दुर्दशा बरदाश्त करोगी

तो उन्हीं में से, तुम अपना उपाय भी पा लोगी।—शांतनु जरा अधीर होकर बोलने लगा—लेकिन और चाहे जो करो, माँग में सिंदूर लगाकर दया करके मेरे यहाँ धावा मत करना।

अब सुषमा उठ खड़ी हुई। दो डग आगे बढ़ती हुई कहने लगी—खूब अच्छी तरह सबक मिल गया है मुझे। यदि मेरे पास और कोई उपाय होता, तो तुम्हें सचमुच ही छोड़ देती।

शांतनु भी आगे बढ़ा, कहा, मैंने तुम्हें छोड़ने को नहीं कहा। मैंने ऐसी भी शपथ नहीं खाई है कि तुम्हारी शकल ही नहीं देखूँगा। दोनों ठीक हैं, समय-समय पर भेंट-मुलाकात होती रहे मगर अपने इस प्रेम और प्रणय से मुझे छुटकारा दो तब। इसकी जंजीर मुझसे नहीं झेली जायगी। मैं फिर तुमसे वादा किए जाता हूँ कि तुम्हारे लिए किसी काम-धंधे की कोशिश मैं जरूर ही जी से करूँगा।

काँपते स्वर से सुषमा ने कहा, और कभी अगर, तुम्हें देखने को जी चाहे ?

—मैं खुद ही आऊँगा, तुम मत जाना। तुम्हारे जाने से ही शर्मिंदगी होगी और उससे मेरा मन और विरूप होगा। लड़की और लड़का—एक साथ इनका होना ही झमेला है। इससे तुम मुझे मुक्ति दो। शांतनु ने कहा, चलो, तुम्हें पहुँचा दूँ।

दोनों बगीचे से बाहर निकले।

ट्राम की लाइन को पार करके इस पार के फुटपाथ पर आकर शांतनु ने कहा, प्रेम वहीं सहज है, जहाँ वास्तविक समस्या प्रबल नहीं। बहुतेरे कवि और कलाकार ऐसे हैं, जो मन के लायक नौकरी मिल जाने से कविता और कला के लिए सिर नहीं खपाते। बहुतेरी प्रेमिकाएँ हैं जो दो-एक बच्चों की माँ होने के बाद प्रेम की बात भूल जाती हैं। आर्थिक गड़बड़ी की वजह से यदि कोई स्त्री प्रेम के नाम पर पुरुष का सहारा खोजती हो, तो क्या उसे सहज प्रेम कहा जा सकता है ? मैं इस पर विश्वास करता हूँ सुषमा, जिस दिन तुम पैसे कमा कर अपने घर के अभावों को दूर कर सकोगी, तुम्हारी इन प्राणहंता समस्याओं का उसी दिन प्रतिकार होगा।

सुषमा ने और कोई बात नहीं की। गली के मोड़ पर पहुँच कर शांतनु ने कहा, मैं तो चलता हूँ। मैं ठीक समय पर स्वयं ही तुम्हारी खोज-खबर लूँगा!

सुषमा एक शब्द भी नहीं बोली, एक बार भी उसने मुंह घुमाकर शांतनु को नहीं देखा। शांतनु चला गया।

लड़की नासमझ है, सीधी है—इसीलिए अपने हठ से वह संभावित परिणाम को नहीं समझ सकी। शांतनु बेबस है, बेकार है—लेकिन अगर उसके हाथ में कोई उपाय होता, तो वह अपने को इस लड़की के भले के लिए लगाता। यह लड़की निहायत मामूली है, बहुत ही सहजता से समझ में आने वाली, सदा की अबला। जीवन में मान-सम्मान नहीं है, विलास की ओर जरा भी ध्यान नहीं है; जवानी के साज-सिंगार से पुरुषों का मन लुभाने की कोशिश नहीं करती, प्रेम-विलास की गद्गद भाषा उसने नहीं सीखी। ये सदा की स्नेह की वस्तु हैं।

शांतनु एक रास्ते से दूसरे पर आ गया। उसकी प्रतिक्रिया प्रत्याख्यान से आई। उसका सारा कलेजा पीड़ा से दुख रहा है। उसे यही एकमात्र कामना रही कि सुषमा का दुःख और गरीबी दूर हो, उसका भविष्य आनंद से भर उठे।

तीन

वेकार आदमो के लिए समय का हिसाब रखकर चलना नहीं हो पाता। कोई भी किताब लेकर ज्यादा रात तक जागना और फिर काफी सबेरा हो जाने पर बिस्तर छोड़ना। सुबह का सूरज क्या होता है, यह नहीं मालूम। भोर की मीठी हवा में शांतनु बेखबर सो रहा था।

बड़ी देर से बाहर कुछ कोलाहल-सा सुनाई पड़ रहा था। शांतनु ने एक बार उधर को आँखें खोलीं और फिर करवट बदल कर नाक बजाने लगा। तथाकथित बीवी को उसने मना कर दिया है, लिहाजा अब चिंता की कोई बात नहीं। ऐसी तुरीय 'स्त्री' कै जनों के नसीब में जुटती है, कहना भी कठिन है।

बाहर कुछ बातचीत चल रही थी। इस गंदी गली में भोर की ओर एक झाड़ूदार के सिवा और कोई नहीं आता और वह चाभी के खिलौने जैसा काम करके चला जाता है।

जाने कौन अपरिचित किसी खास नम्बर का मकान ढूंढ़ रहा था। चूंकि इस मकान में कोई नम्बर नहीं लगा था, इसलिए इस पर कुछ बात हो रही थी कि इसमें शांतनु चौधरी रहता है या नहीं। मुहल्ले का कोई बच्चा इस घर के कुण्डे खटखटा रहा था।

विवश होकर शांतनु को जागना पड़ा। उसका ख्याल था, कि सुबह जागने से सेहत खराब होती है। मगर अजीब है, उसकी सेहत किसी भी तरह से खराब नहीं होती। बहुतों को उस पर इसीलिए चिढ थी कि उसकी शकल इस घर में किसी से नहीं मिलती, वह बिलकुल इस दल से, गोत्र से बाहर-सा है। वह अगर तन कर खड़ा होकर आँखें लाल कर ले तो एक बड़ी चाची को छोड़कर सबका कलेजा काँपने लगता है।

घर का कोई अभी जगा नहीं था। शांतनु बाहर के उस परित्यक्त-से गंदे कमरे में सोता है जिसे छोड़ने पर महज अस्तबल का ही काम लिया जा सकता है या गऊशाला का। भाभी कहती हैं, शैतान बैल से सूना

मुहाल बेहतर। उपमा देने में बंगाली स्त्रियों का सानी नहीं—भाभी की अंतर्दृष्टि बिलकुल खरी है।

शांतनु ने मुंह धोया, कुरता पहना और बाहर निकला। बाहर आ कर वह अवाक् रह गया। सामने श्री नंदूजी खड़े थे। नंदू ने झुक कर नमस्कार किया, कुशल-क्षेम पूछा और तब विनती की, आपको फौरन चलना है छोटे बाबू।

शांतनु ने कहा, किस भाड़ में नंदू ? इतना सवेरे मुर्गे के सिवाय और कोई नहीं जागता, यह जानते हो ? मुझे कहाँ ले चलकर जिबह करना चाहते हो ?

जीभ काटकर नंदू ने कहा, छिः, ऐसा नहीं कहते छोटे बाबू। मुझे रात रहते ही जगा कर उन्होंने भेजा है, कहीं देर होने से आप बाहर न निकल पड़ें। वहीं आपका चाय का न्योता है। जैसे हैं, वैसे ही चले चलिए।

शांतनु ने कहा, दस मील दूर जाकर सवेरे की चाय पिऊँगा। वह चाय कौन-सी चीनी या शहद देकर बनी है नंदू ? कहाँ, न्योते की चिट्ठी कहाँ है ?

नंदू ने कहा, चिट्ठी देने से आप कहीं अड़ जायँ, इसलिए गाड़ी के साथ मुझे भेजा है। चलिए-चलिए, चाय पीने में देरी होने से आपकी तंदुरुस्ती खराब होगी।

—खूब ! तुम तो खासे शिक्षित किंकर हो। ठहरो, चप्पल पहन लूँ।

गली के बाहर बहुत बड़ी एक मोटर खड़ी थी, दोनों गाड़ी पर बैठ गए। नंदू बदस्तूर ड्राइवर के पास बैठा। गाड़ी तेजी से दक्षिण कलकत्ते की ओर दौड़ पड़ी। उस नये रास्ते से ही चले।—जिस रास्ते से उस रोज शांतनु कंधे पर सूटकेस उठाये हावड़ा स्टेशन से आया था। सवेरे कलकत्ते का बाट-घाट अच्छा लगता है, यह शांतनु ने आज पहली बार आविष्कार किया।

बीसेक मिनट लगे पहुँचने में। गाड़ी एक विशाल मकान के गेट के अन्दर घुसी। सामने के पक्के आँगन के एक कोने से होकर सीढ़ी दुमंजिले की ओर गई है। नंदू के पीछे-पीछे शांतनु उसी सीढ़ी से ऊपर की ओर चला। नीचे के फ्लैट में एक अमीर पंजाबी परिवार रहता है। पायजामा वाली एक औरत उन्हें देखकर फिर अन्दर चली गई।

दुमंजिले पर पहुँचते ही दक्खिन की ओर का बरामदा। उस पर

रंगीन धूप की छटा पड़ रही थी। आस-पास के दूसरे बाग तथा महलों के पेड़ों की चोटियाँ दीख रही थीं, उन पर सुबह की चिड़ियों का कल-कूजन उस समय भी चल रहा था।

नंदू का कंठस्वर सुनते ही झट ईशानी बाहर निकल आई। शांतनु हँस रहा था। ईशानी ने कहा, गनीमत कि मेरे दिमाग में यह सूझ गया जिस आदमी को और किसी भी चीज का लोभ न हो, उसे चाय का लोभ दिखाने के सिवाय और क्या उपाय था ?

नंदू जाने कब गायब हो गया था। शांतनु ने कहा, कलकत्ते में लेकिन मेरा अपना राज है, यहाँ मुझे मंत्रीत्व मिलता, तो मैं मुख्यमंत्री हो सकता था। इसलिए कहे देता हूँ, मैं डरते हुए बात करने को मजबूर नहीं हूँगा।

ईशानी ने हँस कर कहा, मुझे उसकी परवाह नहीं पड़ी है, मैं भी उसके लिए तैयार हूँ। दस साल पहले जो लड़की सर्वहारा होकर यहाँ की सड़कों पर मारी-मारी फिरती रही, आँसू के अलावा जिसे दूसरा कोई सहारा नहीं था, वह भी अब किसी बात से नहीं डरती—यह मैं भी कहे देती हूँ।

शांतनु झिझक गया। बोला, सुनने में बात बुरी नहीं लगी। सुनकर बहुतेरे लोग सचेत हो उठेंगे। जरा सुनूँ तो कहानी, क्या है ?

मुस्कुरा कर ईशानी बोली, किसी स्त्री की आत्मकथा पर इतना लोभ क्यों ? आओ, अन्दर बैठें।

तीन-चार कमरे पार करके एक कमरे में वे दोनों बैठे। तरतीब से सजे हुए सामानों का ऐसा बेहिसाब विलास कम ही देखने को मिलता है। अपने पैरों की फटी चप्पल और गई-बीती पोशाक अब शांतनु को बुरी लगने लगी। सो जरा सकुचाया-सा वह एक गद्दीदार कुर्सी पर बैठ गया। उस पर बैठकर वह मुस्कुरा कर बोला, इतनी जल्दी इतना अपनत्व देखकर मैं अवाक् हो उठा हूँ।

ईशानी ने कहा, तुम बड़े मुँहफट हो। सोच-समझकर बोलना नहीं जानते। इन्हीं कारणों से भैया-भाभी को नाराज कर रखा है, यह मैं अब समझ रही हूँ। अच्छा, तुमसे वे इस तरह खार खाए क्यों बैठे हैं, यह तो बताओ ?

शांतनु ने कहा, इतनी जल्दी सुनना हो तो नहीं बता पाऊँगा। वह जगह, जायदाद मामले, मुकदमे की बात है। उसमें रस-वस नहीं है।

ईशानी समझ गई, शांतनु की झिझक अभी गई नहीं। जरा करीब बैठ कर बोली, इतने अपनत्व से क्यों बोली, जानते हो ? तुम मेरे हम-उम्र हो। एक बात और पहली मुलाकात में तुमने भिनभिना कर मुझे खुश नहीं करना चाहा। अपने अहंकार से तुमने शुरू से ही मेरे प्रति लापरवाही दिखाई। सच कहूँ, तुम मुझे अच्छे लगे हो।

शांतनु ने कहा, समझा। मगर इसी से तो बहुतेरे लोग जाल बुनते हैं। ईशानी ने हँसकर बाँकी चितवन से देखा, मतलब ?

शांतनु एक झलक हँसा। बोला, वही पुराना किस्सा। लड़के सपनों का जाल बुनते हैं, लड़कियाँ मायाजाल बुनती हैं !

ईशानी खिलखिला कर हँस पड़ी। फिर बोली, कैसे निर्दयी हो तुम ! मिहिजाम में अंतिम दिन रहे होते तो कितना आनंद आता, सो नहीं, तुम बिना कहे ही चुपचाप भाग आए। स्त्रियों पर तुम्हें जरा भी माया-दया नहीं है ? जो बदनसीब लड़की तुम्हारे गले माला डालेगी, उसके दुःख को सोच कर मुझे अभी ही रोने को जी चाहता है। शांतनु ने कहा, ब्याह करूँगा कि नहीं, पहले यह तो तय हो ! रहने दो यह बात सभी इसी तरह से कहते हैं। उसके बाद एक दिन एकाएक राय बदल गई ! ब्याह क्यों नहीं करोगे, सुनूँ जरा ?

हँसकर शांतनु बोला, खुद खाना जानता हूँ, औरों को खिलाना नहीं आता।

ईशानी ने कहा, और वह यदि अपनी रोटी आप कमाती तो भी ब्याह नहीं करोगे ?

शांतनु के मन में सुषमा की बात चुभ गई। वह जरा देर अनमना-सा एक ओर ताकता रहा। सच तो, इस पर सहसा दूसरी कोई दलील नहीं पेश की जा सकती।

रामतीरथ चाय और कुछ खाने की चीजें ले आया। उसके बाद मुस्कुरा कर उसने शांतनु को नमस्कार किया। शांतनु उन सबों का प्रिय हो चुका है।

ईशानी बोली, रुको, मैं आकर तुम्हें चाय ढाल देती हूँ। इसी बीच लोभ से हाथ मत बढ़ा बैठना।

ईशानी उठ कर चली गई और पाँच-सात मिनट के बाद जब लौटी तो उसका साज ही और था। चेहरा साफ-सुथरा। बाल सँवारे हुए। चेहरे पर बड़ी ही शांत सुरुचि की आभा। जल्दी-जल्दी उसने नीचे वाली

टेबिल पर आमिष-निरामिष बहुत तरह की खाने की चीजें सहेज दीं। उसके बाद बोली, इजाजत हो, तो मैं भी तुम्हारे साथ बैठ जाऊँ?

दोनों ही हँस उठे। खाने बैठ गए। एकाएक ईशानी बोल उठी, लेकिन मेरी उस समय की बात का जवाब तो नहीं दिया?

शांतनु ने कहा, लड़की अगर कमाऊ हो, तो उसकी रुचि-अभिरुचि की बात आती है। मेरा ख्याल है, वह अयोग्य के गले में माला नहीं डालेगी। और दोनों ही यदि कमाऊ हों तो इच्छा-अनिच्छा की बात आती है। मेरा ख्याल है, अभी यह सब बातें निरर्थक हैं। खाने की अच्छी चीजें ब्याह से भी लोभनीय होती हैं।

ईशानी ने बड़े जतन से शांतनु के सामने की खाद्य-सामग्री को सजा दिया। बोली, तुम बड़े सयाने हो, मन की थाह नहीं लेने देते। कोई पसंद की लड़की मिल जाती तो तुम्हें काबू में लाने में देरी नहीं होती।

शांतनु ने कहा, मामला लेकिन ठीक-ठीक मेरी समझ में नहीं आ रहा है। नए-नए परिचय के बाद ही कोई स्त्री यदि मेरे ब्याह की घटक-गिरी के पीछे पड़ जाय, उसका सही कारण ढूँढ़ निकालना कठिन है। अब तो सब जैसे रहस्यमय लग रहा है।

खा चुकने पर दोनों चाय लेकर बैठे। बाहर काफी धूप निकल आई। ईशानी ने कहा, इसमें रहस्य कुछ भी नहीं है, बड़ी सहज बात है। तुम यकीन मानो, मैं यदि किसी की गिरस्ती बसा दे सकूँ, तो मुझे उसी में खुशी है।

शांतनु ने कहा, यहाँ और कोई होता, तो वह पूछता, जिसे दूसरे की गिरस्ती बसाने में इतनी खुशी है, वह मन माफिक अपनी गिरस्ती बसा सकी है क्या?

—दूसरा कोई होता तो वह जवाब मैं देती।—लगा, ईशानी के एक छोटा-सा निश्वास निकला।

शांतनु ने चाय का घूंट लिया। बोला, एक बात जानने की बड़ी ललक हो रही है।

ईशानी ने सर उठाया। शांतनु ने पूछा, इतने-इतने सजे-सजाए कमरे देख रहा हूँ, यहाँ और कौन लोग रहते हैं?

—मेरे सिवाय और कौन रहेगा?

—अकेली?

—इतने बड़े फ्लैट में कोई अकेला भी रह सकता है?

इया, ड्राइवर, नौकरानी—ये लोग कहाँ जाएगे ?

शांतनु जरा झिझक गया।

ईशानी ने डपट बताई, ऐसी अदम्य उत्सुकता क्यों ? इसके बाद जो वात आती है, वह मुँह में अटक क्यों गई ?

शांतनु अप्रतिभ होकर चुप रह जाने वाला आदमी नहीं। वह हँस कर बोला, देख-सुन कर बोला, आधा राज और राजकुमारी। वात क्या है ? लोग-वाग होते तो जरा भरोसा रहता, अब जरा आफत की गंध पा रहा हूँ।

आफत !—ईशानी हँस पड़ी—काहे की आफत। इधर-उधर ताकने जो लगे ?

शांतनु ने अब जरा दम लिया। बोला, मिहिजाम में रहते हुए मुझे लगा था, विभिन्न समाज में तुम्हारा कुछ नाम-गाम है। जभी तो डर लगता है। नामी-गरामी स्त्री से मिलने-जुलने में बड़ी झंझट है !

—नाम-गाम है या नहीं, पता नहीं। मगर झंझट किस वात की ?

—जो आदमी आता-जाता है, उसके बारे में बहुत तरह की झूठी अफवाहें फैलती हैं और नाहक ही बहुत अपयश सिर पर मढ़ा जाता है।

ईशानी का चेहरा अब गंभीर हो आया। बोली, इस बात के बाद अब मजाक नहीं चल सकता। एक बात बताऊँ, मेरी अपनी कोई बद-नामी नहीं है। यहाँ मैं अकेली रहती हूँ। कभी-कभार एकाध जने जो आते हैं, वे बड़े साफ-सुथरे समाज के लोग हैं। एक बात याद रखना शांतनु, जो बदनामी फैलाते हैं, वे दुर्बल होते हैं और बदनामी के बोझ से जो झुक जाते हैं, उनके भी रीढ़ नहीं होती। लो, थोड़ी चाय और लो।

शांतनु के सामने चाय ढाल कर ईशानी जरा शांत भाव से फिर बोली, तुमसे बड़ी जल्दी गाढ़ी मिताई किए ले रही हूँ, इसी से तुम्हारे मन में संदेह रह जाता है, यह मैं समझ रही हूँ। मिहिज़ाम में भी मैंने तुममें यह संदेह देखा था और यहाँ भी तुम चीर-चीर कर मेरा विचार निकाले ले रहे हो। लेकिन मैं सच कह रही हूँ, मुझ पर विश्वास करके तुम ठगोगे नहीं।

शांतनु चुप रहा। आंतरिकता से ईशानी का गला जैसे काँप रहा था। आज का यह सबेरा अनोखा लग रहा था। सारे निराशा भरे जीवन में यदि दो-एक क्षण भी दिव्य जोत से जल उठें, तो वही तो जीवन का परम मूल्य है। मिहिजाम का वह थोड़ा-सा समय रूपकथा-सा लगा

था लेकिन आज के सबेरे का यह आनंदलोक, यह भी गोया बहुत कुछ अवास्तव है।

मुँह उठाकर शांतनु जरा हँसा। बोला, मिहिजाम में तुम्हें ऐसी सब बातें कह आया था, जो थोड़े-से परिचय में किसी भी भली स्त्री को नहीं कही जा सकतीं। लेकिन तुमने हँसकर सब मान लिया था।

ईशानी ने कहा, तुम्हारी बातों में मजाक था, घृणा-विद्वेष कुछ नहीं था, इसीलिए सब अच्छी ही लगी थीं।

लेकिन आज किस इरादे से बुलवा भेजा है?

इरादा तो एक है—ईशानी झट हड़बड़ा कर बोल उठी,—नहीं-नहीं, डरो मत। कोई गलत इरादा नहीं है। तुम बेफिक्र रहो।

शांतनु ने कहा, मैं लेकिन यह कह दूँ, किसी लड़की के ब्याह की घटकगिरी मुझसे नहीं होने की।

काँच का बर्तन जैसे झन्न-से चूर-चूर हो जाता है; ईशानी की गंभीरता भी वैसे ही हँसकर चूर-चूर हो गई। शांतनु ने उसी हँसी में ऊपर से जोड़ दिया, जिंदगी में मुझ पर से बहुत तरह की दुर्गतें गुजरीं, लेकिन एक धनवान स्त्री को कंधे चढ़ाकर लड़का ढूँढ़ता फिरूँ—इस मुसीबत में मुझे न डालो दुहाई है।

हँसी पर हँसी ईशानी का आँख मुँह लाल हो उठा। कैसा चकनाचूर उस हँसी का रूप! 'जाह्नवी मुक्ताधारा ले! उन्मादिनी-सी दिशा भुलाए।' उसी हँसी को और जरा खींच कर ईशानी ने कहा, मैं यदि यह कहूँ कि ब्याह नहीं, उससे भी खौफनाक कोई चीज?

मतलब?—शांतनु ने आँखें गुरेरीं—प्रेम-कहानी? नहीं-नहीं, प्रेम-कथा की दूतगिरी भी मुझसे नहीं होने की।

झटपट मुँह पर आँचल डालकर ईशानी ने हँसी रोकने की बहुत कोशिश की। बोली, इससे ज्यादा शायद और कुछ नहीं सोच सके? तुम्हारी कवि-कल्पना की दौड़ बस यहीं तक है?

शांतनु निरुपाय हो पीछे की ओर टिककर बैठा। उसके बाद निराशा से बोला, तो फिर यह समझूँगा कि मुझे बंदर-सा नचाने के लिए ही आज यहाँ बुलवाया है!

ईशानी ने कहा, तुम नाचने वाले लड़के नहीं हो यही जानकर पास बुलाया है। मैं खुद ही तुम्हारे यहाँ जाती, लेकिन कहीं तुम्हारे [illegible] में कानाफूसी हो, इसीलिए नंदू को भेजा था। सुनो, अब मजाक

तुम्हारे भाभी-भैया से बातचीत करके तुम्हारे घर की आबहवा को आदि से अंत तक भाँप लेने में मुझे मिनट भर भी नहीं लगा। उस घर में तुम हरगिज नहीं टिक सकोगे, यह मैं कहे देती हूँ।

शांतनु ने कहा, लेकिन वह मेरी बाप-दादों की जगह है, उसका खिचाव और तरह का है। कितनी ही दुर्दशा क्यों न हो, वह मेरा अपना घर है; जितना भी अपमान सहना पड़े, वह मेरा निजी अधिकार है।

ईशानी ने कहा, बाप-दादों का घर है, महज इसीलिए उस अंधे कुएँ में उपवास करके औंधे पड़े रहोगे? मनुष्यता के अपचय को नहीं डरते?

शांतनु ने कहा, तुम उसे किस भरोसे बहा देने को कहती हो?

ईशानी ने कहा, वह अपने आप ही बह जाएगा शांतनु, तुम उसे हरगिज पकड़ कर नहीं रख सकोगे। तुम भाई-बहन जब नाबालिग थे, तो तुम्हारी विधवा माँ से उन लोगों ने सही-वही बहुत कुछ करा लिया है। बारह बरस से ज्यादा दिनों तक टैक्स-वैक्स दिया है, तुम्हारी बहन का ब्याह करा दिया है, तुम्हारी विधवा माँ का खर्च चलाया है।—इसके बाद भी क्या उस जायदाद पर तुम्हारा अपना हक रह गया?

शांतनु ने कहा, मैंने सुना है, एक बार हम लोगों का हिस्सा शायद नीलाम पर चढ़ा था?

—तब तो और रही! बेनामी करके उसे खरीद भी रक्खा होगा। अभी लोक-लाज से तुम्हें भगा नहीं रहा है। लेकिन तुमने जहाँ हाथ बढ़ाया कि खदेड़े जाओगे।

शांतनु अवाक् होकर ईशानी की बातें सुन रहा था। उसने पूछा, इतनी सारी बातें तुमने कहाँ से जानीं?

मैंने?—ईशानी ने कहा—मैं तब सोलह साल की थी। गाँव के घर से खेद दिए जाने के कारण एकबारगी अकेली सड़क की कुतिया की तरह चली आई थी। याद आता है, उस दिन साँझ को रोती-रोती निकली थी। अनुभवहीन, अबोध, नासमझ एक गंवई गाँव की लड़की, मैं उस समय रास्ता नहीं पहचानती थी।

शांतनु ने उत्सुकता से पूछा,—तो? क्या किया?

रहने भी दो शांतनु—ईशानी ने मुस्कुरा कर कहा,—अंगरेजी के उस उपदेश को याद करो—रोओ तो अपने दुःख में अकेले रोओगे, लेकिन तुम अगर हँसो, तो सारी दुनिया तुम्हारे साथ हँसेगी। उन बातों की याद आने से उस दिन की आँखों में आज भी आँसू आ जाता है।

ईशानी उठकर दूसरे कमरे की ओर चली गई।

अपार उत्सुकता लिए शांतनु ने पीछे से उसकी ओर ताका। आश्चर्य है। आदि से अंत तक आश्चर्य ! प्राणों की एक ऐसी उमड़ी बाढ़, जो सारी सत्ता को अभिभूत किए देती हो। इस लीलायित तन-वल्लरी का वर्णन करने से गहरी आसक्ति जाहिर होती है,—न? रहे, उस बात में शांतनु को उत्साह कम है। लेकिन उस देहलता की आड़ में जानें कहाँ तो इस्पात की सख्ती है, जिसका आभास बीच-बीच में मिलता है।

बेला काफी हो चुकी थी। अब शांतनु को जाना चाहिए। बड़ी दूर जाना है। बड़े लोग जब न्योता करते हैं, तो आने-जाने की जहमत का ख्याल नहीं करते। शांतनु को अगर बराबर यहाँ आना-जाना पड़े, तो नाक में दम आने की नौबत होगी। जब तब धुली-धुलाई चुस्त-दुरुस्त कुरता-धोती कहाँ मिलेगी ? एक भले आदमी जैसा रूमाल चाहिए। अभी-अभी ही एक नया जूता भी खरीदना पड़ सकता है। उसके बिना काम नहीं चलने का। रोज दाढ़ी बनाने की परेशानी और नाहक खर्च। जेब में हर वक्त कुछ पैसे। न ! असम्भव है। धनियों से मिलना-जुलना इसीलिए मुश्किल है। पग-पग पर काँटे चुभेंगे, कदम-कदम पर सकुचाहट और व्यवहार में बाल बराबर भी इधर-उधर हुआ कि बस, मजाक का पात्र ! कृपा ! गरीबों में और कुछ चाहे न हो, बेरोक आजादी तो है। उस पर कोई दायित्व नहीं, संकोच नहीं। वजन की हुई हँसी, हिसाब किया हुआ प्रेम, नपा-तुला स्वागत—गरीब के यहाँ यह सब कुछ भी नहीं। वे दोनों हाथ फैलाकर बुलाते हैं, हृदय के आसन पर बिठाते हैं, हृदय को उघाड़ कर प्यार करते हैं। विदुर के अन्न को बाँट कर आनंद के भोज में वे बुला लेते हैं।

शांतनु उठ खड़ा हुआ। उसका अपना ही मन डाँवाडोल हो रहा था। इस सारे हँसी-मजाक की ओट में वह ईशानी के प्रति क्या वह अश्रद्धा नहीं दिखा रहा है ? मगर अनंतयौवना उर्वशी के लिए इस ऐश्वर्य-संपदा के बीच अकेले एकांत में रहना संदेहजनक नहीं है क्या ? इस स्त्री के बीते दिनों से क्या एक गहरे रहस्य की बू नहीं मिल रही है ? कौन, क्या और क्यों। बुरा मतलब न सही, लेकिन आखिर इरादा ? सही परिचय क्या है, जात-गोत क्या है ? नंदू आया। जूठे बर्तनों को सहेज कर उठा ले जाने से पहले बोला, छोटे बाबू, दीदी जी रसोई में गई हैं। तुरत आ रही हैं। आपको बैठने के लिए कहा है।

शांतनु ने कहा, लेकिन मुझे तो बड़ी दूर जाना होगा नंदू। तुम्हारी महिला-मालकिन अब निश्चिंत होकर नहाएँ-खाएँ, मैं तब तक दुनिया की राह पर निकल पड़ूँ। उनसे कहना जाकर।

उन्हें इसका अंदाज है।—कहती हुई परदे को हटाकर ईशानी अंदर आई। शांतनु को फिर से लौटकर खड़ा होना पड़ा। नंदू चला गया।

ईशानी बोली, तुम्हारा अपना मन ही गड़बड़ है। तुम किस उम्मीद से आए थे ? हर पल ऐसी बेचैनी क्यों ? आओ, अंदर आओ।

—अंदर ? किसलिए ? अंदर जाकर क्या करूँगा ?

—हाय राम, जरा देर आराम नहीं करोगे ? डरने की बात नहीं, जब तक जी चाहे, अकेले रहो। मैं जरा भी तंग नहीं करूँगी।

शांतनु ने कहा, कुछ ख्याल मत करना, मामला अब जरा पेचीदा ही लग रहा है।

आँखें तरेर कर ईशानी ने कहा, मुझे अबला समझकर बार-बार गलती मत करो शांतनु। अंदर आओ।

—मैं लेकिन इसके लिए बिलकुल ही तैयार होकर नहीं आया।

ईशानी के पीछे-पीछे पूरब का बरामदा पार करके शांतनु एक कमरे में पहुँचा। ईशानी ने कहा, खा-पीकर आराम करो, उसके बाद काम की बात होगी।

—फिर कैसा खाना ?—शांतनु ने जानना चाहा।

—जलपान के बाद दोपहर का भोजन—यह कहकर ईशानी बाहर चली जा रही थी। हड़बड़ा कर शांतनु ने आवाज दी—सुनो, सुनो—

ईशानी ने हँसकर कहा, मैं जब तक लौट नहीं आती हूँ, उस बड़े आईने में अपनी शकल देखो और गलती को सुधारो। हाँ, एक बात और, कमरे के अंदर खड़े रहकर किसी स्त्री को ऐसे हड़बड़ा कर नहीं बुलाना चाहिए।

ईशानी रसोई की ओर चली गई।

शांतनु काठ का मारा-सा खड़ा रहा। इसके ऊपर कुछ कहने को नहीं था। उसने एक बार इधर-उधर ताका। सामने ही गौतम बुद्ध की एक तसवीर थी—हड्डी और चमड़े की ठठरी-सी। एक और तसवीर, विदेशी दांते और बिएत्रिस की पहली मुलाकात, आईने के पास सजी-सजाई सेक्रेटेरिएट टेबिल—उस पर अँगरेजी और बँगला की कुछ किताबें करीने

से रक्खी थीं। तिपाई पर काँच की एक सुराही और ग्लास। एक ओर दूध धुला-सा धप-धप बिस्तर। दक्षिण की खिड़की से बाहर बहुत दूर तक पेड़-पौधे दिखाई दे रहे थे।

अपने झिझके पैरों में शांतनु ने बल एकत्र किया। दो डग बढ़कर सुराही से पानी ढाल कर गट-गट करके उसने पिया। इससे तो सुषमा के पास रहना सुरक्षित है। लेकिन यह भी निश्चित्त कैसे कहा जा सकता है? एक बिना ब्याह के ही माँग में सिंदूर लगा रही है और दूसरी, दिन की खुली रोशनी में ही उसे बाँध-बूँधकर अगाध पानी में डुबा देने की कोशिश कर रही है। एक उसे हरगिज छोड़ना नहीं चाहती और दूसरी उसे हरगिज माफ करने को तैयार नहीं। ये दोनों, महज दो स्त्रियाँ नहीं, दो लहरें हैं। इन दो लहरों के थपेड़े खा-खा कर आखिर वह कहाँ जाकर खड़ा होगा, कह सकना कठिन है। लेकिन यह परिस्थिति उसकी काम्य नहीं थी। इसमें से कोई भी प्यार नहीं है। दोनों में से किसी में रस की कल्पना नहीं। कभी उसकी निगाहें भी रंगीन थीं, लेकिन वे पवित्र थीं। अर्वाचीन, अनुभवहीन और नासमझ मन था उसका। अमरावती के झरोखे से कभी किसी दिन कोई एक लड़की उसे बुलाएगी, उस बुलावे पर वह चाँदनी रात में राजहंस की तरह अपने सफेद डैने फैलाकर सुदूर गगन की ओर उड़ जाएगा,—स्त्रियों के संबंध में ऐसी ही थी उसकी धारणा। फूलों की लताओं में, चाँदनी की छटा में, बाग-विथी में कभी उसके दर्शन होंगे,—जिसे देखकर उसके कलेज़े के लहू में वीणावादिनी के सुर की मूर्च्छना झंकृत होगी। कपोत की वह थकी हुई आवाज कहाँ है—जहाँ सूने मन की चरम वेदना उच्छ्वसित हो रही है? वह मिठबोली वन-विहगी कहाँ है? कहाँ है वह चित्र-रँगी-सी परिहासमयी मधुपतंगी?

लेकिन ये सब वह नहीं हैं ये बड़ो सुलभ हैं। इनके लिए तप नहीं करना पड़ता है, ये मायावन के इंद्रजाल की ओट में नहीं रहतीं, ये बहुत ही स्पष्ट हैं, बड़ी प्रत्यक्ष ये रस की कल्पना के आनंद-लोक से उतर [illegible] नहीं आई हैं—ये सब कालीघाट के मोड़ पर खड़ी रहती हैं। चूँकि [illegible] लोगों ने आकार के बंधन में उसे पकड़ा है, इसीलिए शांतनु का [illegible] बार धक्का खा रहा है।

एकाएक एक प्रचंड विद्रोही मनोभाव ने शांतनु को [illegible] दिया। उसकी सारी इच्छा-अनिच्छा मानो जंजीर में [illegible] इसने उसे सहसा भूत की तरह दबोच लिया। इसका [illegible]

हो जाना चाहिए, आज ही निर्णय हो जाना चाहिए। शांतनु कमरे के अंदर चहलकदमी करने लगा।

कोई घंटे भर बाद होठों पर वही हँसी लिए ईशानी फिर लौट आई। लेकिन शांतनु कमरे में नहीं था। ईशानी ने इधर-उधर देखा। बरामदे पर जाकर खड़ी हुई। दूसरे कमरे में गई। बैठके से लौट आई। न, शांतनु कहीं नहीं था। ऊपर देखकर ईशानी नीचे गई। पक्के आँगन के उस ओर गाड़ी खड़ी थी। गौर करके देखा, तिवारी गाड़ी के अंदर सोया है, जैसा कि मौका मिलते ही हर ड्राइवर गाड़ी के भीतर सो जाया करता है।

शांतनु कहीं नहीं था। ईशानी फिर ऊपर चली आई। नंदू बाहर गया था। उसने आकर इधर-उधर देखा। बोला,—दीदी जी, छोटे बाबू तो कहीं दिखाई नहीं दे रहे हैं!

ईशानी ने कहा,—नहीं। वह नहीं हैं।

उधर रामतीरथ की रसोई बन चुकी थी। नंदू ने ही सारा इंतजाम कर दिया था। लेकिन मुँह खोल कर नंदू ने कुछ पूछा नहीं। ईशानी की ओर एक बार ताक कर वह अपने काम पर चला गया।

पाइकपाड़ा की उस गली में पहुँचने में कोई घंटा भर लग गया। यह मौरूसी मकान का राजपथ है। गली के उस छोर पर गाय-भैंसों की खटाल है। इधर की नालियाँ सदा बदबू से भरी रहती हैं। हर तरफ मक्खियाँ भिनभिना रही हैं। हैजे की महामारी जब फैलती है तो पहला मरीज यहीं मरता है, टाइफाएड की पहली बलि यहीं चढ़ती है। पीछे की ओर चौधरियों का वही पुराना टूटा-फूटा शिवाला है, बरसात में सिर्फ बकरियाँ शिवजी की गोद में पनाह लेती हैं।

शांतनु का पैतृक घर। हर पग पर रोगी और मूढ़ गृहस्थ तथा आवारे कुत्ते रहते हैं। सारी दुनिया में मनुष्यों का अभियान चल रहा है, चल रही है विज्ञान की जय-यात्रा, अंगरेजों का साम्राज्य टूट गिरा, नए मानव-वंश के जागरण की हलचल हर ओर सुनाई पड़ रही है; जरा, व्याधि, विकार के खिलाफ प्राणों की बाढ़ प्लावन सारे ही जीर्ण संस्कारों पर चोट कर रहा है—लेकिन वह चेतना शांतनु के प्राचीन पैतृक घर के दरवाजे पर नहीं पहुँची है। यहाँ सारी कलंक-कलह, मलिनता के आस-पास वैसी ही परम निश्चितता है। यहाँ वही आदि और आदिम पृथ्वी अपनी वैसी ही उद्वेगहीन शक्ल लिए खड़ी है।

शांतनु घर में दाखिल हुआ। दोपहर की धूप चारों ओर चटख आई थी। और चाहे कुछ न हो, यहाँ जिन्दगी उद्वेगहीन और अनाहत है। जीवन की समस्या का यहाँ कोई मोड़ नहीं।

शांतनु जरा अवाक् हुआ। उसके दरवाजे पर दो बड़े-बड़े ताले लटक रहे थे। ये दोनों ताले लोहे के सन्दूक के थे, उसके पिता के अमल के। मुँह घुमाया तो देखा, उसका वह गंदा बिस्तर बरामदे के एक ओर पोटली बना पड़ा था। पन्ने फटी-सी कुछ पुरानी किताबें रास्ते के पास सहेज कर रक्खी हुई थीं। सूटकेस खुला हुआ था। उसके अन्दर दो-एक कपड़ा, कुरता और उसका कैमरा। कुछ पुराने अखबार बुहार कर फेंक दिए गए थे। किताबों की थाक के पास दो-एक जिल्दवाली कापियाँ—उनके ऊपर तसवीरों का पैकेट।

शांतनु ठिठक कर खड़ा हो गया। माजरा ठीक-ठीक समझ में नहीं आया। उसने आवाज दी,—मीनू ?

कहना फिजूल है, मीनू आस ही पास थी। पुकारते ही वह सामने आ खड़ी हुई। बोली, क्या छोटे भैया ?

—ये सामान यहाँ क्यों ? मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ ?

मीनू बोली, हम लोगों की चिट्ठी पाकर बड़े भैया मिहिजाम से लौट आए। तुम्हारा वाला कमरा मरम्मत करके अब किराए पर लगा दिया जायगा।

शांतनु ने कहा, और मैं किस कमरे में रहूँगा ?

—दूसरा कोई कमरा तो खाली नहीं है।

एकाएक खून की उबाल से शांतनु का दिमाग डोल उठा। वह बोला, तो इसका मतलब यह हुआ, कि मेरे अपने मकान से मुझको निकाला जा रहा है, यही न ?

चारों ओर सन्नाटा-सा। मीनू सर झुकाए खड़ी रही।

—भैया-भाभी कहाँ हैं ?

सर उठाकर मीनू बोली, वे लोग शायद खा रहे हैं।

शांतनु ने कहा, तू उन लोगों से जाकर पूछ आ, मुझे अपने मौरूसी हक से हटाया क्यों जा रहा है ? इसका नतीजा क्या होगा, यह क्या वे नहीं समझते हैं ?

इतने में ऊपर के बरामदे से गर्दन बढ़ा कर भैया ने कहा, नतीजा हाईकोर्ट से समझने की कोशिश करो, मेरे मकान में

की क्या पूछना ?

—मकान आपका अकेले का नहीं है !

—इसका जवाब भी वहीं मिलेगा।

शांतनु कुछ और कहने जा रहा था कि मीनू बोल उठी, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ छोटे भैया, तुम चुप रहो। बड़े भैया ठीक ही कह रहे हैं। कर्ज के कारण इस घर का तुम्हारा हिस्सा बिक गया है। याद नहीं है, नाम खारिज करने के लिए तुमने खुद ही कई साल पहले सही बनाई थी ?

मीनू की बात से शांतनु ठंडा हो गया। बोला, तो होगा। याद नहीं है। मैं नाबालिग था, उस समय इन लोगों ने मुझसे बहुत सही बनवा ली थीं।

—नाबालिग क्यों होने लगे ! कागज-पत्तर में बालिग होने का सबूत है ! दस्तावेज की उम्र और ही होती है, तुम कुछ भी नहीं जानते !

मीनू की बात से कम से कम विवाद तो मिट गया। उसाँस लेकर शांतनु ने कहा, खैर, तो चला ही जाता हूँ। कहने को कुछ नहीं है।—कहते-कहते सूटकेस में से उसने अपने प्रिय कैमरे को ही सिर्फ उठा लिया।

मीनू ने कहा, जानते हो, यह झमेला सिर्फ इसलिए हुआ कि तुमने शूद्र की लड़की से शादी की ! भैया मारे गुस्से के इसीलिए और आग हो गए हैं कि इस घर में तुम रहोगे, तो लड़के-लड़कियों की शादी नहीं होगी ! समाज से अलग होना पड़ेगा। तुम्हारी हरकत से यों ही तो ढिंढोरा पिट गया !

शांतनु के मुँह से और कोई बात नहीं निकली। शायद हो कि इस दोपहर की धूप की छाया में टूटे-फूटे अँधेरे घर के आस-पास प्रेत-छाया-से उसके माँ-बाप उसे अंतिम विदाई देने के लिए आ खड़े हुए हों। इसीलिए उसकी दोनों आँखें डबडबा आई थीं। लेकिन उसने अपने को जब्त किया। एक बार इधर-उधर ताका। भाभी-भैया जब लौट आए हैं, तो वह छोटा बच्चा कहीं न कहीं खेल रहा होगा। शांतनु की दोनों आँखें भूख से बेकल-सी उस बच्चे को इधर-उधर खोजती फिरीं। लेकिन वह कहीं नजर नहीं आया। अखिर निश्वास को दबाकर ही शांतनु कैमरे को कंधे से लटका कर चला गया।

भाभी जल्दी-जल्दी सीढ़ी के नीचे उतर आई थीं। मुंह निकाल कर

बोलीं, इस दोपहर में एक मुट्ठी खाकर ही जाते !

तब तक शांतनु गली के उस मोड़ पर पहुँच चुका था।

इसमें कोई शक नहीं कि उसके जीवन की गति में जंग लग गई थी। आज महज आधे घंटे में पलक मारते ही भाग्य का पहिया घूम गया। कुछ भी सोचने, डूब कर कुछ भी समझने के पहले जोरों का एक धक्का खाकर वह छिटक कर ऐसे एक जीवन में आ पड़ा, जहाँ आश्रय नाम की कोई चीज ही नहीं रही। एक ऐसी निर्दयी मुक्ति, जो बिलकुल बेरोक खुली है, जिसके आस-पास छाया और आश्रय का नाम तक नहीं।

कैमरे को कंधे पर लटकाए वह रास्ते पर सीधे चल पड़ा। फोटो बिकने की बाबत कुछ रुपए उसकी जेब में थे। लेकिन वे इतने नहीं थे कि उन्हीं को लेकर वह तकदीर की खोज में निकल पड़े। एक बात याद आई, ईशानी की धारणा कितनी सही थी। स्त्रियाँ जिसे सहज अनुभूति से समझ लेती हैं, पुरुष उसे युक्तियों से समझने की कोशिश में गड़बड़ा देता है। ईशानी को पता था, भाभी-भैया की सत्यानाशी भूख शांतनु को राह का भिखारी बनाने पर तुली हुई है। लेकिन वह इतनी जल्दी और इस दानवी ढंग से होने वाली है, यह शायद ईशानी भी नहीं सोच सकी थी।

ठीक है, ईशानी से वह कहानी अभी सुनी भी नहीं गई है। सोलह साल की उम्र में गँवई गाँव की एक लड़की खाली हाथों एक शाम को गाँव से निकल पड़ी थी। बिजली-से कौंधते हुए उस चंचल कटाक्ष में उस दिन करुणा भरी आँसू-सजलता थी ! बस, इतना ही कहा था उसने। उसके बाद उसकी सारी आत्मकथा अँधेरे में ही ढँकी पड़ी है। उसे भी क्या किसी शक्तिशाली के अन्याय ने ही शांतनु की तरह एक दिन अपने घर से निकाल बाहर किया था ?

अपने अनजाने ही शांतनु ईशानी के घर की ओर चल पड़ा था। लेकिन इस बार वह उससे जाकर क्या कहेगा ? दौलत के सामने खड़े होकर अपनी बेचारगी और बेबसी का बयान करेगा ? वह तो दिल की दयनीय दीनता होगी ! इसी का नाम तो मुट्ठी भर भीख है !

शांतनु झट दूसरी ओर मुड़ गया। वह कालीघाट की ओर चला। सुषमा को अपनी मौजूदा हालत बता आना जरूरी है। अब तक किसी एक घाट पर उसका लंगर पड़ा हुआ था, वह आज उखड़ गया और अब नाव अथाह मँझधार में है। सहारे को कुछ नहीं रहा, कोई भरोसा नहीं

आशा नहीं रही।

बस से उतर कर वह सुषमा के घर की तरफ चला। मगर जा क्यों रहा है वह! प्राणों का कोई खिंचाव तो नहीं है! सुषमा उसे पति के रूप में जानना चाहती है, बेसहारा लड़की को एक तिनका थाम लेने की इच्छा! इसमें तो प्रेम की बात कहीं नहीं है! प्रेम नहीं, अनुराग नहीं—सिर्फ पति-पत्नी होने की इच्छा। गरीब घर के अँधेरे फर्श पर एक किस्मत की मारी लड़की औंधे मुँह पड़ी हुई है, वह केवल रोजी का एक अवलंब चाहती है। एक पति। पति मिल जाने से ही वह खुश। उस पति पर डाल दो अपने दुर्वह भाग्य का बोझा, दुस्सह दायित्व! उसके बाद आप ही निश्चिंत रहो, एक पुरुष पिस कर मरे! स्त्री के एक स्थूल मांसपिंड की स्वच्छंदता के लिए एक बेकसूर मर्द ताजिन्दगी गुलामी का अंगीकार करे, मैं मगर उसकी पत्नी बनकर निश्चिंत हो जाऊँ! मेरा रोटी-कपड़ा बँधा रहे, कहीं न कहीं कोई बसेरा रहे।—कोई चिंता नहीं। पति को खुश रक्खो, कभी-कभी 'पति परमगुरु' का मीठा वचन सुनाओ, नासमझ पुरुष उसी में मगन। संतान धारण के असीम अध्यवसाय के साथ पति के पाँवों पर हाथ फेर दो, बस, सदा के रोटी-कपड़े के झमेले से तुम निश्चिंत हो गईं। मर्द की पेशानी से पसीने का सोता बहे, घायल पैरों से लहू बहा करे; दिन बिताने की ग्लानि से वह कंठ तक डूबा रहे, अन्न-वस्त्र जुटाने में पग-पग पर पुरुष का सर झुका करे—और स्त्री सिर्फ उसके सुख की सेज की संगिनी रहे!

शांतनु ने अपने को धिक्कारा। उसके बाद वह गली के मोड़ से दूसरी ओर मुड़ गया। उसके मुखमंडल पर घृणा झलकती रही, उस भीड़ की हलचल में उसने वह धिक्कार ही देखा। मर्द उसी गंदी वासना की ओर रोज ही दौड़ रहा है। चारों ओर कर्म का यह जो कोलाहल है, उसका मतलब ही यही है। लार भरा लोभ लिये औरत बैठी है और उस लोभ के घिनौने उपकरण पुरुष जुटाता है! इसका नाम है नर-नारी का सम्मिलित जीवन! यह खेल नगर का है, यह खेल सम्पदा का है!

इससे बेहतर कि मौत हो, इससे मुक्ति मिले। शांतनु तेजी से चल पड़ा। इस षड्यंत्र से छुटकारा मिल जाय, वही अच्छा है। किसी अजाने देश के अचीन्हे जगत् में, सूने समुद्र तट पर, एकांत वनलोक में, पहाड़ी प्रदेश की किसी विहग-मुखर उपत्यका में जा रहे, जहाँ आसमान ने उसके लिए अनंतशय्या बिछा रखी है! वहाँ जाकर किसी नामहीन, परिचय-

विहीन संन्यासी के आश्रम के पास नदी किनारे खुशी से अपने दिन बिताए। सभ्य जगत् पीछे रह जाए, वह आगे बढ़ चले।

—अरे ओ जनाब, सुनते हैं? कैसे हैं? अरे, इधर, इधर—यहाँ! मिहिजाम में मुलाकात हुई थी, याद है?

रमेन बाबू लपक कर आ पहुँचे और उन्होंने शांतनु का एक हाथ पकड़ लिया।

शांतनु ने मुस्करा कर ताका, 'अच्छे हैं?'

'अच्छा रहना ही पड़ेगा!'—रमेन बाबू ने कहा, अपने शरीर पर अपना कब्जा है, यह गलत बात है। ईश्वर ने एक कुंजी दे रक्खी है, इसी से देह की यह घड़ी चल रही है। आपकी इच्छा या अनिच्छा, जो भी रहे, यह यंत्र अपने नियम से चलता रहेगा। खैर! जा कहाँ रहे हैं? आपका घर तो वही पाइकपाड़ा की तरफ है। चलिए न, हमारे यहाँ से जरा चाय पीकर जाइए।

शांतनु ने कहा, बड़ी खुशी हुई, आपसे भेंट हो गई, लेकिन मुझे एक जरूरी काम से जाना पड़ रहा है। ठीक तो है, और किसी दिन आपके यहाँ जाकर खूब गप-शप कर आऊँगा।

रमेन बाबू हो-हो करके हँस उठे। बोले, लीजिए! अजी, जो और दिन सो आज। आपका संकोच नहीं गया। ईशानी ठीक ही कहती थी, आप बड़े लजीले हैं। लेकिन वह अगर सुनेगी कि आपसे रास्ते में भेंट हुई और मैं आपको साथ नहीं ले आया, तो वह सुलग कर आग हो उठेगी। सो, आपकी अब एक नहीं चलने की मिस्टर चौधरी, अब गए बिना छुटकारा नहीं है।

एक भुजा से शांतनु को लपेट कर रमेन बाबू खींच ले चले उसे।

भाग्य का खिलौना शांतनु। बहती धारा में वह रहा है। उस प्रवाह के धक्के से उसकी इच्छा का कोई बस नहीं चलता। वह नियति के हाथ का खिलौना है। कभी तरंगों की चोट और कभी पानी के आवर्त में चक्कर खाना। लिहाजा, उसे रमेन बाबू पर अपने आपको छोड़ देना पड़ा।

वे चौड़े रास्ते को पार कर गए। उधर के फुटपाथ से कुछ दूर चले, उसके बाद फिर दूसरे रास्ते पर पहुँचे। रमेन बाबू ने कहा, बस, यही तो, यही है हमारा 'गीताली संघ'। इधर जरा एकान्त है, भीड़-भाड़ की हलचल कम है। आइए—

रमेन बाबू उमर वाले आदमी हैं। उनके आग्रह को बात-बात में नहीं टाला जा सकता। गेट पार करके शांतनु उसके पीछे हो लिया। इस ओर उस ओर—दोनों तरफ बेशुमार पौधे। सामने ही घर का दक्खिन-रुख पोर्च, उसके नीचे दो-एक नौकर और दरबान बैठे थे। रमेन बाबू के साथ शांतनु दुमंजिले पर चढ़ गया। लड़के-लड़कियाँ बहुत-सी आई थीं। किसी-किसी कमरे से गाने-बजाने की आवाज आ रही थी। शांतनु सकुचा गया। सिर्फ एक प्याला चाय के लिए, इससे ज्यादा यहाँ उसकी औकात नहीं। मुसीबत यही कि कहीं ईशानी को न पता चल जाय! आज सुबह से ही एक अजीब नाटकीय आलोड़न शुरू हुआ है, अब साँझ की बत्तियाँ जल चुकी हैं। आज दिन भर घटनाओं का घात-प्रतिघात चलता रहा, फिर भी जबरदस्त बाढ़ की सर्वनाशी ताड़ना से वह अपनी आत्म स्व-तंत्रता को बचाता आया है। फटी चप्पल और गरीबी की पोशाक पहने वह अपने पुश्तैनी हकों को बगैर लड़ाई, बिना खून-खराबे के छोड़ कर चला आया है। यहाँ इतने बड़े घर के इस समाज में उसके साथ का कोई नहीं है। शांति के लिए वह ईश्वर के दिए हुए अधिकार को छोड़कर चला आया है। गर्व से उद्धत अन्याय के तलवों के तले न्याय और नीति की अपमृत्यु जरूर हुई; किंतु शांतनु की वह मजबूत तंदुरुस्ती और पौरुष कुछ कर सके या नहीं, उस टूटे-फूटे मकान में तमाम लहू की धारा बहाकर तो आ सकता ही था! एक के बाद दूसरे का काम तमाम करके वह उस भतीजे को उठाकर विशाल राजपथ पर निकल आ सकता था। उसके हृदय में स्नेह के समुद्र का बसेरा है, मगर उसे प्रकट करने का अवसर नहीं है। वह शिशु को तेज तलवार की तरह तैयार करता। बड़े होने पर उसे रण-तुरंग की पीठ पर बिठा देता। उसके दाएँ हाथ की सख्त मुट्ठी में तलवार झलमला उठती। जहाँ इतना बीहड़ जीवन है, जहाँ इतनी मूढ़ता और कूट बुद्धि है, जहाँ इतना आलस और कुसंस्कार हैं,—मन की मलिनता, ईर्ष्या और द्वेष, निकम्मापन और साजिश—वहाँ वह कठोर तलवार इन सबका अंतिम प्रतिकार होती।

उसके बाद तैयार खड़ा होता नया जीवन, नया सवेरा। यही उसकी योजना है, इसी सत्य में उसका बसेरा है। सभ्यता की सारी कीर्तियाँ लुप्त हो जाती हैं, सारी रोशनी एक-एक करके बुझ जाती है, लेकिन आदमी युग-युग में रख जाता है कवि-कल्पना, जिसका दूसरा नाम है आइडिया। वह भी अपनी यह कल्पना, अपनी यह सत्योपलब्धि रख जाय।

रमेन बाबू एक बड़े-से हाल में जाकर खड़े हुए। वहाँ युवक-युवतियों के साथ दो वयस्क महिलाएँ भी थीं। रमेन बाबू ने सबसे शांतनु का परिचय कराया। शांतनु के लिए यह नया समाज है।

उसकी साज-सज्जा निरी मामूली, लेकिन उसके दमकते खूबसूरत चेहरे का एक स्वाभाविक आकर्षण है। उसे देखकर नजर फेरकर चल देना संभव नहीं। स्त्रियों की निगाहें बड़ी पैनी होती हैं, पुरुष के वन्य कुमारेपन का वे आसानी से आविष्कार कर लेती हैं। उन लोगों का मन ग्रहण करने का इच्छुक होता है, दिमाग होता है हिसाबी।

एक लड़की ने पूछा, कैमरे को आप अपने से कभी अलग नहीं करते क्यों?

लड़की यह हिना थी। मिहिजाम में शांतनु ने इसे देखा है। शांतनु ने कहा, यह मेरा पेशा है। चाय के न्योते पर आया हूँ, अपने पेशे को नहीं भूल सका। जहाँ-तहाँ तसवीरें लेता फिरता हूँ।

एक वयस्का स्त्री ने पूछा, इसके सिवाय और कोई काम नहीं करते?

—जरूरत नहीं पड़ती।

उसके पहनावे की ओर सबने देखा। एक नौजवान ने मेज के नीचे से दूसरे जवान के पैर में चिकोटी काटी। भाव यह कि अहंकार का चेहरा देखा? दूसरे युवक ने चिकोटी काट कर ही जवाब दिया, फिक्र न करो, खाली बर्तन में आवाज ज्यादा होती है।

रमेन बाबू निकल गए थे। दूसरे हाल में गीतों का रिहर्सल हो रहा था। चाय आई। चाय के साथ-साथ केक-बिस्कुट हिना उठाकर लाई। उसने जतन से चाय और खाने का सामान सबको बाँट दिया। हिना शायद बिना दाम दिए अपनी तसवीर पहले खिचवाना चाहती है, मेहमान की आवभगत में इसीलिए इतना ध्यान!

दूसरी महिला ने पूछा, आपको गाना आता है?

शांतनु ने प्याले से घूँट लिया। बोला, जी नहीं, गला इतना कर्कश है कि इसे कभी रास्ते पर नहीं ला सका।

अब सब लोग खुशी से हँस पड़े। किसी-किसी ने कहा, जी नहीं, आपका यह कहना गलत है! बजाना भी नहीं आता?

—बजाने में बाँसुरी पर थोड़ी-सी कोशिश की थी।

'बाँसुरी!' एक चुलबुली लड़की उछल पड़ी। बाँसुरी बजाने वाला हम लोगों के बीच नहीं है। आप हम लोगों को एक दिन अपनी

वाँसुरी सुनाइए। सुनाएँगे न ?

एक युवक से और रहा नहीं गया। वह बोल उठा, ईशानी-दी से पूछे बिना तुम उनसे क्यों अनुरोध कर रही हो तपती ?

तपती की ओर से दूसरी एक युवती ने कहा, ईशानी-दी कभी किसी से कोई अनुरोध नहीं करतीं, यह क्या तुम भूल गए हो ?

सभी चुप हो गए।

अधिक उम्रवाली उस पहली महिला ने कहा, इस मामले में उन्हें लपेटना ठीक नहीं। और वह तो यहाँ खास आती-जातीं नहीं, हम लोगों से भेंट भी नहीं होती।

एक युवक ने कहा, आपने सही फरमाया। उनके लिए अज्ञातवास में रहना ही ठीक है। उनके कहीं आने की खबर होते ही हलचल मच जाती है।

अब की शांतनु को जरा हँसना पड़ गया—क्यों भला ?

उसका सवाल सुनकर सब अचंभे में आ गए। सबने संदेह की नजर से शांतनु की ओर ताका। यह आदमी क्या कलकत्ते में नहीं रहता है ? इसने क्या ईशानी की देश भर में फैली प्रसिद्धि नहीं सुनी ? इतनी बड़ी एक कलाकार के बारे में इस आदमी को कोई खबर ही नहीं ?

बाहर रमेन बाबू का कंठस्वर सुनाई दिया और जरा ही देर में जो मुस्कुराती हुई अंदर आकर खड़ी हुईं, उन्हें देखकर सभी—वे वयस्क महिलाएँ तक—कुर्सी छोड़कर खड़ी हो गईं। उन सबके साथ शांतनु ने भी पलट कर देखा—ईशानी है।

ईशानी ने हाथ उठाकर शांतनु को नमस्कार किया—कब पधारे मिस्टर चौधरी ?

—बस जरा देर पहले। शांतनु ने शांत स्वर से कहा।

रमेन बाबू ने फोन पर आपके आने के बारे में बताया। आपसे परिचय करके ये सभी लोग जरूर खुश हुए होंगे।

—बेशक।—सबने एक साथ ही कहा।

बस, इतनी ही बोली ईशानी। वह मितभाषी है, यह नई बात है। आज सबेरे के इतिहास के बारे में दोनों ही उदासीन हैं। ईशानी अब भिन्न ही स्त्री है। बिलकुल इस्पात के फ्रेम में कसी हुई—उसमें उच्छ्वास की जरा भी अधिकता किसी ने नहीं देखी। सबने जाना, शांतनु से उसका इतना ही परिचय होगा लेकिन वह सब फिर भी अचंभे में थे। उससे

उतनी-सी बात के लिए भी सैकड़ों लोग लालायित रहते हैं। लेकिन इस आदमी को उसका जरा भी आभास नहीं है। ईशानी की प्रसिद्धि के बारे में उसे शायद कोई भी जानकारी नहीं है। और उस दुर्लभ प्रसिद्धि का उसे कोई भी ध्यान नहीं। या तो यह आदमी अतिमानव है या फिर मूढ़। मूढ़ ही होगा, क्योंकि उसका आँख-मुँह एकबारगी निर्विकार था। उसकी चेतना पर किसी बात की लकीर नहीं पड़ी।

ईशानी एक टेबिल के सामने जाकर बैठी। आज गर्मी जरा ज्यादा थी। उसके बालों की जड़ों में मोती के दानों-सी पसीने की बूँदें थीं। घर की हवा ही बदल गई। अभी तक अँधेरा था, अब मानो एक प्रज्वलित लौ आ पहुँची। सारा हाल खुशबू से महमह, गौरव की आभा से खिला हुआ।

हिना बोल उठी, ईशानी दी, मिस्टर चौधरी लेकिन बाँसुरी बजाते हैं। सच है यह ? ईशानी तौल कर हँसी,—जरा जाओ तो हिना, रमेन बाबू से फाइलें भेज देने को कहो। देख-सुनकर चली जाऊँ, जल्दी है।

हिना चली गई। बाकी लोग भी उठे। शांतनु ने अब जरा अधीर होकर कहा, अब मुझे भी जाना होगा।

ईशानी ने कहा, ठीक है। चले जाइएगा। कलकत्ते में रात के दो बजे तक गाड़ी मिलती है। बैठिए न थोड़ी देर ?

इस अनुरोध के पीछे ज्वालामुखी का उबलता लावा है, यह शांतनु का जाना हुआ है। सारे स्नेह के षोड़श उपचार को छोड़कर वह सवेरे चोर की तरह ईशानी के यहाँ से भाग आया है, इसकी कठिन लांछना भी इस अनुरोध की आड़ में छिपी है। शांतनु जरा काँपा।

लड़के-लड़कियों में से बहुतेरे उठकर चले गए। सिर्फ तीन-चार जने रह गए। उन दोनों महिलाओं की कुछ अर्जी थी। उनमें से एक बोलीं—हम लोगों ने रमेन बाबू से बहुत बार अनुरोध किया, लेकिन उन्होंने आपके पास जाने की अनुमति भी नहीं दी, आपका पता भी न देना चाहा था।

ईशानी जरा गंभीर हो रही। इसके बाद जरा हँस के बोली, मेरे पास जाने से कोई लाभ नहीं है। क्योंकि मैं जहाँ रहती हूँ, वह घर आप लोगों के लड़के-लड़कियों के नैतिक विचार का क्षेत्र नहीं है।

उन लोगों ने नम्रता से कहा, आज बड़े भाग्य से आपके दर्शन हो गए। अब की बार के लिए आप हमारे दोनों लड़कों को माफ कीजिए

संस्था की सब कुछ आप ही हैं।

शांत स्वर से ईशानी बोली, बड़ा ही ग़लत ख्याल है आप लोगों का। मेरी कुछ मदद जरूर है, मगर मेरा अधिकार निहायत मामूली है। खैर, मैं एक निवेदन करूँ। जिन सम्भ्रांत घरों की लड़कियाँ नाच-गाना करती हैं, उनके बारे में अभी भी बहुतों को खतरा रहता है, बहुतेरे लोग भँवें सिकोड़ते हैं। यहाँ चूँकि आनन्द का मुखड़ा बिलकुल खुला है, इसलिए तरह-तरह के लोग यहाँ असंयम की झलक ढूँढ़ना चाहते हैं। इसलिए यहाँ का पहला मंत्र है, नैतिक शुचिता को कायम रखना। यहाँ लोभ के उपकरण बिखरे पड़े हैं, इसलिए यहाँ बड़े कठिन संयम की जरूरत है। आपके उन दोनों लड़के-लड़की को इस संस्था में रखने से जो जहरीली भाप पैदा होगी, मैं संस्था को उसकी जिम्मेदारी लेने को नहीं कह सकती। यहीं से बहुतेरे लड़के-लड़कियाँ ब्याह करके सुखी हुए हैं, बहुतों ने प्रेम का धागा बाँधा, लेकिन असंयम की जरा भी झलक किसी ने नहीं दिखाई। यह जगह साधना और सिद्धि की है—यह प्रजापति का कारखाना नहीं है! —ईशानी जरा हँसी।

वे दोनों महिलाएँ कुछ और कहना चाहती थीं, इतने में यहाँ की नौकरानी पुट्टू की माँ फाइलों का ढेर लिये आ पहुँची। फाइलें रख कर वह चली जा रही थी कि शांतनु पर नजर पड़ गई। झट उसने घूँघट काढ़ लिया और भर मुँह हँस कर बोली, हाय राम, आप यहाँ?

शांतनु ने हैरान होकर उस अपरिचित स्त्री की ओर एक बार ताका। ईशानी ने उधर मुँह करके दोनों को देखा—बात क्या है? तुम इन्हें पहचानती हो क्या पुट्टू की माँ?

—पहचानती नहीं हूँ भला? ये तो मुखर्जी टोले के जमाई हैं! नीरेन बाबू की बहन सुषमा से ब्याह किया है। हम एक ही घर में किरायेदार हैं।

शांतनु के पाँव से सिर तक बिजली की एक लहर दौड़ गई। उसने भी मजाक से कहा, जमाई हूँ, ठीक ही पहचाना तो? आदमी की भूल तो नहीं कर रही हो? ब्याह अग्नि और नारायण को साक्षी रख करके किया जाता है, मालूम है न?

पुट्टू की माँ गद्‌गद होकर बोली, हाय राम, यह भी कहने की बात है! घर पहुँचते ही यह खुशखबरी दूँगी। लेकिन जमाई आज के युग के हैं न, समझीं दीदी जी, ये सुषमा को हरगिज सिंदूर लगाने नहीं देते हैं! इसी

पर तरह-तरह की बात उठती है !—आप वहाँ जाते क्यों नहीं हैं जमाई बाबू, वे लोग तो मारे चिंता के मर रहे हैं।

ईशानी बोली, अच्छा, तुम अभी जाओ पुट्टू की माँ।

पुट्टू की माँ चीन्हे आदमी को देखकर फिर एक गाल हँस कर चली गई। जरा देर पहले अनायास ही जो सांघातिक नाटक हो गया, इसके लिए उन दोनों को जरा भी उद्वेग नहीं। लेकिन पहले ईशानी ने बात की। बोली, आपकी स्त्री के बारे में सुन कर बड़ी खुशी हुई मिस्टर चौधरी। उन्हें यहाँ कब ला रहे हैं ? लाइए एक दिन, मिल-जुल कर गप-शप करें। चलिए, अब चलें।

दरवाजे के बाहर शायद बहुत-से लोग इन्तजार कर रहे थे, ईशानी कब निकले। वे लोग दर्शन मात्र से ही खुश ! ईशानी उठ खड़ी हुई। अब की जी-जान लगा कर शांतनु ने तीखी आवाज़ में एक चोट की, इतने में ही उठ पड़ीं। थाने के दरोगा की तरह मजे में तो बातें कर रही थीं।

सुन कर ईशानी हँसी से एकबारगी फूट पड़ी। उस हँसी ने मानो सारे कमरे में मणि-माणिक की राशि बिखेर दी। हँसी की आवाज से ही समझ में आ गया कि उसके मन में जरा भी विकार नहीं आया है। उसके बाद वह बोली, आइए। बड़ी देर से बैठा रक्खा था, जरूर नाराज हो गए हैं। अपने ड्राइवर से कह दूँगी, वह आपको आपकी ससुराल पहुँचा आएगा।

शांतनु ने कहा, प्रस्ताव बुरा नहीं है। वहीं जाने के लिए घबरा रहा था।

गनीमत कि यह दबा परिहास कोई सुन नहीं सका ! लेकिन ईशानी फिर खिलखिला कर हँसते हुए आगे बढ़ी।

वे दोनों महिलाएँ संकोच में पड़ कर पीछे से देखती रहीं। एक छोटी-सी भीड़ के बीच से रास्ता बना कर ईशानी और शांतनु उतर कर चले गये।

पीछे से उसी समय बात फैली, शांतनु चौधरी का नाम नहीं सुना है ? कलकत्ते में सबसे अच्छी बाँसुरी बजाता है। ईशानी राय की नई खोज। प्रतिभा ही प्रतिभा को ढूंढ़ निकालती है।

चार

तिवारी गाड़ी को तेज रफ्तार में लिये जा रहा था। रात के आठ बज गए। गाड़ी के अन्दर दो मृतदेह बैठी हैं—शांतनु और ईशानी। बड़ी देर से वह दोनों चुप हैं यह उन्हें याद नहीं था।

पहले ईशानी ही बोली, तुम बाँसुरी बजाते हो, यह सच है?

शांतनु नें धीरे से कहा, पहले बजाता था।

—ओ, ब्याह के बाद शायद स्त्री ने मना कर दिया है, कहीं दिल की बीमारी न हो जाये?

शांतनु नें जवाब नहीं दिया।

ईशानी ने जरा आगे झुककर कहा, तिवारी, जरा घुमा कर ले चलो, अभी नहीं लौटूंगी।

तिवारी ने तुरन्त गाड़ी को दूसरी ओर फेर दिया। शांतनु ने रोक-टोक नहीं की। ईशानी ने पूछा, लगता है, आज दिन में घर नहीं गए?

शांतनु का चोट खाया हुआ मन डोल उठा, लेकिन उसने अपने को ज़ब्त किया। उसके बाद धीरे से बोला, 'जो आदमी तुम्हें धोखा देकर चोर की तरह भाग आया, उसकी कोई बात विश्वास करने योग्य तो हो नहीं सकती।'

गाड़ी देर तक चलती रही। ईशानी ने रास्ते की तरफ एक बार देख कर कहा, यदि यह कहूँ कि उससे तुम पर श्रद्धा ही बढ़ गई है तो?

—श्रद्धा!

—किसी प्रकार का स्नेह-मोह जिसके मन को घेर नहीं सकता, वह आदमी अश्रद्धा का पात्र तो नहीं है!—ईशानी ने कहा—तुम क्या सचमुच ही घर नहीं गए? दिन भर रास्ते में ही भटकते रहे?

शांतनु ने कहा, नहीं। घर गया था।

—नहाया-खाया था?

—नहीं।

ईशानी कुछ देर चुप रह गई। तिवारी गाड़ी को लेक ले गया और एक एकांत जगह में जा खड़ा किया। उसके बाद वह खुद ही गाड़ी से उतर कर कुछ दूर हट कर जा खड़ा हुआ।

सामने ही लेक। दक्खिनी बयार से बल खाती हुई लहरों की माला-सी दौड़ रही थी। पूर्णिमा के बाद के अन्हरिया पाख का चन्द्रमा पूरब की ओर दिखाई दिया। गाड़ी के भीतर अँधेरा था। शांतनु ने कहा, तुमने तो कहा था गाड़ी से मुझे ससुराल पहुँचा दोगी?

ईशानी ने मुस्कुरा कर कहा, मेरा इम्तहान मत लो शांतनु! मैं ठीक ही पहुँचा दूँगी। दिन भर जो रूखा चेहरा लिये तुम घूमते फिरे हो, इस हालत में स्त्री के पास पहुँचाने से वह भी अचकचा जाएगी।

शांतनु कुछ देर चुप रहा। उसके बाद फट् से बोल उठा, तुम्हारा अंधा स्नेह मेरे किसी भी मिथ्याचार को नहीं देख पाता है, यह वड़ा अजीब लग रहा है। स्त्रियों की श्रद्धा क्या इतनी ही सुलभ होती है?

—तुमने यही कैसे समझ लिया कि तुम्हारे ब्याह करने से मेरी श्रद्धा कम हो जाएगी? तुम्हारे जीवन की घटना मेरे किसी स्वार्थ से तो बँधी नहीं है! तुम अनब्याहे हो, इसीलिए मुझे अच्छे लगे, ऐसी गन्दी मनोवृत्ति तो मेरी नहीं थी।

शांतनु ने कहा, लेकिन विवाहित व्यक्ति से आपकी यह अंतरंगता यदि मेरी स्त्री नहीं बरदाश्त करे?

—यह बहुत स्वाभाविक है!—ईशानी ने कहा, लेकिन अपने आचरण की पवित्रता जब तक मेरे मन को सन्देह-संकुल न कर दे, तभी तक मित्रता है। तुम्हारी स्त्री की नापसंदगी की बात जान कर उसके बारे में सोचूँगी भी नहीं, अनायास ही तुम्हारे संसर्ग को छोड़कर सदा के लिए हट जाऊँगी मैं, शांतनु!

शांतनु ने कहा, फिर तो पहला प्रश्न यह आता है कि फिर यह मिताई ही क्यों? जिसकी नींव चिरस्थायी नहीं, जिसकी आयु केवल एक आदमी की ख्याल-खुशी पर निर्भर करती हो, वैसी चीज के लिए रोज-रोज की अकुलाहट की कोई जरूरत भी क्या है? जो शिशु जन्म से स्वस्थ न होने वाली बीमारी लिए आता हो, उसके लिये तो बचपन में ही मर जाना अच्छा है!

ईशानी स्तब्ध वैठी रही। उसके बगल में शांतनु भी चुप्प। दो छाया-मूर्तियाँ अँधेरे में वैठी रहीं। अनादि अनंत सौरलोक के दो कक्षा से हटे

हुए ग्रह मानो पास-पास आकर थिर हो गए हों—दो अपरिचय जैसे अगल-बगल हों। दोनों दोनों के लिए बिलकुल अनाविष्कृत !

मुँह निकाल कर ईशानी ने तिवारी को बुलाया। तिवारी ने आकर गाड़ी को स्टार्ट किया। ईशानी ने कहा, घर चलो।

रात के प्रायः दस बज रहे थे।

यह इलाका बालीगंज के अन्त की ओर है। आसपास में अभी भी घनी आबादी नहीं हुई। कभी अचानक ठुन्-ठुन् रिक्शे की आवाज या फिर मोटर। इधर खासा एकांत है।

घर आते ही टेलिफोन बजा। ईशानी ने जाकर रिसीवर को उठाया। रमेन बाबू बोल रहे थे। वे दोनों महिलाएँ अभी भी आरजू-मिन्नत कर रही हैं। यहाँ से निकाले जाने पर उनके लड़की-लड़कों की समाज में बदनामी होगी, यह चोट उनका परिवार हरगिज बरदाश्त नहीं कर सकेगा। ईशानी ने सब सुनकर कहा, मेरी भी वही एक ही बात है। लेकिन आप अगर उन दोनों को अलग-अलग स्थिति में ला सकते हों, तो देखिए। मुश्किल यह है कि क्षमा करने से औरों को प्रश्रय मिलेगा।

ईशानी फोन रखकर हट गई। नन्दू और रामतीरथ आकर मुस्कुराते हुए खड़े हुए। शांतनु ने कहा, सुबह जो खिलाया था, वह साँझ तक में हजम हो गया, समझे रामतीरथ ?

रामतीरथ ने कहा, जी !

ईशानी ने कहा, रामतीरथ, तुम जल्दी से खाना तैयार करो।

नन्दू और रामतीरथ दोनों उमगते हुए चले गए। ईशानी ने अब हँसकर कहा, भतीजे के बदले अब शायद इस कैमरे से मोह हो आया है, क्यों ? यह क्या तुम्हारा हर वक्त का साथी है ? दिन भर कहाँ तसवीरें खींचीं ?

घर की रोशनी कुछ मद्धिम थी। शांतनु ने एक बार उस तरफ ताक कर कहा, यह साथ ही है, पर इसे तसवीर खींचने के लिए नहीं लाया हूँ।

तो ?—ईशानी ने भँवें सिकोड़ कर पूछा।

—इसके सिवाय मेरा और कोई सहारा नहीं, इसलिए इसे साथ लेकर घर से सदा के लिए निकल पड़ा।

ईशानी ने कहा, सदा के लिए ? मतलब ? घर से निकाल दिए गए ?

शांतनु ने कहा, तुम्हारा अन्दाज ही सही है !

ईशानी कुछ देर चुप हो रही। उसके बाद बोली, हाँ, इतनी जल्दी

निकल आओगे, यह नहीं सोचा था। झगड़ा किया ?

—नहीं।

—तो फिर क्या वजह हुई ?

शांतनु ने कहा, मैंने शूद्र की लड़की से शादी की है।

ईशानी ने जानना चाहा, तुम्हारी स्त्री क्या शूद्र की लड़की नहीं है ?

उसकी एकटक नजर की ओर देखकर शांतनु ने कहा, यह मेरे ऊपर एक सफेद झूठ थोपा जा रहा है। यह साजिश मुझे कहाँ ले जाएगी, यह मैं नहीं जानता।

ईशानी ने कान लगाकर इसे सुना। उसके बाद हड़बड़ा कर उठी और बोली, आओ, पहले नहा लो।

शांतनु उठ कर बाथरूम की ओर गया। उसके साथ दूसरा कपड़ा नहीं है, ईशानी जानती थी। वह खुद ढीला पायजामा पहनती है, उन्हीं में से एक निकाल लाई। इस पहनावे की सिफारिश नीचे की पंजाबी महिला ने उससे कुछ दिन पहले की थी। बदन पर डालने के लिए एक रेशमी 'रोब' निकाल लाई। उन सबको वह जतन से बाथरूम में रख आई। नन्दू से बुला कर कहा, बाथरूम में एक बाल्टी गरम पानी तो रख आ नन्दू।

दूसरे दिन सबेरे शांतनु की नींद एक दूसरी ही दुनिया में टूटी। बड़ा ही मीठा गीत का धीमा सुर दूर से तिरता आ रहा था।

बिछौना इतना नर्म कि वह मानो आराम में डूब गया था। दक्खिन के झरोखे से सारी रात मधुमास की बयार आती रही—उस स्वच्छ हवा में साँस लेकर शांतनु का सुन्दर मुखड़ा और भी दमकने लगा। गीत की वह आवाज दूर से नहीं आ रही थी, कमरे का रेडियो बहुत धीमा-सा खुला हुआ था। रात शांतनु जब बिस्तर पर गया, तो जाने किस काम के बहाने ईशानी कमरे से जो बाहर निकली, फिर नहीं आई। शांतनु की थकावट का उसे पता था, लिहाजा यह उसे सुलाने की ही एक चाल थी। स्त्रियों का विचार और ही तरह का होता है।

शांतनु बिस्तर पर उठ बैठा। नन्दू आया। पूछा, आप क्या बिस्तर पर चाय लेना चाहेंगे, छोटे बाबू ?

नहीं।—शांतनु ने जानना चाहा—मेम साहब जग गईं ?

नन्दू हँसा।—वह तो रात रहते ही जग जाती हैं ! उसके बाद कसरत करके नहाने जाती हैं।

शांतनु ने उसकी ओर ताका। पूछा, कसरत ? यह फिर क्या ?

—हम लोगों ने कभी नहीं देखा। उनका कमरा बन्द रहता है।

शांतनु को कौतूहल हुआ। उठ कर वह मुँह धोने चला गया। लेकिन जब बरामदे पर आया, देखा, नहा कर ईशानी ने अपने माथे के बेशुमार रेशमों के गुच्छे को पलट कर बांध रक्खा है और चाय के इन्तजार में बैठी है। मुस्कुरा कर उसने शांतनु की अगवानी की—आओ। नींद आई थी ?

—नींद ! होश ही नहीं था कुछ।—शांतनु जाकर आमने-सामने बैठा।

ईशानी ने कहा, खैर, जान में जान आई। डर लग रहा था, आधी रात को कहीं ससुराल की ओर न भाग जाओ !

शांतनु खूब हँसा। उसके बाद मजाक करके बोला, सुन्दरी नर्तकी अगर तमाम रात पहरा देकर रक्खे तो दो-चार दिन ससुराल नहीं ही गया तो क्या !

बड़ी ही धुली हँसी हँसकर ईशानी ने उसके मजाक का जवाब दिया। सुबह की रंगीन छटा उनके सर्वाङ्ग पर पड़ रही थी ! अनोखे दिख रहे थे दोनों।

रामतीरथ चाय के साथ सुबह का जलपान रख गया।

शांतनु ने पूछा, तुम सुना कमरा बन्द करके कसरत करती हो ?

ईशानी बोली, नन्दू ने कहा होगा न ! आठेक साल से यह एक बुरी आदत जरूर पालती हूँ। बीच-बीच में इस दईमारी देह को लोक-समाज में निकालना पड़ता है न !

वह सब शांतनु को मालूम नहीं। वह दूसरी बात में लौट गया। बोला, मैंने और भी एक बार जानना चाहा था, तुमने कोई जवाब नहीं दिया। सुना, देश भर में तुम्हारा बड़ा नाम है ?

ईशानी ने फटकार बताई, सुबह-सुबह यह फिजूल की बात क्यों करने लगे तुम ? मेरी प्रसिद्धि ही तुम्हारे कानों तक पहुँची, मगर मैं इस गंदी प्रसिद्धि से नफरत करती हूँ, तुमसे यह बात क्या किसी ने नहीं बताई ?

— गंदी क्यों कह रही हो ?

—'छोड़ो, यह चर्चा तुम्हारी जबान से नहीं सोहेगी। शांतनु। उससे बल्कि तुम अपनी स्त्री की बात करो। सुनने का बड़ा अरमान है।

शांतनु सीधी बात पर आया। बोला, स्त्री के बारे में कहूँ कि जिसे मेरी स्त्री कहकर प्रचार किया जा रहा है, उसके बारे में ?

—यानी ?—ईशानी उत्सुक होकर बोली—पुट्टू की माँ ने जो कहा, वह क्या सच नहीं है ?

—पुट्टू की माँ ने आँखों से जो देखा है, उसके बाहर सब झूठा ही है।

—तुमने शादी नहीं की है ?

—नहीं।

—मुझसे छिपा रहे हो ?—ईशानी ने मजाक किया।

शांतनु ने कहा, तुम पर लोभ रहा होता तो जरूर छिपाता। तुमसे डरता होता, तो भी छिपाता, तुमसे चिरस्थायी संबंध रखने की ललक होती, तो भी छिपाता।

—गजब है ! सुषमा क्या तुम्हारी स्त्री नहीं है ?

—नहीं।

—तो क्या यह समझूँ कि तुम उसे लोभ दिखाकर मझधार में छोड़कर भागना चाहते हो ?

चाय का प्याला रखकर शांतनु अवाक् होकर ईशानी की ओर ताकने लगा।

ईशानी ने कहा, मुझे सही स्थिति बताओ शांतनु, मुझसे शर्माओ मत। जरूरत होगी तो मैं सभी मुसीबतों में तुम लोगों की सहायता करूँगी। सच क्या है, सो तो कहो ?

शांतनु ने शांत गले से कहा, तुम यकीन मानो ईशानी, इस जीवन में मेरे हाथों किसी लड़की के प्रति कोई अन्याय नहीं हुआ है ! और, और अगर ज्यादा जानना चाहो, तो मैं निश्छल भाव से कहूँगा, आज तक मैंने किसी लड़की का बाल तक नहीं छुआ, उसकी उँगली की नोक भी नहीं पकड़ी !

ईशानी मुस्कुराती हुई कुछ देर चुप रही। उसे शुरू से अंत तक यह मामला समझ में नहीं आ रहा था। उसका ख्याल था, कहीं कोई बात छिपी रह गई है। सहसा वह बोली, उस लड़की से बात नहीं की जा सकती ?

—बेशक की जा सकती है।

बाहर से किसी ने आवाज दी। ईशानी ने कहा, कौन ? इधर आओ।

बाहर जूता उतार कर एक आदमी आया। ईशानी ने कहा, ओह आप हैं? नंदू से आपको बुलवा भेजा था। जरा इनके बदन का नाप ले लीजिए।

फीता निकाल कर वह शांतनु की ओर बढ़ा। ईशानी ने कहा, आज ही शाम तक कम से कम दो कुरता बना कर, धो-धवा करके दे दीजिएगा। विशेष जरूरी हैं।

सारी बातों का छोर भुलाकर शांतनु को मजबूरन खड़ा होना पड़ा। किसी बाहरी आदमी के सामने ऐसी कोई बात नहीं कही जा सकती, जो विरोध जैसी लगे। उस आदमी ने इधर से, उधर से बहुत तरह से नाप-जोख कर कहा, शाम को ही दे दूँगा। बाकी सब एक-एक करके हफ्ते भर के अंदर।

ईशानी बोली, रेशमी कपड़ा मत दीजिएगा, ज्यादा शौकीन हो जाने से उन्हें असुविधा होगी।

उस आदमी के चले जाने के बाद शांतनु ने कहा, पराए पैसे से जो भी थोड़ी नवाबी कर लेने का मौका मिला था, तुमने वह भी मनाकर दिया।

ईशानी ने कहा, पराए पैसे? मतलब? तुम्हें दे कौन रहा है? ये तो तुम्हारे ही रुपए हैं।

शांतनु ने कहा मेरे? कैसे?

—तुम्हारा कैमरा जो मैंने खरीद लिया।

—खरीद लिया! यह तो तुमने मेरे भैया को भी मात कर दिया! जिसकी जायदाद थी, उसे पता भी नहीं चला और बिक गई? कितने रुपये में खरीदा?

ईशानी ने हँसकर कहा, यह जायदाद वाला ही कहेगा।

शांतनु ने कहा, याद रखना, मात्र वही मेरी पूंजी है। उसी को भुना-कर मेरा पेट चलेगा।

—ठीक तो है। अब से वही होगा!

मसले का इतना आसान हल देखकर शांतनु हो-हो करके हँस उठा। उसके बाद बोला, तुम क्या आज से मेरा सारा भार लेना चाह रही हो ईशानी?

ईशानी ने कहा, खूब कही! यह कबूल करके मैं जान दूँ क्यों? कोई औरत तुम्हारा सारा भार ले तो किसी दिन सब छोड़-छाड़कर तुम भाग

जाओगे। तुम्हारे मन का चेहरा जानना बाकी नहीं रहा है !

—तो फिर इस तरह से मुझे बंधन में क्यों डाल रही हो ? वनपाखी कहीं सोने के पिंजड़े का लोभ छोड़कर उड़ भागना न चाहे तब ?

ईशानी बोली, वह नासमझ होती हैं, इसलिए स्नेह मानती है। तुम जंगल की चिड़िया से भी जंगली हो।

—तुम्हारा स्नेह पाकर अगर पंगु बन जाऊँ ?

—तुम्हारी स्त्री का प्रेम उस पंगुता को मिटा कर तुम्हें रास्ता दिखाएगा। डरने की क्या बात है ?

शांतनु ने कहा, मेरी स्त्री कहाँ है ?

ईशानी ने कहा, सुषमा कैसी लड़की है, मैं नहीं जानती परंतु उससे तुम्हारा सरोकार अगर बिलकुल झूठ न हो, तो मैं तुम्हारा ब्याह कराके तुम्हारी गिरस्ती सहेज दूँगी।

—गिरस्ती सहेज दोगी, मान लिया। मगर मन ? वह अगर कोई सहेज न माने ? सब पाकर भी वह अगर लाड़ले शिशु की तरह जिद पकड़े रहे ?

ईशानी कुछ देर चुप रही। बातें बड़ी जल्दी गंभीरता की ओर चली गईं। अचानक वह उठ खड़ी हुई। बोली, चलो, चलें।

शांतनु ने कहा, कहाँ ?

बताती हूँ।—कहकर ईशानी बरामदे की छत की ओर चली गई और गर्दन बढ़ाकर कहा—तिवारी गाड़ी निकाल लो।

—जी, मेम साहब। तिवारी ने कहा।

जैसे मुसीबत में पड़ गया हो, शांतनु ने कहा, ऐसे अजीबो-गरीब पहनावे में मैं तुम्हारे साथ कहाँ जाऊँगा ?

ईशानी ने कहा, खूब ! अजी, आईने के सामने खड़े होकर देखा भी है ? सत्यवान की स्त्री सती सावित्री का भी दिमाग घूम जाता।

ईशानी झटपट अंदर गई। और दसवें मिनट में वह भी वैसा ही एक ढीला पायजामा और गाउन पहन कर मुस्कुराती हुई आ पहुँची। बोली, अब तो संकोच जाता रहा ?

शांतनु ने कहा, हाय राम, दोनों जने यों झब्बा पहने राह में निकलेंगे, तो लोग क्या कहेंगे ?

मीठी खुशी से ईशानी हँस पड़ी। बोली, नासमझ राहगीर सदा — कल्पना करके आनंद पाते हैं, वही सोचेंगे। चलो।

दोनों नीचे उतर आए। गाड़ी पर सवार होकर ईशानी ने खुद ही स्टीयरिंग हाथ में ली। शांतनु बगल में बैठा। तिवारी, जैसा होता है, पीछे की सीट पर बैठ गया।

गाड़ी फाटक से बाहर निकल गई।

एक बात बताने के लिए शांतनु बड़ी देर से उतावला हो रहा था। बात कुछ नहीं, ऐसी बात नहीं। मिहिजाम में रहते हुए हुए सारे हँसी-मजाक के बावजूद ईशानी यह कहना नहीं भूली थी कि मुझे एक खास बात में मदद करनी होगी। सच पूछिए तो, इस सहायता वाली बात से ही उन दोनों की घनिष्ठता की शुरुआत हुई। लेकिन वह सहायता क्या है, इसकी ढंग से आलोचना कभी नहीं हुई। कल से भी वह गौर कर रहा था कि ईशानी के सारे स्नेह संबोधनों और आदर-जतन की ओट में वही बात मानो मुखर होकर सब प्रकार की चर्चाओं में खड़ी थी। यह अचरज की बात है, संदेह नहीं। जिसके हाथ में इतनी बड़ी एक संस्था है, इतने लोग हैं; हर तरह की आफियत है, जिसे धन की कोई कमी ही नहीं; ऐसी के लिए बेचारी की नाईं मदद के लिए हाथ पसारना बेशक अजीब-सी बात है। आर्थिक, सांपत्तिक, सामाजिक—किसी भी तरह की सहायता तो इशानी के लिए दुर्लभ नहीं है।

शांतनु ने शांत भाव से कहा, मेरी सारी बातें तो तुमने शुरू से आखिर तक सुन लीं, लेकिन मुझसे तुम्हारी क्या जरूरत पूरी हो सकती है, कहाँ, यह चर्चा तो तुमने एक बार भी नहीं की ?

स्टीयरिंग सम्हाले सामने की ओर नजर गड़ाए ईशानी ने हँसकर कहा, पहले एक वचन दो।

—कैसा वचन ?

—यही कि मेरी बात के खिलाफ कभी नहीं होगे, दो वचन ?

—दिया।

—वचन दो कि किसी भी हालत में मुझे छोड़कर चले नहीं जाओगे ?

शांतनु ने कहा, यह तो फिर वही बंधन वाली बात आ गई। तुम क्या मुझसे रुक्का लिखवा लेना चाहती हो ? तुम्हारे घर बैठे-बैठे दो मुट्ठी अन्न खाऊँ, तुम्हारी मिजाज-मर्जी के मुताबिक हँसी-मजाक करके तुम्हारा जी बहलाऊँ, जरूरत पड़ने पर तुम्हारी हुक्म तामीली करूँ और तुम्हारे रूप की तारीफ करते हुए तुम्हारे पीछे-पीछे घूमूं, तुम क्या मुझसे यही कबूल करा लेना चाहती हो ? भूल मत जाओ ईशानी, मैं

मर्द हूँ ! सब मर्दों की तरह मेरी भी कामना है कि मेरे रोब-दाब से दुनिया थर्राए।

स्टीयरिंग पर हाथ रक्खे-रक्खे ही ईशानी हँस-हँस कर लोट-पोट हो गई। शांतनु ने उसी में आगे यह भी जोड़ दिया, पुरुषों को खुश करने के लिए स्त्रियों का जन्म होता है, यही जानकर तुम्हारे यहाँ दाखिल हुआ था। लेकिन औरतों को खुश करने के लिए पुरुषों की पैदाइश है, यह जानकर हो सकता है, तुम्हारे यहाँ से भागना पड़े।

'फिर ! ठीक नहीं होगा, कहे देती हूँ !' ईशानी ने शासन जताया।

शांतनु ने कहा, तुम्हारे पास बेकार बैठा रहूँ, भली-बुरी दो बातें न कहूँ यह भी संभव है भला ? आज अगर तुम्हारी वह जरूरी बात नहीं सुनी, तो आधी रात को जरूर ससुराल भाग जाऊँगा।

—मुझे लेकिन यकीन हो गया है कि तुमने शादी नहीं की है।

—कैसे यकीन किया ?

ईशानी ने कहा, जिस पुरुष ने एक दिन भी स्त्री के साथ बिताया है, उसके चरित्र का इशारा ही और होता है। तुम उस चरित्र के नहीं हो। आँचल की हवा तुम्हारे बदन पर अभी तक नहीं लगी है।

शांतनु ने कहा, यह तुमने कैसे जाना ? तुम्हें भी तो कोई अनुभव नहीं है !

ईशानी ने कहा, यदि मैं यह कहूँ कि मैं अनुभवहीन नहीं हूँ, तो क्या तुम मुझसे नफ़रत करोगे ?

शांतनु ने कहा, यह मैं ठीक नहीं समझता। दूसरे पक्ष की पत्नियाँ क्या पति से घृणा करती हैं ?

—वह मैं भी नहीं समझती शांतनु। ईशानी फिर हँस उठी।

गाड़ी एक भीड़ भरे बाजार में जाकर खड़ी हुई। फल और बिसाती की दूकान ठीक अगल-बगल। गाड़ी से उतर कर तिवारी फल की दूकान में जा खड़ा हुआ। वहाँ से उसने कुछ मेवे लिये, बगल की दूकान से लिया केक, बिस्कुट, मक्खन का डब्बा, लाजेंस, आदि-आदि। बहुत सारा सामान लेकर वह फिर गाड़ी पर आ बैठा। सारा कुछ जैसे यंत्र-चालित-सा हो रहा हो। लग रहा था कि ईशानी यहाँ नियमित आया करती है।

गाड़ी फिर चल पड़ी। बेहद भीड़। दोनों बोल नहीं रहे थे। ईशानी सावधानी से गाड़ी चला रही थी। जनता उसे बहुत ज्यादा देख रही है जवानी ने गोया राजवेश धारण किया हो। तभी वे सलाम ठोंक

हैं। शायद हो कि इस गाड़ी के पहिए से बहुतेरे लोग दबकर मरने को भी तैयार हो जाएँ।

देखते ही देखते अनेक रास्तों को पार करके एक पुल से आगे बढ़कर गाड़ी एक फाटक के अंदर घुसी। सामने ही बहुत बड़ा बगीचा था। बगीचे के बाद एक बहुत बड़ी इमारत। उत्तर की तरफ की खुली जगह में बच्चे-बच्चियाँ खेलने में मगन थीं। गाड़ी रोककर ईशानी बोली, जरा देर रुको, मैं मित्र से मिल आऊँ।

शांतनु बैठा रहा। ईशानी वही ढीला पायजामा और झब्बा पहने उस ओर के पोर्च के नीचे से होकर अन्दर की ओर गई। शांतनु ने एक बार मोटर की घड़ी की ओर ताका। बगल की सीट अभी खाली थी, लेकिन ईशानी वहाँ अपने रूखे बालों की खुशबू छोड़ गई थी। उसने स्टीयरिंग पर हाथ फेर कर देखा, उसमें ईशानी के कोमल हाथों का मधुर उत्ताप अभी भी था। तिवारी जाकर बाहर खड़ा रहा।

अंदाज लगाया जा सकता है, ईशानी का जीवन ठीक उसी के जैसा रोक-टोक से परे है। इतने दिनों में ईशानी ने एक बार भी अपने सगे-संबंधियों का जिक्र नहीं किया। तो क्या उसके कोई नहीं है? क्यों नहीं है? कोई है? था कोई? एकाएक शांतनु को असीम कौतूहल हो आया। बिलकुल खिले गुलाब-सी मगर डाली कहाँ है? पेड़ कहाँ है? नाम और परिचयहीन वनफूल! लेकिन यह तो कविता हुई। सचमुच इसके माँ-बाप, भाई-बहन कहाँ हैं? स्वेच्छा से ईशानी यों निर्वासित्ता-सी क्यों है?

दसेक मिनट के बाद ईशानी बाहर निकली। उसके साथ-साथ निकली यूरोप की एक मेम और दसेक साल का एक खूबसूरत-सा लड़का। लड़के ने मेम का एक हाथ पकड़ रक्खा था। हँसमुख-सा मीठा-मीठा चेहरा। जैसी तन्दुरुस्ती, वैसा ही रूप।

ईशानी ने इशारे से शांतनु को उतर आने को कहा। शांतनु उतरा। अंगरेजी में ईशानी ने दोनों का परिचय करा दिया।—ये हैं सिलविया वायोलेट, मेरी बड़ी प्रिय मित्र, और ये हैं मिस्टर चौधरी, दुनिया में मेरे नए और एकमात्र अभिभावक।

सभी उल्लास से हँस उठे। ईशानी ने पूछा, और इसे पहचाना? यह सिलविया का लड़का है। विक्टर डाट। थोड़ी-थोड़ी हमारी भाषा भी समझता है।

अचरज की बात तो है। शांतनु ने हँसते हुए जाकर बच्चे को जकड़

लिया और सिलविया की ओर ताक कर बोला, किस खान से यह रत्न खोज निकाला है मिस वायोलेट ?

—ईश्वर का दान है मिस्टर चौधरी।

विक्टर डाट ने मीठी अंगरेजी में शांतनु से कहा, मिस्टर चौधरी, मैंने एक छोटा-सा पुस्तकालय बनाया है। आइए, आपको दिखाऊँ। मेरी सारी कितावें शिकार और यात्रा सम्बन्धी हैं।

—चलो, जरूर देखूंगा।

विक्टर ने बड़े उत्साह से कहा, जानते हैं, ऐडवेंचर की कहानियाँ सबसे अच्छी होती हैं। नानिंग की कहानी आप जानते हैं ?

—नानिग ? जो ग्रीनलैंड गया था ?

—हाँ-हाँ। आप तो देखता हूं, सभी जानते हैं। रोज आइएगा न ? मम्मो ने कहा है, बड़े होने पर मैं सोएन हेडिन की कहानी पढ़ूंगा।

पीछे-पीछे मुस्कुराती हुई सिलविया और ईशानी आ रही थीं ! सिलविया ने कहा, समझे चौधरी, यह मेरा बेटा वास्तव में एक प्रतिभा है। वडिग ! सच मानिए ! यह 'क्वीयर स्टोरीज' मुझे जबानी गढ़ कर सुनाता है। इसका चेहरा आपको बहुत अच्छा लग रहा है, न ?

हँस कर शांतनु ने कहा, इतना अच्छा कि वर्णन करने में तुतलाने लगूंगा।

हँसी की फुहार में सभी मानो भीग उठे। सिलविया ने धीमे से ईशानी से कहा, ऐसे पुरमजाक आदमी से मिताई होना खुशकिस्मती है। लेकिन तुम तो दिन-दिन और खूबसूरत होती जा रही हो, बात क्या है, यह तो बताओ ?

—मुहब्बत में पड़ गई हूँ।—ईशानी ने सिलविया के कानों में कहा।

—यकीन नहीं करती मैं !

—क्यों ? नहीं पड़ सकती हूँ ?

सिलविया ने कहा, तुम्हारे दिल नाम की कोई चीज नहीं है। बहुतेरे राजकुमार तुम्हारे पैरों पर सर्वस्व निछावर कर सकते थे, लेकिन तुम्हारे पत्थर मन ने परवाह ही नहीं की। और वह तो होना ही था ! तुमने हीरा पाया था। चमकते कांच के लिए तुम्हें ललक क्यों होगी ? सब तो जानती हूँ।—खैर, कोई खबर मिली ?

ईशानी ने गरदन हिलाकर कहा, नहीं।

—इतने दिनों में कोई सुराग नहीं मिला ? मगर उस दिन तो तुमने

कहा कि पंजाब या कहाँ के किसी अखबार में उसकी कोई खबर देखी थी ? तुमने ही तो कहा था, उसकी खोज करोगी। एक बार कोशिश कर देखने में क्या हर्ज है ?

ईशानी ने कहा, एक बार अंतिम कोशिश की जरूर जा सकती है। खैर, वह बात फिर होगी !

सिलविया ने कहा, इस काम में तो तुम अपने इन मित्र की मदद ले सकती हो ?

ईशानी बोली, सोचा तो है, मगर इन्हें खोलकर कुछ कहा नहीं है।

विक्टर के साथ शांतनु बाहर निकला। तिवारी ने आगे बढ़कर खाने की वे चीजें एक-एक करके एक खानसामा के हाथ में दे दी।

सिलविया ने उत्साह के साथ कहा, क्यों, देखा न मिस्टर चौधरी, गजब का है यह लड़का। कानवेंट स्कूल में दो-दो बार अव्वल आया है। मैं खूब जानती हूँ, बड़ा होने पर यह लड़का देश का एक नामी-गरामी आदमी होगा। उसके कौतूहल और जानने की जिज्ञासा देखकर यहाँ सभी दंग हैं। रूप के साथ ऐसा गुण कितने लड़कों को नसीब होता है ! ईशानी ने कहा, तुम बच्चे की तारीफ के बेहिसाब पुल बाँध रही हो सिलविया !

सिलविया ने कहा, तुम लाख टोको, मगर मैं मानने की नहीं ईशानी। सभी बच्चे मेरी सन्तान हैं, लेकिन इसकी विशेषता बताई नहीं जा सकती।

ईशानी हँसते हुए आगे बढ़ी। रूमाल से लड़के के माथे का पसीना पोंछ दिया। लेकिन विक्टर और शांतनु की दोस्ती देखने ही लायक थी। जाने दोनों की कितने दिनों की जान-पहचान है। इस कानवेंट में कब एक भद्दरंगा चिड़िया आई थी, क्रिकेट में इस बार किसने-किसने नाम किया, अपनी टोली के साथ उन लोगों ने कब भारतीय क्रूजर जहाज देखा, चिड़ियाखाने में कौन-सा नया जानवर आया है—आदि बातों में वे दोनों मशगूल हो गए थे। साथ ही, शांतनु भी अपने बचपन की स्मृति में डूब गया था। बचपन में वह गुल्ली खेला करता था, चलते स्टीमर पर खड़ा होकर लट्टू नचाता था, पिकनिक में बोटानिकल गार्डेन जाया करता था, फुटबॉल में गोलकीपर खेलता था, और, एक बार हाथ में बन्दूक लेकर जंगल में गया था। ऐसी कितनी रोमांचकारी कहानियाँ !

आखिर विक्टर ने जिद पकड़ी, हफ्ते में कम से कम दो बार आपको

यहाँ आना ही पड़ेगा। आप जैसे खास आदमी के विना उसका हरगिज काम नहीं चलेगा। डू कम प्लीज, मिस्टर चौधरी।

ईशानी ने मजाक से कहा, तुम तो बिलकुल मुग्ध हो गए मिस्टर चौधरी!

शांतनु विक्टर को गोदी में लेकर दुलार रहा था। बोला, कोई मुग्ध कर ले तो अपना क्या बस है?

ईशानी ने एक बार तन्मय होकर उन लोगों की ओर ताका, फिर बोली, चलो, अब चलें।

आपस में एक दूसरे से विदा लेकर वे लोग गाड़ी पर आ बैठे। अब तिवारी गाड़ी चलाएगा। ईशानी और शांतनु पीछे बैठे। विक्टर झट आया, गाड़ी के अन्दर उन दोनों से हाथ मिला गया। उसके बाद सिल-विया आगे आई। ईशानी ने पूछा, कुछ कहना है, सिलविया? इनसे छिपाने की कोई बात नहीं, इन्हें मेरा सब कुछ मालूम है।

सिलविया ने पूछा, आज के रुपए क्या चंदे के हिसाब में लिखे जाएँगे।

—ओ, अच्छा! फ्रेडरिक से फोन पर बात करूँगी।

सिलविया चली गई। तिवारी ने गाड़ी स्टार्ट कर दी। ईशानी चुप हो रही। उल्लास के सारे कलरव को वह वहीं रख आई, गाड़ी में बैठी-बैठी वह जाने कहाँ खो गई थी। कोई भी बोल नहीं रहा था। शांतनु सिर्फ मन में पूछ रहा था, मैं क्या तुम्हारा सब कुछ जानता हूँ? कहाँ, कुछ भी तो नहीं जानता। हममें क्या सिर्फ मिताई है, और कुछ भी नहीं? सिलविया को रुपया क्यों दिया? खाने की उतनी चीजें किसके लिए खरीद कर लाईं? तुम मुझे अब अँधेरे में मत रक्खो ईशानी!

गाड़ी तेजी से दौड़ रही थी। ईशानी बाहर की तरफ ताकती हुई गुमसुम बैठी थी। धूप तेज हो आई थी। रूमाल निकाल कर ईशानी ने अपने तमतमाते चेहरे को एकबार पोंछा। और एकाएक जैसे आसमान से उतर आई। बोली, विक्टर के मुँह से तुम्हारे भतीजे का मुँह कुछ-कुछ मिलता है, न?

शांतनु चौंका! फिर बोला, मिलता हो शायद, मगर विक्टर गजब का लड़का है! जैसी सेहत, वैसा ही रूप। ये दोनों चीजें साथ मिल जाती हैं, तो मैं मारे खुशी के बेकल हो उठता हूँ।

ईशानी चुप रही। जरा देर बाद बोली, सिलविया जैसी माँ उसके

—लेकिन विक्टर तो उसका लड़का नहीं है।

ईशानी कुछ देर चुप रहकर बोली, कनवेंट के बहुत सारे बच्चों का जन्म रहस्य है, यह क्या तुम्हें मालूम नहीं था ?

शांतनु ने कहा, इस बात के लिए मैं सिरदर्द नहीं मोल लेना चाहता। जन्म में रहस्य हो तो रहे, संसार के सभी शिशु निष्कलंक हैं, निष्पाप। प्राकृतिक कारण से सभी संतानें कामज होती हैं, लेकिन वह संतान अगर प्रेम से अभिषिक्त न हो, तो वह कसूर उसके माँ-बाप का है, उसका नहीं।

पाँच

रमेन बाबू ने टेलिफोन किया था। उसके आधे घंटे के बाद ही वह ईशानी के यहाँ आ पहुँचे। नंदू ने उन्हें बाहरी कमरे में बिठाया और आकर ईशानी को खबर दे गया।

शांतनु इजीचेयर पर बैठा था। दोनों में एकांत में बातें हो रही थीं। नंदू के कमरे से निकल जाने के बाद ही ईशानी बिस्तर से उतर कर बोली, सुनो मेरी, तुम्हारे बारे में रमेन बाबू से जो कहूँ, तुम उसका विरोध मत करना।

शांतनु ने पूछा, कुछ अंट-शंट कहोगी क्या ?

—नहीं, सो नहीं। तुम यहाँ रहते हो, इसके लिए उनके मन में प्रश्न तो उठ सकता है न ? मैं उसे मिटा दूँगी, वह जरा पुराने ख्याल के आदमी हैं न ! मगर तुम जाकर कुछ बे मौके मत बोल बैठना !

ईशानी झट बाहर चली गई। बाहर वाले कमरे में जाकर रमेन बाबू के बिलकुल करीब बैठी। बोली, ऐसे असमय में ?

रमेन बाबू ने कहा, चारों तरफ से तकाजे आ रहे हैं, मगर हम अपना 'शो' कब देंगे, यह तारीख तो तुमने तै नहीं की ? आखिर टिकट बेचने के लिए भी कुछ समय देना पड़ेगा। इसके सिवा, मुझे यह जानना है, मंच पर तुम आओगी कि नहीं।

ईशानी ने जरा गंभीर होकर कहा, जरा उस बार की सोच देखिए। आप लोगों के 'शो' में मेरे शामिल से हिसाब-किताब में बड़ी गड़बड़ी हो जाती है। यदि मुझे शामिल होना ही पड़ेगा तो दूसरी तारीख लूंगी।

रमेन बाबू हँसे। बोले, यह संस्था अपनी कमाई से तुमने ही खड़ी की है। हमारे शो से जो आमदनी होगी, वह भी एक प्रकार से तुम्हारी ही होगी। तुम अगर अपना हिसाब बिलकुल अलग रखना चाहती हो, तो किसी को कोई एतराज नहीं है।

—वही ठीक है, रमेन बाबू। संस्था के हिसाब में टिकट बि

उससे अपने लिए रुपया लेने में मुझे झिझक होती है, लगता है, जैसे देकर फिर छीने ले रही हूँ।—ईशानी ने फिर कहा, उससे यही अच्छा है, इसमें मेरा अपना हाथ खुला रहेगा।

रमेन बाबू ने पूछा, तो 'शो' हम कब देंगे?

—कम से कम तीन हफ़्ते का समय हाथ में रखकर टिकट बेचना शुरू करें। बाकी सब कुछ तो सजा-सँवरा ही है।

—कास्टिंग तुमने जो रक्खा था, वही रहेगा न?

—हाँ, वही रहने दीजिए।

रमेन बाबू ने कहा, तुम्हारे कहे मुताबिक डबल कास्टिंग कर रक्खा है। क्या पता, कब हैजा-चेचक की महामारी हो!

ईशानी बोली, इस बार भी क्या महामारी होने का खतरा है?

रमेन बाबू ने कहा, मेरी उम्र साठ साल होने को आई। पिछले सैंतीस साल में ऐसा एक भी साल नहीं बीता, जब कि इस मुए शहर में इस समय महामारी नहीं हुई! लिहाजा उसको ध्यान में रख करके ही डबल कास्टिंग करके रक्खा है। वह जो भी हो, तुम अपने शो की तारीख कौन-सी रखना चाहती हो?

—उसे अभी यों ही रहने दीजिए। यदि मैं उतरी तो 'चित्रांगदा' करूँगी।

रमेन बाबू के होंठों पर हँसी निखरी। बोले, यह प्रस्ताव मैंने ही करने की सोची थी। तुमसे वही सुनकर बेहद खुशी हुई, 'चित्रांगदा' करने से तुम्हें सबसे अच्छा हाउस मिलेगा। मैं इसकी गारंटी देता हूँ, दो दिनों में कम से कम दस हजार रुपये तो दूँगा। कलकत्ते में उथल-पुथल कर दूँगा।

रमेन बाबू की आवाज तेज़ है। इस घर तक में उसकी गूँज हो रही थी। शांतनु से अब हँसी नहीं दबाई जा सकी। वह धीरे-धीरे इस कमरे में आ खड़ा हुआ। रमेन बाबू बोल उठे, शाबाश, अरे वाह! मुझे तो पता ही नहीं था, आप यहाँ हैं! अजी साहब, आपके लिए ही तो मुझे आना पड़ा। सोच रहा था, कहाँ जाने से आपका पता मिलेगा।

ईशानी ने कहा, आपको अभी भी पता नहीं होगा, शांतनु नाते में मेरा बहुत ही नजदीकी पड़ता है। मेरी माँ के जो अपने सौतेले भाई हैं, यह उन्हीं की साली के देवर का लड़का है।

रमेन बाबू बड़ी खुशी के साथ बोल उठे, बस, बस, इतना ही काफी है, ज्यादा कहने की जरूरत नहीं! जभी तो सोच रहा था, ऐसा राज-

कुमार कहाँ से आया ! आखिर होगा क्यों नहीं, खानदान की ही तो बात है ! अब तुम्हें अपने पास खड़े होने योग्य आदमी मिल गया ! यकीन मानिए मिस्टर चौधरी, मिहिजाम से आपको अब की सेहत कहीं अच्छी हो गयी है। इन्हें अर्जुन की भूमिका दी जाय, तो कैसा रहे ? ये कवि हैं, कलाकार हैं, रसिक हैं। इस बात पर जरा गौर करना।

ईशानी ने कहा, ये घर छोड़कर आए हैं। अभी यहीं रहेंगे। अपने भाई से मुकदमे का जब तक निबटारा नहीं हो जाता, ये तब तक बहुत व्यस्त रहेंगे। इनके लिए शायद उन सब बातों में दिमाग खपाना मुमकिन नहीं होगा।

रमेन बाबू ने कहा, लेकिन यह बात अब सब जगह फैल गई है कि इनकी तरह बाँसुरी बजाने वाला कोई नहीं है। मेरे यहाँ तो फोनों के मारे नाक में दम हो गया है। अखबार वालों ने बुरी तरह धावा शुरू किया है।

शांतनु हँसा। बोला, लगता है, प्रचार के षड़यंत्र में पड़ गया हूँ।

ईशानी ने औचक ही कनखियों से एक बार रमेन बाबू की तरफ गौर करके कहा, तू ने तो यह कबूल करके ही गलती की है कि तू बांसुरी बजाना जानता है।

तू ! लमहे में शांतनु की आँखों की पुतलियाँ दोनों के ऊपर घूम गईं। ईशानी यह चाहती है कि रमेन बाबू को गहरी अंतरंगता महसूस हो। शांतनु ने कहा, मुझे क्या पता था कि तेरी संस्था के लोग मुझे फंदे में डालेंगे ?

'तू' संबोधन से ईशानी पुलकित हो उठी। शांतनु ने दोनों आँखों के टेलिग्राफ़ के मर्म को समझा। धन्यवाद है उसे।

रमेन बाबू ने कहा, काम हो गया। अब मैं चलूँगा। जल्दी है। हाँ, एक बात और !

रमेन बाबू उठ खड़े हुए थे। फिर बैठ गए। इन दोनों ने उनके चेहरे की तरफ देखा। उन्होंने कहा, पुट्टू की माँ के साथ एक लड़की तीन-चार दिन से अपने दफ्तर में आ-जा रही है। वही मुखर्जी टोले की लड़की। नाम है सुषमा।

ईशानी ने कहा, आपके यहाँ क्यों आती है ?

रमेन बाबू बोले, उसे तुमसे मिलने की बड़ी उतावली है। मगर तुम्हारी इजाजत के बिना उसे तुम्हारा पता तो दे नहीं सकता। आज भी वह मेरे इंतजार में वहाँ बैठी है, मैं ही उसे बिठाकर आया हूँ

घर की लड़की है। पढ़ना-लिखना मामूली तौर पर अच्छा ही जानती है। आई० ए० के इम्तहान की फीस नहीं दे सकी, लिहाजा पास भी नहीं कर सकी।

ईशानी ने पूछा, वह मेरे यहाँ किस लिए आना चाहती है ?

शांतनु ने जवाव दिया, शायद जान बचाने के लिए।

रमेन बाबू ने ग़लत समझा। हड़बड़ा कर वह बोल उठे, नहीं-नहीं चौधरी बाबू, जान बचाने के लिए नहीं। वह बात होती, तो मैं अपने मौसेरे भाइयों के बैंक में उसे कोई नौकरी दिला देता। लेकिन, उसका शायद कुछ और ही मतलब है।

शांतनु ने पूछा, विवाहित लड़की है ?

ईशानी ने मजाक करके कहा, क्वारी हो तो तू शायद उसे माँग में सिंदूर डालने को कहेगा ?

रमेन बाबू जोरों से हँस पड़े। उसके बाद बोले, मेरी उम्र इतनी हो चुकी कि अव लड़कियों के माथे की ओर मेरी नजर नहीं उठती।

ईशानी खूब हँस उठी। शांतनु बिलकुल ठंडा पड़ गया।

रमेन बाबू ने फिर कहा, और आजकल उन लोगों को पहचानना भी मुश्किल है। व्याही हुई लड़कियाँ आजकल सिंदूर को बालों में छिपाए रखती हैं और सर पर घूंघट भी नहीं रखतीं। जिसे ठीक भग्नी पतिव्रता कहते हैं!

नकल में उनका होंठ बनाना देखकर शांतनु ने ठहाका लगाया। पर रमेन बाबू रुके नहीं, एक ही साँस में कहते गए, और आजकल की विधवाओं को देखो। माँग में सिंदूर जरूर नहीं है, मगर पहनावे में साड़ी-ब्लाऊज, पैरों में खुशनुमा जूता, हाथ में वैनिटी वैग। एक हाथ की कलाई में घड़ी, दूसरा हाथ आज की कुमारियों जैसा। इसका नतीजा क्या हुआ है, मालूम है लड़कियों की दुनिया में वेहद होड़ है। इनका वाजिब पावना वह छीन लेती हैं। लेकिन दोनों में थोड़ा-सा भेद है! वह है, मुँह में रंग लगाना।

हँसते-हँसते दोनों लोट-पोट। रमेन बाबू ने कहा, हम लोगों को लेकिन वह सब नहीं देखना है, देखना है कि आँखें उस पर ठहरती हैं या नहीं। सधवाएँ रंग नहीं लगातीं, वह सब थोड़ा-बहुत पावडर मलती हैं। क्योंकि उनका तो काम बन गया। विधवाएँ कई तरह के रंग लगाने में आज भी जरा शर्माती हैं। इसलिए कुमारियाँ ही इस समय चेहरे पर

खूब रंग पोता करती हैं!

फुहारा जैसी हँसी छूट पड़ी। रमेन बाबू उठकर खड़े हो गए। बोले, तो सुषमा से क्या कहूँ?

ईशानी ने कनखियों से एक बार शांतनु की ओर देखा। बोली, ठीक तो है। परिचय करने में क्या बुराई है, क्यों शांतनु?

शांतनु ने कहा, बेशक! फिर जब उन्हें इतना आग्रह है।

ईशानी ने कहा, आप उन्हें यहाँ भेज दीजिए।

रमेन बाबू ने 'अच्छा' कहकर उस समय तो विदाई ली।

वे दोनों कुछ देर तक चुप बैठे रहे। आखिर ईशानी बोली, खैर, मेरी जान बची।

शांतनु ने ताक कर देखा। ईशानी ने कहा, एकाएक तुझे यहाँ देखकर शंका होती। बीच में एक सफाई हो गई, यह अच्छा ही हुआ।

शांतनु ने कहा, तुझे क्या कोई डर नहीं है?

ईशानी हँसी। बोली, चींटी से कोई नहीं डरता, मगर उसके काटने के डर से अपना पैर हटा लेता है। उन लोगों ने एकबार जब सुन लिया, तो उन्हें अब वह उत्सुकता नहीं रहेगी। और फिर चाहे जिस कारण से भी हो, मुझ पर उन लोगों का विश्वास भी है। मेरी यह भी ख्वाहिश है कि तेरी तरफ से भी कोई सकुचाहट न रहे।

शांतनु ने कहा, ऐसी कनखियों की वजह से जी में यदि ग्लानि हो?

—वह मन का दोष है शांतनु।

शांतनु ने कहा, मान ले, तेरे बारे में मैं कहीं आँख मार रक्खूँ, तो क्या वह मेरे घिनौनेपन का परिचय नहीं होगा?

—यह बात नहीं उठती!—ईशानी ने कहा, आदमी सबसे ज्यादा अंतरंग के पास अपनी सबसे बड़ी कमजोरी जाहिर कर देता है, क्योंकि दोनों में विश्वास की एक पक्की नींव पड़ी होती है। कभी कोई किसी को धोखा नहीं देगा। मन की पवित्रता का प्रश्न यहीं पर उठता है शांतनु। तू कभी भी उस गंदगी में नहीं उतर सकता, मैं यह बात तुझसे ज्यादा जानती हूँ, इसीलिए तुझ पर अपने को यों छोड़ दिया है, मालूम है?

हँसकर शांतनु ने कहा, यह सुनने में लेकिन शासन-सा लगता है।

—शासन! तुझ पर? इसके लिए मुझे फिर से जन्म लेना होगा!

नंदू आया। बाहर चैत की धूप थी। इसलिए रामतोरय ने उसके हाथों दो ग्लास आरेंज-जूस भेजा था। नंदू ने झुक कर ट्रे से दोनों ग्लास

उतार कर रख दिये और चला गया।

कोई दो घंटे के बाद तिवारी ने आकर खबर दी, एक कोई लड़की आपसे मिलने आई है।

ईशानी ने कहा, ऊपर लिवा लाओ।

तिवारी के जाने के बाद वे दोनों चुप हो गए। ईशानी जैसे बैठी थी, ठीक वैसे ही बैठी रही, उसमें कोई भी चंचलता नहीं नजर आई। शांतनु का चेहरा गंभीर हो उठा। वह आज अपने जीवन की एक बहुत ही खीज और ऊब की समस्या का निबटारा चाहता है। उसने कहा, मैं क्या उधर चला जाऊँ ?

ईशानी ने तुरंत कहा, तेरे मन के अनजानते भी यदि किसी अन्याय का ख्याल हो, तो तू उधर जा सकता है।

शांतनु नहीं गया। वैसे ही स्थिर भाव से बैठा रहा।

सुषमा सीढ़ी से सीधे ऊपर चली आई। इधर-उधर देखा, चप्पल को उतार कर रख दिया और परदे को हटा कर अंदर आई।

अरे ! सुषमा ठिठक गई। शांतनु की ओर हैरानी से ताक कर बोली, तुम यहाँ !

शांतनु ने कहा, यह घर मेरा निहायत अपना-सा है। मैंने ही तुम्हें बुलवा भेजा था। बैठो।

ईशानी ने हँसकर ताका। पूछा, तुम्हारा ही नाम सुषमा है ?

सुषमा ने नमस्कार किया। उसके बाद बेंत के सोफे पर बैठ गई। बोली, आपसे ही मिलना चाहती थी। इनसे यहाँ भेंट होगी, यह नहीं सोचा था।

ईशानी ने पूछा, इनसे तुम्हारी जान-पहचान कब से हुई ?

—पाँच-छः महीने हुए होंगे। मगर इनके मुँह से तो आपकी बात एक बार भी नहीं सुनी।

—सुनने जैसी बात नहीं है, शायद इसीलिए नहीं सुनी।

—यह क्या कह रही हैं आप ?—सुषमा ने शिकायत की—सारे देश में आपका नाम है, आपको देखने के लिए कितने लोग सिर धुनते हैं। आपसे परिचय होना भी सौभाग्य की बात है !

ईशानी ने पूछा, तुम्हारे घर में कौन-कौन हैं ?

—मेरे पिता जी जिंदा नहीं हैं, लेकिन मेरी माँ हैं, भैया-भाभी हैं।

हम लोगों की माली हालत बिलकुल अच्छी नहीं है।

शांतनु जरा मुस्कुराया। बोला, गरीबों पर दया करने की बुरी आदत ईशानी में है। तुम सब कुछ कह सकती हो सुषमा!

—ठहर!—ईशानी ने उसे डाँट बताई। बोली, इस अभागे से तुम्हारी कहाँ जान-पहचान हुई सुषमा?

छः महीने पहले के एक विशेष दिन की बात याद करके सुषमा एक शर्मीली-सी हँसी हँसी। बोली, भैया-भाभी के साथ प्रदर्शनी देखने गई थी। ये हर तसवीर के सामने खड़े होकर ऐसा तमाशा कर रहे थे कि हर किसी को बड़ा मजा आ रहा था। इनसे वहीं हम लोगों का परिचय हुआ। हम लोगों ने इन्हें न्योता दिया।

शांतनु ने कहा, शुरू से ही साबित हो गया कि मैं लोभी हूँ।

ईशानी बोली, पुरुष मात्र ही होता है! तुम्हें यह शायद बड़ी मीठी-मीठी बातें सुनाया करता था?

सुषमा ने कहा, एक दिन भी नहीं। इनका मजाक कहिए और चेहरा कहिए, सब कुछ बाहरी है। भीतर बिलकुल पोला!

ईशानी ने कहा, मेरा भी यही ख्याल है। एक उपसर्ग और भी है बहन, वह शायद तुम समझ नहीं सकी। यह समझदारी का भान करता है, मगर है नासमझ। इसके भरोसे रहकर मैं इतनी बार परेशान हो चुकी हूँ कि तुमसे क्या कहूँ!

शांतनु ने कहा, बड़ी ज्यादती हो रही है ईशानी!

—होने दो। तुम्हारी करतूत सब सुनें तो! मेरी एक मित्र सिलविया को यह ऐसी चोटी पर चढ़ा आया कि वह इससे मिताई करने को पागल हो गई है। लड़कियाँ इससे बहुत धोखा खाती हैं!

सुषमा जैसे अकचका गई जरा। लेकिन शांतनु से वहाँ और रहा नहीं गया। बोला, नः, देखता हूँ, अब मेरे स्वभाव-चरित्र पर खींचातानी होने लगी। मैं उस कमरे में जा रहा हूँ। जरूरत पड़े तो बुला लेना।—यह कह कर वह वहाँ से चला गया।

सुषमा ने कहा, आपके पास बहुत डरते-डरते आई थी। लेकिन आप इतनी अच्छी हैं, यह मुझे मालूम नहीं था। शांतनु के बारे में आपने जो सब कहा, वह सब मेरे मन में कभी आया ही नहीं।

दोनों स्त्रियाँ अब आमने-सामने बैठीं। ईशानी ने पूछा, उसके बारे में तुम्हारे मन में कोई बात है क्या?

—इस तरह से पूछने पर मैं झूठ बात नहीं कह सकूँगी।

ईशानी जरा देर चुप रही। फिर बोली, तो तुम उससे ब्याह क्यों नहीं करती? सिर झुका कर सुषमा बोली, मेरी माँ भी इसके लिए बहुत उतावली हैं, मगर शांतनु ब्याह नहीं करना चाहता।

—क्यों, तुम उसकी प्यारी नहीं बन सकी?

—यह मेरी बदनसीबी है।

ईशानी ने पूछा, शांतनु ने तुम्हें क्या कभी कोई भरोसा दिया है?

सुषमा ने कहा, नहीं।

—तो फिर तुम्हारे टोले के आसपास के लोग शांतनु को टोले का दामाद क्यों कहते हैं? शांतनु क्या कभी-कभार तुम्हारे यहाँ रहता है?

—जी नहीं। उस तरफ उनका कोई ख्याल ही नहीं है। लेकिन मुझ पर लोग फबतियाँ कसते हैं, निंदा करते हैं, इसीलिए मैं माँग में सिंदूर भर कर दो-एक दिन उनकी खोज में उनके घर गई थी। वह उस समय मिहिजाम में थे।

ईशानी ने कहा, फिर?

सुषमा ने कहा, इसी बात पर उनके घर में बड़ा झंझट-झमेला हुआ। उसके लिए मैं बड़ी शर्मिन्दा हुई।

—तुम बच्ची हो। यहीं पर तुम बहुत बड़ी गलती कर बैठी। सिंदूर एक बहुत बड़ा संस्कार है। उससे जीवन का एक विवर्तन जुड़ा होता है। तुम्हारा यह काम अच्छा नहीं हुआ। अब तुम क्या करना चाहती हो, सुषमा?

सुषमा की दोनों आँखें लटक कर पानी हो आईं। उसने काँपते गले से कहा, आप ही बता दीजिए मुझे।

ईशानी देर तक जानें क्या सोचती रही। उसके बाद बोली, तुम्हारी उमर क्या होगी, बहन।

—अभी उन्नीस नहीं हुई है।

—तुम्हारे घर की हालत वास्तव में कैसी है?

सुषमा ने निश्छल भाव से कहा, बहुत ही शोचनीय।

ईशानी ने कहा, शांतनु से बात करके मुझे जो संदेह हुआ था, तुम्हारी बात सुनकर उस पर मुझे यकीन आया। तुमने शायद गौर नहीं किया है, हमारे देश की बहुत सारी लड़कियाँ अभावों से छुटकारा पाने के लिए कोई न कोई सहारा खोजती हैं। पा जाती हैं, तो उसी को जकड़

कर पकड़ लेती हैं। और, भूल से उसी को कहती हैं—प्रेम! वहुत से लड़के नौकरी नहीं पाने से जरा गूदेदार ससुर की तलाश करते हैं; वहुत-सी लड़कियाँ गरीबी से बचने के लिए व्याह के लोभ में प्रेम करती हैं। लेकिन यह सब अस्वाभाविक है—प्यार इनकी किसी भी हद के अंदर नहीं।

सुषमा ने कहा, शांतनु को देखकर आपको क्या लगता है, मैंने गलती की है?

ईशानी ने कहा, मेरे लिए यह अनधिकार चर्चा है सुषमा। वह तुम दोनों के बीच की बात है। लेकिन मुझे लगता है, तुम्हें शायद शांतनु के मन का पता ठीक से नहीं चला। शायद कहीं कोई भूल रह गई हो।

सुषमा भौंचक्की-सी ईशानी की ओर ताकने लगी।

इधर शांतनु के मन में चैन नहीं थी। मामला कहाँ तक पहुँचा, यह जानना जरूरी था। सो वह फिर से इस कमरे में आकर उसी कुर्सी पर बैठ गया।

ईशानी ने शांतनु की ओर मुड़कर देखा। बोली, शांतनु, चाहे जिस वजह से भी हो, लड़कियाँ तेरे आसपास आकर दुःख पाती हैं।

शांतनु ने कहा, इसीलिए तो भागता फिरता हूँ।

—लेकिन अगर ऐसी स्थिति हो, तो उसका एकमात्र प्रतिकार क्या है, पता है?

सुषमा और शांतनु, दोनों ही ईशानी की ओर ताकते रहे। ईशानी ने कहा, मेरा एकांत अनुरोध है, तू सुषमा से व्याह कर ले।

शांतनु जरा उत्तेजित हो उठा। लेकिन उसके स्वभाव के संयम ने उस उत्तेजना को जाहिर नहीं होने दिया। उसने शांत स्वर में सिर्फ इतना ही कहा, इन छः महीनों में हम दोनों के आचार-व्यवहार में ऐसा क्या पाया तुमने कि तुम हम दोनों के व्याह को उचित समझती हो?

सुषमा पहले चुप हो रही। उसके वाद बोली, मेरी माँ ने तुमसे पहले अनुरोध किया था। उसके जवाब में तुमने कहा था, अपनी लड़की के लिए आपको कोई फिक्र नहीं करनी पड़ेगी।

शांतनु ने कहा, उस दिन से क्या मैंने तुम्हारी नौकरी के लिए चेष्टा नहीं की? तुम्हारे भैया की चिट्ठी के जवाब में मैंने क्या लिखा था? उसमें क्या मेरी ओर से कोई भरोसा दिया गया था? मैंने वार-वार कहा, मुझे आप लोग क्षमा कीजिए, मुझसे अव आप लोगों की भेंट होना वां...

नहीं है।

ईशानी ने बीच में पूछा, तुम्हें नौकरी मिले, तो तुम करोगी सुषमा ?

सुषमा ने कहा, मुझे नौकरी कौन देगा ?

शांतनु ने कहा, नौकरी करोगी कि नहीं, सो कहो।

—करूँगी।

ईशानी बोली, तुम सबसे पहले एक नौकरी ही शुरू करो बहन। दुनिया तुम्हारी आँखों में और साफ हो, रंग घुल-मिट जाय। कमाने का मतलब ही है जीवन के बारे में कठोर अनुभव। तुम अभी बच्ची हो, पढ़ा-लिखा जरूर है, लेकिन कलकत्ते की राह-बाट से जिंदगी के सबक लो। देखोगी, तुम्हारे मन में और भी एक नई कल्पना जगी है। तुम बड़ी होना चाहोगी, अपने पैरों पर खड़े होने का तुम्हें बल मिलेगा, अपने को कठिन करके जानना सीखोगी। वह क्या सम्मान का नहीं होगा सुषमा ?

सुषमा के चेहरे पर दमक आ गई। शांतनु ने उसमें और जोड़ दिया, तुम्हारी माँ बहुत कुछ निश्चिन्त होंगी, क्या यह ठीक नहीं होगा ? तुम्हारे भैया बोझ महसूस नहीं करेंगे, तुम्हारी भाभी के होंठों हँसी फूटेगी, सगे-संबंधी लुभाई आँखों ताकेंगे। शुरू से ही एक स्वच्छंदता का अनुभव करती रहोगी। यह सब तुम्हें कैसा लगेगा ?

दमकते चेहरे से सुषमा बोली, मगर नौकरी मिले तब तो !

ठहरो—कहकर ईशानी खड़ी हो गई। उधर की टेबिल पर जाकर उसने टेलिफोन के रिसीवर को उठा लिया। एक नंबर माँगा।

सुषमा उधर को उत्सुक हो रही।

—हैलो, रमेन बाबू ?

फोन पर रमेन बाबू की आवाज मिली। ईशानी ने कहा, हाँ, मैं हूँ। सुनिए, सुषमा से मैंने बात की। आप अपने उस बैंक के दफ्तर में इसकी नौकरी लगा दीजिए। लेकिन इनकी घर-गिरस्ती अभावों की है। तनख्वाह जरा अच्छी होनी चाहिए। शुरू में डेढ़ सौ रुपए से कम न हो। याद रहे, लड़कियों का खर्च ज्यादा होता है। सुषमा अगले सोमवार से काम पर जाना चाहती है। हाँ। धन्यवाद। एक बात और, पुट्टू की माँ को आप जरा चेता दीजिएगा। सुषमा के बारे में कुछ काना-फूसी या फिजूल की बातें वह न करे। खैर। तो मैं सुषमा को भेज दूँगी। धन्यवाद।

रामतीरथ तीसरे पहर की चाय और गरम-गरम समोसे ले आया।

ईशानी ने अपने हाथ से सजाकर एक प्लेट सुषमा की ओर बढ़ाया। ऐसे अनमाँगे स्नेह का स्वाद सुषमा को अपने जीवन में कभी नहीं मिला था। वह भी उठ खड़ी हुई और एक डग बढ़कर बोली, आप बैठिए, मैं आप लोगों की चाय ढाले देती हूँ।

उसके चेहरे पर कोई उदासी नहीं है, यह देखकर इतने दिनों के बाद शांतनु जरा आश्वस्त हुआ। ईशानी ने दोनों की ओर ताक कर अब कौतुक से कहा, शांतनु का एक बड़ा अच्छा-सा कैमरा था, तुम्हें मालूम है सुषमा ?

सुषमा ने कहा, मालूम है। उससे वह रोजगार करते हैं।

लेकिन कुछ दिन पहले वह कैमरा उसने मेरे हाथों बेंच दिया है। मेरा ख्याल है, उसमें मैं ठग गई हूँ। सो जो भी हो, उसमें से कुछ रुपया तुम्हें मिलना चाहिए।

—मुझे क्यों मिलना चाहिए ?

ईशानी हँसी। बोली, तुम्हें नई नौकरी मिल गई। इस खुशी में शांतनु तुम्हें कुछ उपहार देना चाहता है। जरा ही देर पहले उसने मुझसे यह बात कही। तुम बैठो। मैं आई।

ईशानी उठकर चली गई। पीछे की ओर एक बार ताक कर शांतनु ने कहा, मेरा विश्वास है, नौकरी मिल जाने से तुम्हारी मौजूदा समस्या बहुत कुछ हल होगी। कम से कम रोजमर्रे की फिक्र हलकी होगी।

सुषमा ने पूछा, 'तुम अब क्या करोगे ?'

—ठीक कह नहीं सकता। लेकिन शायद हो कि इसके यहाँ के कुछ काम का भार मुझे लेना पड़े। यद्यपि अपने भविष्य के बारे में मैं दिमाग नहीं खपाता।

—तुमसे क्या मेरी भेंट भी नहीं होगी ?

—बेशक होगी। लेकिन भेंट-मुलाकात के चलते यदि एक की हालत संकटमय हो उठे, तो भेंट-मुलाकात कम होना ही ठीक है, सुषमा।

सुषमा कुछ देर चुप रही। उसके बाद बोली, उस टोले में अब हमारा रहना मुमकिन नहीं होगा, कहीं और किसी किराए के मकान में जाना होगा। उसका इंतजाम मैं कर लूंगी, लेकिन ईशानी-दी से कहना, मैं उनकी सदा कृतज्ञ रहूँगी। उनका ऋण कभी चुका नहीं पाऊँगी।

—तुम्हारे लिए मेरा भी ऋण रह गया सुषमा !

—मेरे लिए ? कैसा ऋण ?

—तुम मेरे व्यवहार की सारी दोष-त्रुटि सहज ही में माफ करके मुझे मुक्त किए जा रही हो, इसके लिए तुम्हारे प्रति मैं भी अपनी कृतज्ञता जताता हूँ।

सुषमा चुप रह गई। उसकी दोनों आँखें डबडबा आईं। लेकिन कुछ कहने के पहले ही ईशानी कमरे में आ गई। उसके हाथ में मझोले कद का एक सूटकेस था।

चाय-नाश्ता होने के बाद तुरंत ही सुषमा उठ खड़ी हुई। बोली, अब मैं चलती हूँ।

ईशानी, बोली, अभी ही ?

—जी। बड़ी देर से बाहर हूँ। माँ चिन्ता कर रही होंगी। शाम से पहले नहीं लौटूँगी तो वह बहुत परेशान हो जायेंगी।

मिठास भरे स्वर में ईशानी बोली, तुम्हें देखकर बड़ी खुशी हुई। और भी खुशी इस बात की हुई कि तुम्हें थोड़ी-सी सुविधा हुई। नंदू !

पुकार सुनकर नंदू आया। ईशानी बोली, इसे गाड़ी पर रख आ और तिवारी से कह दे, दीदी जी को पहुँचा आए।—वह सुषमा की ओर मुड़ कर बोली, यह सूटकेस तुम्हारा है सुषमा। उसमें तुम्हारी दीदी का मामूली-सा कुछ उपहार और कुछ रुपए हैं। उसे तुम स्वीकार करो। तुम्हें नौकरी जरूर मिली, मगर स्त्रियों को असुविधाएँ कितनी हैं, यह मैं जानती हूँ। तुम्हें अगर कोई उलझन हो कभी, तो मुझे बुलाना, मेरी भरसक मदद तुम्हें मिलेगी।

शांतनु पीछे चुपचाप खड़ा था।

ईशानी ने फिर कहा, हाँ, एक बात और। शांतनु ने तुम्हारे साथ जरा भी विश्वासघातकता या धोखा नहीं किया, यह जानना मेरे लिए जरूरी था। अच्छा, अब जाओ बहन।

शांतनु गाड़ी पर चढ़ाने के लिए सुषमा के पीछे-पीछे गया।

बरामदे की छत पर खड़ी ईशानी एकटक उन दोनों को देख रही है इसे वे लोग नहीं समझ सके। सुषमा गाड़ी में बैठी। नंदू ने सूटकेस उसके बगल में रख दिया। तिवारी ने गाड़ी का दरवाजा बंद कर दिया। शांतनु ने एक शब्द भी नहीं कहा। सुषमा ने मुंह फेर लिया। गाड़ी फाटक से बाहर निकल गई।

ईशानी की दोनों आँखें छलछला उठीं। कली सूख गई, फूल नहीं खिला। प्रेम की पहली चेतना की अकाल मृत्यु !

चंद्रमा अपने कक्ष पर बार-बार घूम गया। फिर अंजोरिया पाख आया। शांतनु बीच-बीच में सवेरे निकल जाता, शाम को लौट आता। अपने साथ गाड़ी नहीं लेता। वह बंधन की दशा की सूचना है। आजादी का रास्ता खुला नहीं रहने से उसका काम नहीं चलता। उससे कैफियत नहीं पूछी जा सकती, किसी शासन की बला से उसे वास्ता नहीं। तीखी आत्म-स्वतंत्रता को बचा नहीं पाने पर शांतनु को कल नहीं पड़ता। नई बात में से एक यह हुई कि शांतनु ने मोटर चलाना सीख लिया। और कुछ चाहे हो या नहीं, कहीं ईशानी से उसकी पटरी नहीं बैठी तो ड्राइवर का काम उसे जहाँ-तहाँ मिल जायगा। मजे में सौ रुपया महीना मिल जायगा। शांतनु अब किसी की परवाह नहीं करता।

सुषमा की नौकरी लग गई। रमेन बाबू ने इसी बीच किसी समय बताया था। पौने दो सौ के करीब तनख्वाह, जो बाद में और बढ़ेगी। सुषमा वगैरह दूसरे मकान में चली गई हैं और वह मन लगा कर काम कर रही है। यह खबर सबके लिए खुशी की थी।

रात को फोन पर रमेन बाबू से ईशानी की बात हो रही थी। कल-कत्ते के 'शो' में ईशानी सिर्फ एक दिन मंच पर उतरेगी। लेकिन लोग जो दिल्ली के लिए तंग कर रहे हैं, उसका क्या होगा? वहाँ एक हाउस चार दिन 'शो' करना चाहता है। पंद्रह हजार रुपए की गारंटी। इसके सिवाय दिल्ली का सारा खर्च, राह खर्च समेत वह देगा। चार दिन में चार 'शो'। रमेन बाबू ने कहा, तुम राजी हो जाओ। देख लेना तुम, काला बाजार तक में टिकट बिकेगा!

एकाएक बाँसुरी की आवाज सुनकर ईशानी टेलीफोन पकड़े हुए ही कुछ चौकन्नी-सी हो गई। शांतनु बजा रहा है, कोई शक नहीं। आज दिन भर वह घर में नहीं था। कब लौटा है, यह भी पता नहीं। ईशानी झट बोल उठी, अच्छा रमेन बाबू, आपको कल बताऊँगी। आज फोन रख रही हूँ।

रिसीवर रखकर ईशानी चाँदनी में खिले हुए बरामदे पर आई। यहाँ खड़े होने से आकाश का विस्तार दिखाई देता है। सन्नाटा नहीं था, कहीं किसी पेड़ पर इक्का-दुक्का चिड़िया अभी भी बोल रही थीं, जिनकी आँखों में अभी नींद नहीं आई। नीचे का पंजाबी परिवार जरा देर पहले रेडियो बंद करके सोने चला गया। नंदू, रामतीरथ, तिवारी-अपनी-अप[illegible] ...ह

सो गए। ईशानी चुपचाप खड़ी रही। घर-द्वार, पेड़-पौधों से परे बाँसुरी की मीठी तान दूर-दूर तक गूँज रही थी। बाँसुरी बजाना जानना और बात है और उसके सुर में गहरे अनुराग को रूप देना और बात। अंतर की आदिम वेदना को रूप देने वाली मीड़ों को शांतनु जानता है। लेकिन कितनी अजीब बात है, उसमें गोया वन्य अनुराग हो, मानो वह जाने-चीन्हे सुरों से परे हो। बीच-बीच में एक टेक बजती है, वह पहाड़ी है। दुःख के दाह से जले बिना, उसकी बाँसुरी समझ में नहीं आ सकती। बहुत दिनों के रुदन-जर्जर हृदय के हाहाकार को जाने बिना उसकी बाँसुरी बेकार है।

ईशानी की आँखें भर आईं।

मन लेकिन उसका सजग है, वह मन भाव-स्रोत में बहने वाला नहीं है। अपनी पदचाप गिनना वह जानती है, गलत पाँव रखना नहीं आता उसे। उसके नाच के अभ्यास ने उसे सुरक्षित और ठीक-ठीक पाँव चलाना सिखाया है। पाँव शिथिल नहीं, बल्कि सजग है। अपने हृदय का आवेग उसकी मुट्ठी में है। बस इतना ही, इससे ज्यादा नहीं। यही उसका मूल मंत्र है। इसलिए जैसे उसे अपने बारे में डर नहीं है, दूसरे को भी वह वैसे ही डर नहीं लगने देती।

ईशानी ने धीरे-धीरे उस ओर पाँव बढ़ाया—जिधर से शांतनु की बाँसुरी की आवाज आ रही थी। नीचे के सारे कमरे खाली पड़े थे, शांतनु कहीं नहीं था। ईशानी सीढ़ियों से धीरे-धीरे छत पर चली गई। संशय, शंका, संकोच—कुछ भी उसके पैरों को नहीं रोकते। वह निडर है—सदा अभय मंत्र का जाप किया है। डर को उसने देखा है, जाना है। अपमृत्यु किसे कहते हैं, वह जानती है। बार-बार खड़ी होकर उसने अपनी मौत को देखा है। ज्योत्स्ना की यह सोमरस धारा कितनी ही बार उसमें गहरी विह्वलता ले आई है। सुख के रोने, दुःख के हँसने से उसकी यह बेबस शिथिल तन-वल्लरी जमीन पर लोटी है, दुःख और पीड़ा में भी पुलक की सिहरन हुई है, कलेजे में भूकंप का कंपन लगा है। उसकी सारी सत्ता देह के बंधन को फलाँग कर पंछी की नाईं अप्सरा लोक को उड़ गई है, नूपुरों की नाईं उसके दोनों पैरों में मौत नाचा की है। अपने उस अपरूप को उसने देखा है। देखा है उसने अपना अभिसंपात!

आखिर शांतनु की बाँसुरी चुप हुई। विरही यक्ष की आँखों के ऊपर से मेघों का झुंड दक्षिण से उत्तर की ओर जा रहा है, आसमान में एक धुमैलापन लाए दे रहा है—जो काक ज्योत्स्ना का भ्रम पैदा करता है,

जिसकी खोज पाकर रजनीगंधाएँ नींद से जगती हैं। शांतनु वाँसुरी लिये एकबार चुप होकर खड़ा रहा।

ईशानी आगे आई। चौंककर शांतनु मुड़ा।

—तू ? अभी भी जाग रही है ?

ईशानी हँस उठी। बोली, इस तरह से बाँसुरी बजाने से बिस्तर पर स्थिर कैसे रह सकती हूँ ?

शांतनु ने शर्मा कर कहा, कई दिनों से नहीं बजाई ! तुम सब तो नाच-गीत-बाजों में रहती हो, मैं कितना मामूली हूँ ! मेरा अपना परिचय कुछ भी नहीं।

ईशानी ने कहा, है, मगर तुझे उसकी खबर नहीं।

शांतनु ने मुँह फेर कर ताका।

ईशानी ने कहा, तेरे हृदय नाम की कोई चीज नहीं। जिस तरह से तूने सुषमा को विदा दी है, दुनिया के किसी भी मर्द ने उस तरह से एक अनसूंघे फूल की इस तरह अवहेलना कभी नहीं की। स्त्री का सारा अहं-कार तेरे सामने चूर हो गया।

—लेकिन मेरा यह परिचय क्या अच्छा है ? शांतनु ने सुनना चाहा।

—भला-बुरा मैं नहीं जानती। तू खेलने बैठता है, तो सिर्फ खेल देखता है, उसमें डूबता नहीं। तेरे लिए यदि किसी का कलेजा चोट खाता है, तो तू उसमें जीवन-विधाता का कौतुक देखता है। तेरे लिए किसी की आँख से आँसू टपकते हैं, तो तू उसमें एक अजूबा रस पाता है। कोई प्यार करता है, तो तू उसे बंधन मानता है, और प्यार नहीं पाने से तू उसके पीछे-पीछे भागता है। तू सिर्फ अपने को प्यार करता है, इसलिए कदम-कदम पर चोट को बचाकर चलता है। आनंद सिर्फ लेता है, आनंद देता नहीं। रस की कल्पना से तू अभिभूत हो जाता है, किंतु रस के प्लावन में गोता लगाने से डर जाता है। बता तो, तेरा मैं क्या करूँ ?

ईशानी ने अपना सिर उठाया। सादी साड़ी और सादे ब्लाउज का वेश बिखरे बालों के गुच्छे पीठ की ओर हवा में उड़ रहे थे, मुखड़ा मानो मधु लावण्य की मरण-सेज हो—दो आहत निमीलित आँखें मानो दो बेसुध भौंरों-सी गहराई की ओर स्तब्ध रह गई हों। उस ओर अपलक ताकते हुए शांतनु ने कहा, तेरी इच्छा क्या है ? तू ने मुझे इस तरह से पकड़ कर क्यों रक्खा है, यह तो बता ?

—तुझे जाने नहीं दूँगी।

—क्यों ? मैं किस अधिकार से तेरे यहाँ रहूँगा ?

ईशानी बैठ गई। बोली, अधिकार अगर न हो, तो तू बना नहीं केगा ?

शांतनु ने ज़रा रुक कर कहा, तेरी इस बात के रहस्य की थाह ागाना मेरे वस की बात नहीं ईशानी। मुझे तू इस तरह से कँपा मत। ापने जीवन के सारे आवरण को उतार कर तू बाहर आकर खड़ी हो, ापने को अच्छी तरह से देखने दे—मुझे इस तरह से बेचैन न बना।

भर्राये गले से ईशानी ने कहा, क्या जानना चाहता है तू ?

—तेरी अस्थि-मज्जा, मेद-मांस, तेरे लहू का हर कतरा, हर अणु-परमाणु, जाने बिना मैं स्थिर नहीं रह पा रहा हूँ। तू अपने को जाहिर कर, सारा परदा उतार फेंक। अँधेरा हट जाए, रोशनी जल उठे।

ईशानी के गले की आवाज अब काँप उठी। बोली, सब जानने के बाद तू जब सिर्फ नफरत छोड़कर चला जाएगा, तो मैं सदा वही बोझ ढोती फिरूँगी ?

शांतनु उसके पास जाकर बैठ गया। बोला, छि, छि, इससे तो बेहतर है, कि तू मुझे धिक्कार दे। मेरे हाथों इतना बड़ा अविचार पाने से पहले मेरी मौत हो जाय! यह सब तू क्या कह रही है ?

ईशानी ने आँचल से आँखें पोंछीं और रुलाई भरे गले से बोली, आदमी का अविचार मेरे सिर से ऊपर उठ गया है, लेकिन दीन-दुखी, हतभागन का रूप ही केवल उसकी पूँजी है ? वही क्या उसकी अंतिम बात है ? मेरे बहुत है, फिर भी मैं फाका करके मरने क्यों बैठी—इस बात का जवाब कोई नहीं देता।

शांतनु ने कहा, मैं तेरे किस काम आ सकता हूँ, बता ?

ईशानी ने कहा, मैंने तुझे तेरे पैरों सिर कूटने के लिए लाकर बिठाया है। तू सब तोड़ दे—मेरा आश्रय, मेरा संसार, मेरी ध्यान-धारणा, मेरा सारा बंधन। चोट करने में जिसमें तेरा हाथ न काँपे, दया-माया, विवेक—कुछ भी तेरे मन को आच्छन्न न करे। रस्सी-पस्सी खींचकर तू मुझे अथाह में बहा दे, मेरी मुक्ति हो जाय।

पुरुष के नैतिक दायित्व को शांतनु भूला नहीं है। चाँदनी नहाए इस मायाकानन में लोटती हुई इस अप्सरा की देह-वल्लरी की ओर देखकर भी उसने अपने को सदा बंधन में बाँधकर रक्खा। वह सिर्फ इतना कह सका, किस चीज से मुक्ति चाहती है तू ?

छत के फर्श पर औंधी पड़कर ईशानी ने कहा, मैं लोहे की जंजीर में बँधी हुई हूँ, तू जंजीर के उस बंधन को खोल दे। मैं अपने विश्वास के हाथों से मुक्ति चाहती हूँ, अपने बीते जीवन के नागपाश को तोड़कर भागना चाहती हूँ मैं।

शांतनु बड़ी देर तक चुप बैठा रहा। उसके बाद बोला, अब उठ ईशानी—काफी रात हो चुकी।

—पहले तू वचन दे मुझे?

—दिया।

—वचन दे कि मैं जहाँ तुझे ले जाऊँगी, तू जायगा?

—शांतनु ने कहा, कहाँ किस जहन्नुम में?

ईशानी ने कहा, जहाँ मेरी मौत हुई है। जहाँ की चिता की आग में मेरा इहलोक-परलोक जल-जलकर राख हो गया है।

शांतनु इस पर हँसा। बोला, राह-खर्च मिले तो मैं वहाँ जाने को राजी हूँ!

छः

कौन नहीं जानता कि मानव-वंश-परंपरा में लाखों, लाख-करोड़ों-करोड़ जीवन की कहानी हर पल अतीत के अंधकार में विलीन होती चली जा रही है! सभ्यता का इतिहास ही तो मनुष्य की कहानी है! ईशानी और शांतनु इस बात को जानते तो हैं। विवर्तन में, इतिहास में, पुराण में,—तमाम जीवन का ही जाल बुनना है। मनुष्य की ही कहानी लाखों लाख कंठ से हजारों हजार बरस से गूँजती चली आ रही है। ईशानी और शांतनु उसी के निहायत छोटे क्षुद्र अंश हैं।

लेकिन लगभग दस साल पहले बंगाल के उन बेहद बुरे दिनों में कलकत्ते से कुछ मील के फ़ासले पर जिस परदेसी नौजवान को गाँव की डगर पर देखा गया था, वह शांतनु नहीं, और ही कोई व्यक्ति था। नौजवान बड़ा ही खूबसूरत, तंदुरुस्त और सुकुमार था। था तो बंगाली, पर पश्चिम प्रदेश में पला था। बंगाल यही पहले पहल आया। इसलिए उसकी नजरों में बंगाल की ग्रामीण-शोभा एक विस्मय होकर दिखाई दी। ताड़, इमली, नारियल के कुंज देखकर वह जहाँ-तहाँ ठिठक पड़ता। ताल-तलैयों के निर्मल और शांत जल पर सफेद और लाल कमल के अनंत सौंदर्य पर रंगीन तितलियाँ जब थिरकती फिरतीं, तो वह नौजवान हक्का-बक्का-सा देखता रह जाता। चीलों का मँडराना, मछरंगों का घूमना, बया के घोंसले, कोयल-श्यामा-पपीहे की मीठी पुकार, नाव पर मल्लाहों के गीत, इकतारे पर बाऊलों का झूमर नाच, खुले खेत-मैदानों में बिछा हरियाली का मखमल जंगल-झाड़ी-आम के बगीचे—यह सब कुछ देखकर वह नौजवान मानो विस्मय-विमूढ़ हो रहा हो! लेकिन उस नौजवान की फौजी पोशाक देखकर कोई उसके पास नहीं फटकना चाहता। गाँव के सामाजिक जीवन से उसके परिचय के लिए वह पोशाक ही बाधक थी। वह नौजवान खुद भी यह बात समझता था, इसलिए दूर-दूर ही रहता।

दूर तक फैले खुले मैदान में फौज का बहुत बड़ा खोमा पड़ा था। पिछली लड़ाई में सरहदी प्रदेश के नाते बंगाल में तमाम सुरक्षा के लिए

रक्षा-व्यूह बनाए गए थे। खासकर दक्खिन-पूरब में, जहाँ सुंदरवन के आस-पास के इलाके हैं। यह तंबू भी उन्हीं में से एक था। बहुत बड़े एक मैदान को कँटीले तारों से घेर दिया गया था। यहाँ हथियारों से भरी पूरी एक बड़ी-सी फौज रहती थी। रसद और खबरें पहुँचाना इस टुकड़ी का मुख्य काम था। इसलिए लड़ाई की गतिविधि और लड़ाई के अन्य रोजमर्रे के कामों में इस छावनी के फौजी लोग हरदम व्यस्त रहते थे। यह नौजवान इसी खीमे का एक कर्मचारी था—इस छावनी की एक टुकड़ी का लेफ्टिनेंट। कुछ ही दिन हुए बदली होकर यहाँ आया था। जरूरी समाचार लेकर बहुत बार उसे ट्रक से कलकत्ते के केंद्र में जाना पड़ता था और उसी तंबू से रसद समेत ट्रकों के बहुत बड़े काफले को उसे रवाना करना पड़ता था। जिस कारण से भी हो, वह युवक लेफ्टिनेंट सब का प्रिय था।

सारे बंगला देश पर उस समय दुर्दिन की बयार चल रही थी। प्रायः रोज ही किसी न किसी इलाके से हिंदू-मुसलमानों में राजनैतिक झगड़ों की खबरें आया करती थीं।

ऐसे समय में कई दिनों के लिए कैंप में भोजन की कमी पड़ गई। कलकत्ते से आने वाली फौजी लारियों के कारवाँ पर आम लोगों के जोरदार हमले से परिवहन-व्यवस्था कई दिनों के लिए ठप्प पड़ गई। वैसी स्थिति में इस तंबू के फौजी लोग गाँव पर धावा बोलकर रसद की लूटपाट करने लगे। यह खबर अधिकारियों तक पहुँचाने का अधिकार जनसाधारण को नहीं था। लिहाजा आसपास के गाँवों में अराजकता-सी फैल गई। कई गाँवों के बाशिंदे गाँव छोड़कर भागने लगे। हालत जब चरम पर पहुँच गई तो एक दिन कंपनी के कप्तान ने अपने सहकारियों को गाँव से खाद्य जुटाने का आदेश दिया। वह जिम्मेदारी इस युवक पर दी गई। मगर उसकी फौजी पोशाक ही बहुत बड़ी बाधा थी। इसलिए फौजी पोशाक उतार कर वह नौजवान नागरिक पोशाक में गाँव की ओर गया। फौजी पोशाक में उसके चेहरे में रोब-दाब की जो कठोरता थी, वह पोशाक बदलने से कोमलता में बदल गई। ढीला पायजामा और छींट की एक कमीज पहने वह खूबसूरत जवान गाँव वालों के हृदय को जीतने के लिए आगे बढ़ा। गाँवों की उस बदनसीबी की आबहवा में वह युवक बहुत कुछ आशीर्वाद जैसा जा खड़ा हुआ। मैदान के इस पार के इस अनजाने गाँव में वह कभी आया नहीं था। घूमता-घामता वह सीधे हाट में जा पहुँचा।

आस-पास कच्चे-पक्के घर; कहीं कोई छोटी-सी डिसपेंसरी, कहीं बनिये या बिसाती की दूकान, कहीं रस्सी और तंबाकू की आढ़त, कहीं सरकारी राशन का सब-आफिस। नजदीक ही पोखरे के उस पार खुली जगह में लड़कियों का एक स्कूल। वहाँ स्त्रियों का खूब कलरव हो रहा था। किसी त्योहार की वजह से स्कूल में छुट्टी का ऐलान किया गया था। बात-बात में यह भी पता चला कि इस गाँव में हिंदू-मुसलमानों में तनातनी चल रही है। यह आग कब भड़क उठेगी, कहा नहीं जा सकता।

उस युवक के साथ तीन-चार फौजी मजदूर थे। लेकिन वे सब भी शादी पोशाक में आए थे। हाट में घूम-घाम कर उन लोगों ने काफी साग-सब्जी और दूसरी चीजें इकट्ठी कीं। रुपए उन लोगों के पास काफी थे। इसलिए बढ़ी कीमत देकर उन लोगों ने जितना सामान खरीदा, चार मजूरों से उतना सारा ढो ले जाना मुमकिन नहीं था। सर्दियों के दिन थे। शाक-भाजी उन्होंने बहुत ज्यादा खरीदी।

हाट वालों की मदद से उन लोगों ने तीन बैलगाड़ियाँ तै कीं। गाँव वालों ने सोचा शायद वे लोग फौजी ठीकेदार हैं। कलकत्ते से आए हैं। बाजार में जितना प्याज, आलू, गोभी, मूली, बकरे, मुरगे, घी, मक्खन, नमक था, सब खत्म हो गया। सामान लेकर वे बेहिसाब रुपए फेंक गए थे।

गाड़ियों को खोलते-खोलते दोपहरी ढल गई। वे सब गाड़ी के साथ गए। वह युवक एक हलवाई की दूकान में जलपान करने के लिए बैठा। चार-पाँच मील चलने से उसे भूख लग आई थी। जलपान करके वह फिर निकल पड़ा।

एक आदमी तंबाकू खरीदने आया था। वह इस युवक को बड़ी देर से गौर कर रहा था। सामने ही रुद्रेश्वर का टूटा मंदिर था, जहाँ एक बाऊल के गीत सुनते हुए कुछ लोग जमा हुए थे। वह युवक वहाँ जरा देर रुका। जहाँ भी जो नया दीखता, उसके लिए एक अचरज सा लगता। इतने में वह आदमी आया। जबरन उससे बातचीत शुरू की—कहाँ रहते हो भैया? घर कहाँ है?

मुड़कर युवक ने बताया, सहारनपुर की तरफ।

उसका उच्चारण अ-बंगाली-सा था। लेकिन गले में ऐसी मिठास थी कि वह आदमी आकृष्ट हो उठा। बोला, यह मंदिर बहुत दिनों का है भैया। राजा दीपेन्द्रनारायण के समय का—सिद्धपीठ का स्थान है।

शिवरात्रि पर यहाँ बड़ा भारी मेला लगता है। तुम करते क्या हो भैया ? यहाँ किस लिए आए हो ?

वह युवक कुछ बोल नहीं सका। मन में भय था कि कहीं कोई आंदोलन न उठ खड़ा हो। बोला, मैं ठीकेदार का आदमी हूँ। कैंप में माल सप्लाई करता हूँ।

—वाह ! तो बाबा रुद्रेश्वर को दो-चार पैसे चढ़ाते जाओ न भैया ! ठहरो, पुजारी जी को बुला देता हूँ।

उस आदमी ने अपने ही उत्साह से पुरोहित जी को बुला दिया। पुरोहित जी ने, जो देखने में बड़े ही सौम्य-सुंदर प्रौढ़-से थे, आगे बढ़कर कहा, आओ बेटे, आओ ! वाह, ऐसा सुंदर चेहरा तो इस इलाके में कहीं नहीं है। कहाँ से आए हो बेटे ?

दो-चार आदमी आसपास इकट्ठे हो गए। सब ने उस नौजवान के बारे में पूछताछ की। पश्चिम बंगाल के एक संभ्रांत कायस्थ परिवार का लड़का, लेकिन उसके पुरखे सौ साल पहले बंगाल छोड़कर भारत के उत्तर-पश्चिम की ओर चले गए थे। बंगाल से उन लोगों का कोई सरोकार ही नहीं रहा।

युवक जैसा शर्मीला था वैसा ही भला लगता था। होंठों पर हर समय मीठी हँसी बनी रहती थी।

नाट मंदिर के पास एक बुढ़िया बैठी थी। संध्या-पूजा पूरा करके वह वहाँ आकर खड़ी हो गई। बोली, बेटे, इतनी दूर से आए हो, मेरे यहाँ रूखा-सूखा जो बना है, दो मुट्ठी खाकर जाओ।

सब ने इस बात की ताईद की। बुढ़िया नाते में राजा दीपेन्द्रनारायण की पोती थी। लिहाजा उनके आग्रह को टाला नहीं जा सकता। आखिर युवक को एक टूटी-फूटी पुरानी अट्टालिका की प्रेतपुरी के एक हिस्से में लाया गया।

एक कमरा, एक बरामदा। बरामदे में रसोई। सामने पुरानी ईंटों का ढेर, साँप-बिच्छुओं का स्थायी अड्डा। दालान के पास से पुराने पोखर का रास्ता चला गया था। बुढ़िया के साथ वह युवक घर के सामने आकर खड़ा हुआ। देखा, अंदर एक चौकी पर एक भले आदमी लेटे हैं। बुढ़िया बोली—वह मेरा छोटा भाई है बेटे, नाम है उपेन। बाप के वंश के एक-एक करके सभी चले गए, बस हम दोनों ही बच रहे हैं। गठिया की बीमारी से भाई उठने-बैठने से लाचार है। तुम्हारा नाम क्या है बेटे ?

युवक ने बड़े मीठे स्वर में कहा, मेरा नाम अरुण है।

—बहुत अच्छा। मेरी रसोई तैयार है। रोज ही इस समय नहाकर मंदिर में जाकर जाप कर आया करती हूँ, इसी से तुमसे भाग्य से भेंट हो गई। इस चौकी पर बैठो बेटे। खानदान का सिर्फ नाम ही रह गया है, घरद्वार नहीं रहा।

इतने में बाहर कुछ बोलचाल की आवाज हुई और कुछ ही देर में एक लड़की की मीठी आवाज सुनाई दी, फूफी?

वन-हिरनी सी एक लड़की दौड़ती हुई आ रही थी। लेकिन सामने ही एक खूबसूरत युवक को देखकर सकपका कर वह इधर-उधर ताकने लगी। यह सपना है या भ्रम या कि माया!

लड़की की उम्र सत्रह के करीब होगी। बड़ी ही सुंदर लड़की। राजा दीपेन्द्रनारायण के इस खंडहर की सारी वन्य गंध से उसका स्वभाव बना था। चंचल आँखों की दो ढीठ पुतलियाँ उस युवक को देखकर स्थिर हो गईं। पहले ही पल में उस सत्यानाशी की पहली मौत हुई।

आश्चर्यचकित आँखों अरुण उस लड़की को देखता रहा। फूफी बाहर आईं। बोलीं, मुँहजली, कितने सबेरे स्कूल गई और बिलकुल बेला गँवाकर आई है? नहाना नहीं, खाना नहीं, आज अगहन संक्रांति है न? देख ले, घर में नए मेहमान आए हैं।

उनके करीब आकर वह बोली, वह कौन है फूफी?

फूफी ने कहा, मैं इसे बुला लाई हूँ। बाहर से आया है, धूप में घूमते-घूमते हैरान हो गया। यह देखो बेटे, यह मेरी भतीजी है। इसकी माँ को भी पकड़कर नहीं रख सकी। माँग में सिंदूर भरे वह हम लोगों को छोड़कर चली गई। उपेन की यही अंतिम बिटिया है। हाय, एक-एक करके तीन-चार गुजर गए। बस, इसी लड़की को लेकर जी रही हूँ—शिवरात्रि की बाती! नाम है माधू।

कमरे के बिस्तर पर से उपेन बोले, खाने-पीने का इंतजाम कर दो दीदी।

—हाँ, दे रही हूँ—फूफी सचेत हुईं—अहा, लड़का क्या है, मोर बिना कार्तिक! किस भगवंती ने तुम्हें पेट में धारण किया बेटे! हमारा घर उजाला हो गया। ले बिटिया, हाथ-पाँव धोकर जरा खाना लगा दे, आसन बिछा दे, पानी रख दे।

मा के मानों हाथ-पाँव जड़ हो उठे थे। वह पोखरे की ओर गई,

लेकिन आड़ में जाकर एक वार फिर ठिठक कर खड़ी हो गई। वदन जैसे काँप रहा है, पाँव थरथरा रहे हैं। अरुण ने अवाक् होकर एकटक उसे जव से देखा था, माधू के सारे शरीर में पीड़ा हो गई। उसके सामने जाकर खड़े होने के लिए वह साहस नहीं जुटा पा रही थी। लेकिन लुक-छिपकर उस युवक को देखे विना भी उससे रहा नहीं जा रहा था। शांत नदी पर मानो सहसा आँधी आ गई, भयानक भूकंप-सा आ गया। मन उद्वेलित हो उठा।

उपेन बाबू धीरे-धीरे उठकर बाहर आए। मधुर स्वर में अरुण से बातें करने लगे। उन्हीं की अपनी ही श्रेणी का, एक ही घराना, दोनों ही कुलीन। लेकिन अरुण कुछ नहीं जानता। उसके पिता जिंदा हैं, नामी डाक्टर हैं, घर में माँ हैं। भाई-वहन सब काफी पढ़े-लिखे हैं। प्रतिष्ठित खानदान! अरुण ने कहा, मैं इसके पहले बंगाल कभी नहीं आया, यही पहली वार आया हूँ। आपके यहाँ आकर मुझे बड़ा अच्छा लग रहा है।

टूटी-फूटी भाषा। वोलने का ढंग जुदा। आड़ से सुनकर माधू हँसते-हँसते लोट-पोट! आखिर वंगाली ही है न, अपनी मातृभाषा भी नहीं सीखी! मगर भाषा कितनी ही टूटी-फूटी क्यों न हो, गला वड़ा मीठा है। गजब है, मर्द भी इतना खूबसूरत होता है! उतना ही लंबा-चौड़ा, उतनी ही अच्छी तंदुरुस्ती, सुदृढ़ शरीर, मगर सर्वांग कैसा लावण्यमय! माधू ने मानो जादू की मारी नजरों से देखा।

उपेन बाबू ने कहा, तुम इतनी कम उम्र में व्यापार में उतरे हो—इस देश के मगरमच्छों से पार पा सकोगे?

अपने स्वभाव की सरलता के कारण अरुण अव अपने असली परिचय को हरगिज नहीं छिपा सका। वह बोल उठा, देखिए, मैंने सही वात नहीं वताई। इस देश में फौजियों से सभी नफरत करते हैं, डरते हैं, इसके सिवा गोरे लोग जुल्म भी वहुत करते हैं—इसलिए फौजियों की कोई आदर-क़दर नहीं है। मैं चड़कडांगा की छावनी का एक फौजी लेफ्टिनेंट हूँ। मेरे कसूर को माफ कीजिए।

फूफी और उपेन वावू जरा खौफ खा गए। वोले, हम लोग फौज के नाम से ही काँपने लग जाते हैं, लेकिन उन्हें कभी देखा नहीं है। तुमको देखकर तो हमारी मूल धारणा जाती रही वेटे। हमने पहली वार जाना कि फौज में भले घर के लड़के भी रहते हैं।

अरुण जोर से हँस उठा। माधू ओट में खड़ी होकर खूब हँस रही

थी। फूफी की पुकार से अब उसे सामने आना पड़ा। उसने भोजन के लिए जगह बना दी, पानी लाकर रक्खा, आसन बिछाया। लेकिन इतने में ही उसका दम घुट गया। एक अधीर उत्तेजना से वह थर-थर काँप रही थी।

फूफी ने लाकर भात की थाली सामने रक्खी। उसके बाद बोली—तुम्हारी शादी-वादी हो गई है बेटे ?

—जी नहीं।—अरुण ने जवाब दिया।

फूफी से उपेन की आँखों-आँखों बात हो गई। उन लोगों में से किसी ने देखा नहीं, अंतरिक्ष में केवल जीवन-विधाता को कौतुक हुआ। फूफी बोलीं, अपनी यही छोटी-सी गिरस्ती है बेटे। पचास बीघे के करीब जमीन है, कुछ तहसील-वसूल भी है। जिला बोर्ड से उपेन थोड़ा-बहुत पाता है, बस इतना ही सहारा। इस लड़की को किसी के पल्ले मढ़ दें तो हम संतोष की साँस लें।

माधू से अब रहा नहीं गया।

—फूफी !—दूर से माधू ने फूफी को डाँटा।

फूफी बोलीं, हाय राम, इसमें ऐसा क्या हुआ ! अरुण हमारा स्वजातीय है। इसे घर का लड़का कहने में भी दोष नहीं। और यह भी बता दूँ बेटे, माधू के लिए बड़े-बड़े घरों से रिश्ते आ रहे हैं।

—तुम रुकोगी भी फूफी कि····? माधू चिल्लाई।

अरुण सिर झुकाए मुस्करा कर खाता रहा। फूफी ने एक बार उसकी तरफ देख कर कहा—हाँ, अब यह बात अलग है कि हाँड़ी में चावल कौन डालता है, भावी ही असली बात है। क्या पता बेटे, सुन कर तुम्हारे माता-पिता शायद दौड़े आएँ। लड़की सुन्दरी हो तो सभी जगह पूछ होती है। माधू, तू बता न बिटिया, पढ़ने और गाने-बजाने के लिए स्कूल से तुझे कितनी बार इनाम मिला है ?

माधू वहाँ से बिलकुल गायब हो गई।

खा-पीकर अरुण उस दिन तो रुखसत हुआ। लेकिन जाते वक्त फूफी ने सर की कसम देकर कहा, फिर कब आ रहे हो, यह बता कर जाना होगा बेटे। एक ही दिन में तुम पर जानें कितने दिनों का स्नेह हो आया। जानें आज किसका मुँह देखकर उठी थी, रास्ते में ही माणिक मिल गया ! मेरे सर की कसम रही अरुण, कल तुमको फिर आना ही पड़ेगा। भला ?

अरुण ने मुस्करा कर कहा, अपने कप्तान के हुक्म के बिना तो आ नहीं सकता। लेकिन सामान-वामान खरीदने के लिए दो ही एक दिन में शायद आना पड़े।

फूफी ने कहा, बेटे, फौज में नौकरी ही ली है, मगर लड़ाई तो बन्द हो गई। फिर कहीं लड़ाई छिड़े, तो तुम बेटे मार-काट से बचे रहना। लड़ाई आज है, कल नहीं है। वह तो दिमागी फितूर है। तुमसे नाता सदा का है। कल से तुम्हारी राह देखती रहूँगी।

अरुण को विदा करके फूफी हँसती हुई अंदर आईं।

माधू कहीं ओट में साँस रोके खड़ी थी। अरुण के जाने के समय वह निकल कर सामने आई। सकुचाए, शरमाए, लड़खड़ाते स्वर में बोली, आइएगा लेकिन जरूर।

अरुण ने कहा, तुमने तो बात ही नहीं की, क्यों आऊँ?

—मैंने बहुत सारी बातें की हैं, आप सुन नहीं पाए।

उतना ही बोलने में कलमुँही माधू हाँफ उठी। लेकिन इतना ही काफी था। अधीर आवेग और बेहद खुशी लिए वह वहाँ से भाग गई।

अरुण कुछ देर तक उसकी ओर ताकता रहा, उसके बाद तेजी से चला गया।

इस छोटी-सी कहानी के पीछे दो राजनीतिक आवर्तनों की बात छिपी थी। एक तो साम्प्रदायिक दंगा, दूसरा युद्ध का अंत। सारे बंगाल में एक ओर अराजकता की हवा बहने लगी थी, दूसरी ओर युद्ध के बाद आजादी की बातचीत सुनने में आ रही थी। चारों ओर अफवाह फैली थी कि सेना और नौ-सेना में शायद अंतर्विप्लव आरंभ हो गया है। सरकार सख्त हाथों उनका दमन कर रही है।

कई दिन बीत गए।

अरुण इस घर में इस बीच तीन-चार बार आ चुका। उपेन और फूफी अरुण के मीठे व्यवहार और विनम्र बोलचाल से मुग्ध हो गए। अरुण ने अपने माँ-बाप के पास चिट्ठी भेजी है। उपेन ने यह मान लिया है कि वह माधू को निश्चित रूप से अरुण के हाथों सौंप देंगे। फूफी को विश्वास था कि अगले फागुन में यह शादी अवश्य ही हो जायेगी। माधू अकेले में बैठकर अरुण से बात करती है, तो अरुण उससे ब्याह करेगा।

अरुण को दो-एक दिन के अन्तर पर इस गाँव में आना पड़ता

पन्द्रह दिन पहले पहली बार उसका परिचय हुआ था। इस बीच वह पाँच-छः बार आ चुका है। फूफी तो बेहद खुश थीं, उपेन के भी उत्साह का अंत नहीं था। माधू अरुण को लेकर उसी टूटी इमारत के इधर-उधर घूम कर दिखाती फिरती। यहाँ ठाकुरबाड़ी थी, वहाँ घुड़साल, यह प्यादों का अड्डा था और यहाँ पर था सरिश्ता। गिरा हुआ घर, सील भरा, चमगादड़ों का बसेरा। उधर जनानखाना था, वहाँ अभी भी सोंधी-सोंधी सी गंध आती थी।

इधर फूफी खँडहरों के पास से उनकी घनिष्ठता देखकर बहुत खुश होतीं। कितने बच्चे-से हैं ये। बिखरी-बिखरी नाहक की बातों में उन्हें कैसी खुशी! बातें करते-करते दोनों सात मंजिल की उस इमारत के खंडहरों में खो जाते। देश के इस दुर्दिन में ईश्वर कहीं इस परिवार की ओर मुँह उठाकर ताकें! खुशी के मारे फूफ़ी की आँखों में आँसू आ जाते। उपेन सोचते, स्वर्गीया पत्नी जिसमें इन दोनों को आशीर्वाद दें।

ऐसे ही समय एकाएक एक दिन इस गाँव के आसपास ही सांप्रदायिक दंगे की आग भड़क उठी। कटे धान के बँटवारे के लिए दोनों संप्रदायों के खेतिहरों में बड़ा टंटा उठ खड़ा हुआ। उसी जगह पर कई आदमी हताहत हो गए। इस दुर्घटना की खबर को दावानल की तरह फैलने में महज दो घंटे का समय लगा। गाँव के गाँव इसकी लपेट में आ गए। शांति समिति के लोग भी इस आग को नहीं बुझा सके।

हाट में आदमी का नाम नहीं, दुकानें बंद। जान लेकर चौकीदार भाग गया। थाना यहाँ से दो मील पर था। इस गाँव को छोड़कर अपनी-अपनी जान लेकर बहुतेरे लोग जाने कहाँ भाग गए। रुद्रेश्वर के मंदिर में पहरा देने वाला आदमी भी कोई नहीं रहा।

अरुण पिछले कई दिन नहीं आया। एक अजीब बेताबी से सब रात-दिन घड़ियाँ गिन रहे थे। रात को उपेन और फूफी आँखें मूँदे निढाल से पड़े थे—इधर एक ओर फर्श के बिछौने पर लेटी माधू अँधेरे की ओर दप्-दप् ताक रही थी। चारों ओर इस प्रेतपुरी के ईंट-पत्थरों के अंबार के इनारे-किनारे उसका अकुलाया प्राण आहत-प्रतिहत हो सिर्फ आँखों की दोनों काली पुतलियों पर आकर स्थिर-सा हो रहा। वे मानो जीवन-विप्लव की दो जलती चिनगारियाँ हों। अरुण आ क्यों नहीं रहा है?

भय से त्राण दिलाने वाले एक युवक के आने की प्रतीक्षा में वह छोटा-सा असहाय परिवार मौत के भय से आकुल और सहमा हुआ रास्ते

की ओर ताकता रहा।

अरुण कहाँ चला गया, कहीं कोई समाचार नहीं।

चारों ओर से भयानक दुर्घटना की खबरें आने लगीं। आजाद हिंद आंदोलन की लहर को रोकने के लिए सरकार शायद हिंदू-मुसलमानों के दंगे को उभाड़ना चाहती थी। लेकिन देश भर में फैली अराजकता के बीच खड़े होकर इस राजनीतिक स्थिति को दूध का दूध, पानी का पानी जैसा अलग कर सकने योग्य विवेकशील व्यक्ति नहीं मिल सका।

कोई तीन दिन तक गाँव की शांति कमेटी प्रतिरोध की व्यवस्था लिए खड़ी थी। हाट, सामाजिक अड्डा, युनियन बोर्ड के दफ्तर, नाट्य-समिति—कहीं भी कोई आदमी नहीं। बीच-बीच में थाने के मुसलमान दरोगा अपने दल-बल के साथ इधर-उधर घूम जाया करते थे। दोनों संप्रदायों के स्वयंसेवक इस-उस गाँव में पहरा देते फिर रहे थे।

साँस रोके गाँव के लोग शुभ घड़ी का इंतजार कर रहे थे। लेकिन झूठी थी वह प्रतीक्षा। उस दिन सवेरे रुद्रेश्वर के मंदिर के दरवाजे पर एक बछड़े का सिर मिला और नौ बजते-बजते इस गाँव में भयंकर दंगा शुरू हो गया।

इस घर के गुफा-गह्वर में तीन बेचारे जीव छिपे थे। लेकिन चूंकि राशन का सिलसिला टूट गया, इसलिए तीन दिन से उनके यहाँ रसोई नहीं चढ़ी। आखिर वे खंडहर की ऊँची जगह पर चढ़ गए। वहाँ से खेतों से आने वाली पगडंडी दिखाई देती थी, जिससे होकर अरुण वहाँ आया करता था। लेकिन सुनसान प्रांतर हाहाकार कर रहा था।

आग के धुएँ के साथ मौत का रोना आसपास से सुनाई पड़ने लगा। उपेन बाबू के लिए और स्थिर रह सकना संभव नहीं हो सका। दरवाजे टूटे हुए, पोखरे की तरफ बिलकुल खुला, घर की दीवारें टूटी हुईं—बचाव की कोई तरकीब ही नहीं। इसके अतिरिक्त उन्होंने माधू को उड़ा ले जाने की कानाफूसी भी सुनी।

शायद घर में छिपे रहना ही उनके लिए वांछनीय था। लेकिन पास के स्कूल में सुरक्षित आश्रय मिलेगा कि नहीं, यह जानने के लिए उपेन बाबू उस दिन लँगड़ाते हुए निकल पड़े। कहना नहीं होगा, वह फिर लौट-कर नहीं आए। आधी रात को फूफी को छिपाकर माधू पगली की नाईं कुछ दूर तक पिता की खोज में गई थी, लेकिन उपेन बाबू की लाश खोजने पर भी नहीं मिली।

दूसरे दिन तीसरे पहर इस घर पर हमला हुआ। फूफी और माधू कहाँ जाकर छिप गईं, किसी को पता नहीं चला। लेकिन फूफी ने शायद सोचा था, पोखरे के बाँध के नीचे कहीं छिपकर वह राजा दीपेंद्र नारायण के वंश के गौरव को बरकरार रख सकेंगी और शायद रख भी सकी थीं, क्योंकि दीपेंद्र नारायण के ही प्राचीन कमल-सरोवर में दूसरे दिन फूफी की लाश तैरती हुई दिखाई पड़ी।

गोधूलि के घिरते आते अँधेरे में एक छोटी-सी पोटली हाथ में लिये काली चादर से सारे शरीर को लपेटकर माधू बेहार की ओर दौड़ पड़ी। अरुण का तंबू शायद उसी बेहार के उस ओर है!

कटे धान के खेतों में धान की जड़ें पाँवों में जैसी गड़ती थीं, उतने ही माटी के ढेले भी। चीनांशुक पुष्पों की कोमलता पर जिन रक्तकमल-से चरणों के चलने की बात थी, वे चोटों से छलनी हो गए। सौ साल की विरहिन सुहागिन पगली-सी, जंतु-साँप के भय को भूलकर अभिसार में निकल पड़ी थी घोर अँधेरे में, लेकिन माधू दौड़ रही थी जान के डर से। पीछे से डरावनी मौत अपने खूँखार जबड़ों को खोले बाघ-सी बढ़ी आ रही थी और वह भयभीत हिरनी-सी जान लिये भाग रही थी।

दिन में भी पेड़-पौधों की ओट से दूर की उस छावनी का पता नहीं चलता। साँझ के अँधेरे में रास्ता भटकने की आशंका थी। परंतु फौजियों से आम लोगों को एक स्वाभाविक आतंक है, इसलिए इस तरफ दंगाइयों को जाने की हिम्मत नहीं पड़ी थी। माधू को विश्वास था, कैंप में पहुँचने से ही सारी समस्याएँ हल हो जाएँगी। आखिरी दिन जब अरुण आया था, उसकी तबीयत वैसी अच्छी नहीं थी। और, अंतर्यामी ने माधू के मन में यह बात जता दी कि अरुण कैंप में सख्त बीमार पड़ा है। माधू के मुँह से आर्तस्वर निकल आया। वह ठिठक पड़ी। उमड़ते आँसू ने उसकी आँखों को धुँधला कर दिया था। लेकिन हाथ की पोटली को एक बार माटी पर फेंककर उसने अपनी दोनों हथेलियों को एक बार देखा—मैले दो हाथ। इन दो गंदे हाथों से वह राजकुमार की सेवा कैसे करेगी? मैले हाथों से देवता की सेवा श्रीहीन जो होगी!

उसने दोनों हाथों को माटी के ढेलों पर एक बार घिस लिया, उसके बाद दामन को खींचकर हाथों को सफाई से पोंछा—उसके बाद पोटली को उठाकर फिर दौड़ी।

मुँहजली की आँखें, मन, बुद्धि—सभी बड़ी पैनी थीं। रास्ता वह

नहीं भूली। पेड़ों की भीड़ के अंदर से इतने में कैंप की रोशनी दिखाई पड़ी। दूर से वहाँ की चहल-पहल भी उसे दिखाई दे रही थी।

अरुण ने कह रक्खा था—कँटीले तारों से घिरा है। पूरब मुंह को एक फाटक है। उस फाटक पर हथियारबंद पहरेदार मुस्तैद रहते हैं। काफी चक्कर काटने के बाद वह फाटक मिला, लेकिन वहाँ पहरा नहीं था। माधू जैसे जी गई। सबसे बड़े इम्तहान में वह सफल हो गई थी। कैंप के अंदर रोशनी थी। एक के बाद दूसरा ट्रकों का काफला तेजी से निकलता जा रहा था। माधू ने व्याकुल होकर एक बार इधर-उधर देखा। उसके बाद बैठ गई। उस पोटली को खोलकर उसने छोटा-सा नोट बुक निकाल कर उसके पन्ने उलटना शुरू किया। नोट बुक अरुण का था। आखिरी दिन उसकी ऊपर की जेब से गिरकर एक तरफ को पड़ा था। तब से वह उसे लौटाया नहीं जा सका। नोटबुक में अरुण के नाम के सिवा और कुछ भी जानने का उपाय नहीं था। उसके पन्नों पर नंबर ही नंबर दर्ज थे।

एक नंबर को याद करके माधू तेजी से एक ओर को चल पड़ी। करीब जाकर देखा, सब में परेशानी और हड़बड़ी-सी है। बदन की चादर को उसने भली तरह से लपेटा। घूंघट काढ़ लिया। एक आदमी के पास जाकर पूछा। तब तक एक काफला और निकल गया।

उस आदमी ने माधू की भाषा नहीं समझी। पूछा—क्या माँगता?

माधू ने किसी तरह से नंबर बताया। उस आदमी ने काली चादर से एड़ी-चोटी ढँकी उस नारी-मूर्ति को देख लिया। कहा....आगे....हाँ-हाँ-हाँ।

जरा देर होती तो माधू गाड़ी के सामने आ जाती। वह दौड़कर आगे निकल गई। जरा दूर जाने पर उसे वह नंबर मिला। सामने ही लेफ्टिनेंट का कमरा। लेकिन खाली, कोई कहीं नहीं। इधर देखा, उधर देखा—कोई नहीं।

लड़ाई थम जाने के बाद कैंप की क्या शकल हो जाती है यह उस बेचारी लड़की को मालूम नहीं था। सब कुछ ज्यों का त्यों सजा-सजाया रह जाता है, रहता नहीं है सिर्फ आदमी। फिर उसकी कहाँ बुलाहट हुई, कौन जाने! थोड़ी ही दूर पर ट्रकों की और एक कतार रवाना होने की तैयारी में थी। वह उसी तरफ को कदम बढ़ा रही थी कि वह पहले वाला सिपाही उसकी ओर आया और

आने का कारण पूछा। माधू ने प्रायः रोकर ही टूटी-फूटी भाषा में उसे अरुण का नाम और हुलिया बताया। वह सिपाही अरुण को भली तरह जानता था, उसी ग्रूप के पहरे में वह रहता है। उसने माधू को बताया, लेफ्टीनेंट साहब बीमार पड़ गया था, बड़ा साहब उसको बदली कर दिया।

—यहाँ नहीं है ? बीमारी में ही बदली कर दिया ?

—हाँ।

—कहाँ गया वह ?

—मालूम नहीं।...खबरदार....

ट्रकों की कतार आ रही थी। पागल जैसी निगाह से माधू ने ताका। उस निगाह में क्या था, क्या पता ! डर ? घिनौने नतीजे का आतंक ? महाप्रलय का आभास ! ईशान की भृकुटी की टेढ़ी भंगिमा ! माधू उन दौड़ती हुई ट्रकों के पास-पास दौड़ने लगी। क्यों दौड़ी, यह कहना कठिन था। वह चाहती क्या थी, मालूम नहीं। ट्रकों के सिपाही पहले हँसे। फिर आपस में बतियाने लगे, गाँव की पगली है !

माधू दौड़ती रही। एक के बाद दूसरी ट्रक उसे पार करती गई। ाने कितनी दूर दौड़ती गई माधू—बगीचा पार करके, कैंप से दूर, एक बाद दूसरे रास्ते को छोड़ते हुए ! लेकिन ट्रकों का काफला अँधेरे में त की आँखों जैसी हेडलाइटों की तीखी रोशनी जला कर उसे पीछे ड़कर निकल गया।

माधू पागल क्यों न हो गई ? महाचंडी छिन्नमस्ता की नाईं अपने गले का लहू उसने क्यों नहीं पिया ? कराली, भीमा भयंकरी के प्रलय- से सृष्टि को उसने रसातल में क्यों नहीं पहुँचा दिया ? लेकिन माधू , उस सुनसान प्रांतर के किनारे औंधी गिर कर अपना ही सिर कूटने —तुम्हारे सिवा मेरे और कोई नहीं है !

जाड़ों की करारी सरदी से वह अँधेरा और ओर-छोरहीन प्रांतर सच शान-काली के प्रेत-नृत्य की जगह जैसा ही था !

ाधी रात को किसी समय माधू जमीन का ही सहारा लेकर किसी उठ बैठी। इधर-उधर ताका। अब तक उसकी रुलाई थम चुकी थी। सके बाद दो दिनों तक उसका कैसा दुस्साहसिक अभियान चला ! ही मिहनत की, उससे कहीं ज्यादा पिया उसने पोखरे का पानी। एक दिन वह एक साहब के बगीचे में पहुँची। वहाँ एक आया से लकत्ते का अता-पता पूछा। आंध्र की उस आया को कलकत्ते की

कोई जानकारी नहीं थी। उसने जाकर एक बुढ़िया मेम को बताया। स्नेहसनी-सी वह बुढ़िया मेम निकली। वह मिशनरी थी। कुछ दिनों के लिए माधू को वहाँ जगह मिल गई।

विपदा में पड़ी स्त्री अपनी सुरक्षा का उपाय जैसे भी हो, निकाल लेती है। माधू भी नारी और वन में विचरने वाली हिरनी भी नारी! दोनों को अपना ठिकाना, अपनी गुफा मिल जाती है। बड़ी अस्वस्थता में ही उस बार माधू ने मैट्रिक का इम्तहान दिया और अच्छी तरह से पास कर गई। लेकिन उसके सारे शरीर में विष की प्रबल प्रक्रिया थी।

बड़ी नादान थी वह लड़की, निहायत नासमझ। दुनिया का उसे कोई भी अनुभव नहीं था। महज कै दिनों की जान-पहचान ही तो थी एक युवक से! माना कि मन ही मन उसने उसके अपने पति होने की हाँ कल्पना कर ली थी! लेकिन दुनिया में तो रोज ही ऐसा होता है। जीवन में बेहिसाब नाकामयाबी, बेहद चोटें सहनी पड़ती हैं—इसके लिए जो लड़की टूट पड़ती है, उसके भविष्य का कोई भरोसा नहीं।

यह सब तो विज्ञों की बात हुई। लेकिन जिस रूपवान तरुण युवक को मन ही मन उसने पति मान लिया था, उसकी ही संतान उसके पेट में है। मजबूरन उसे यह सत्य उस बुढ़िया मेम की जवान बेटी के पास कबूल करना पड़ा। उसके सामने धरती फट नहीं गई!

इसके बाद माधू की जिंदगी में नई बयार बही। उसने मिशनरी स्त्रियों के साथ आश्रय लिया और एक समय एक पुत्र को जन्म दिया। उसने अरुण का नोटबुक निकालकर कई लोगों को दिखाया। उस साल के अंतिम दिनों भारत राष्ट्र और सरकार के बीच काफी तनातनी रही, वैसी स्थिति में ऐसे किसी आदमी के संपर्क में वह नहीं आ सकी, जो उसे अरुण की कोई खबर लाकर दे। नोटबुक में कुछ जो गिचापच सांकेतिक नंबर थे, अक्षर थे, उसका भी अर्थ उसे कोई नहीं बता सका। लेकिन अरुण की अंतिम निशानी के रूप में वह नोटबुक उसके पास रह गया।

मिशनरी की देखरेख में ही वह बच्चे को छोड़ देने पर मजबूर हुई। उस नन्हें शिशु को उन लोगों ने कहाँ तो भेज दिया, माधू ने उसकी खोज-खबर रखने की भी कोशिश नहीं की। छुटकारा पाकर उसकी जान में जान आई। और, एक साल के इस अरसे में उस युवती मेम से उसकी गाढ़ी मिताई हो गई। अगले दो सालों में माधू ने बहुत अच्छी तरह

आई० ए० पास किया और उसे एक अच्छी छात्रवृत्ति मिली। उसकी इस गजब की सफलता से सभी दंग रह गए। नाच और गीत में तो उसने ऐसी खूबी दिखाई कि 'स्टेट्समैन' में उसकी तस्वीर छपी।

बी० ए० पढ़ने के लिए माधू शांतिनिकेतन गई। वहाँ के प्रशांत परिवेश में पहुँचकर उसने अपने को पहचानना सीखा और कठोर आत्म-विश्वास के ऊपर वह सख्त होकर खड़ी हुई। उसकी खूबसूरती की ख्याति चारों ओर फैल गई। वहाँ उसने नाच का काम लिया, नए नाच की शिक्षा चलायी; गीत पर नयी मीड़ चढ़ायी, अभिनय में नई टेकनीक लायी और अर्थशास्त्र में अनोखी सफलता पाकर उसने यह साबित कर दिया कि उसका दिमाग बहुत साफ है। उसका हास-लास, बोलने की उसकी चातुरी और ढंग, गाने का गला और सहजात अभिज्ञान को देखकर सबने मन ही मन जान लिया कि यह लड़की एक जन्मजात प्रतिभा है! रीढ़ की मजबूती और स्वभाव की पवित्रता—माधू के ये दो गुण देखकर आस-पास की लड़कियाँ भी उसका लोहा मान गयीं। सम्मान के साथ उसने बी० ए० पास किया और अर्थशास्त्र में एम० ए० किया। अब उसे उपार्जन के क्षेत्र में उतरना था।

रात बीतने की चाँदनी मलिन हो आई। उसी मुरझाई हुई आभा में ईशानी की कहानी खत्म हुई। शांतनु की मुग्ध आँखें एकटक उसकी ओर लगी थीं।

रात बारह बजे के बाद से ऊपर धीमे-धीमे पंखा चल रहा था। एक ही बिस्तर के इस ओर शांतनु, उस ओर ईशानी पत्थर-से हों जैसे। लेकिन अब मीठे अवसाद से शांतनु की आँखें मानो लटपटाने लगीं। वह बोला, लेकिन वह युवती मेम जैसे काव्य की उपेक्षिता होकर रह गई।

दोनों आँखें बंद करके ईशानी ने कहा, मेरे जीवन के बहुत ही बुरे दिनों की मेरी वह मित्र—वही है सिलविया!

शांतनु ने पूछा, तो क्या विक्तर तेरा ही लड़का है?

भर्राई आवाज में ईशानी ने कहा, तेरे और सिलविया के सिवाय दुनिया में इस बात को कोई नहीं जानता।

शांतनु बड़ी देर तक काठ का मारा-सा बैठा रहा। फिर पूछा, तूने अपना वह माधू नाम कब बदला?

आई० ए० पास करने के बाद सिलविया वगैरह की मदद से मैंने

युनिवर्सिटी में दरखास्त दी। बड़े कष्ट से उस नाम को बदल पाई।

—तुझे यह ईशानी नाम क्यों पसंद आया ?

ईशानी ने मुस्कुरा कर कहा, जीवन की रणभूमि में दस हाथों में हथियार लेकर उतरी थी। उस समय शायद मेरी आँखों में बाँके कटाक्ष का भयंकर व्यंग था—इसलिए यह नाम फिट बैठ गया !

शांतनु ने कहा, लेकिन वह जिंदगी तू पार कर चुकी। अब तू अपने आत्मविश्वास पर खड़ी है—तेरी स्थिति बदल गई है। मुझे अब माँ के परिचय में लौट आना चाहिए !

ईशानी ने कहा, कैसे लौटूँ ?

—तेरे जीवन में सफलताएँ बहुत मिलीं, लेकिन सार्थकता की मंजिल तो अभी बहुत दूर है ! तू चूँकि खुद वंचित हुई, इसलिए एक निरपराध बच्चे को माँ के स्नेह से वंचित करेगी ?

ईशानी चुप हो रही।

शांतनु ने पूछा, तेरी जवानी की यह बहार सदा रहेगी ? नंदन-निवासिनी उर्वशी की आनंद-चंचल देह-लता का वासना-विलोल नाच कितने दिनों तक चल सकता है ? बहुत ज्यादा तो और दस-पंद्रह साल ? उसके बाद ? उसके बाद तो रंगमंच की बत्ती गुल हो जाएगी। कलेजे में दबी निराशा लिये चुपचाप अँधेरे कमरे में अकेली लौट आना पड़ेगा। और वह घर तो बिलकुल सूना है ! स्त्री की कहो चाहे पुरुष की—आदमी का अंतिम सहारा उसके बाल-बच्चे हैं। तूने गलती की है ईशानी—प्रेम की सार्थकता वात्सल्य और स्नेह में है।

अब ईशानी ने जबान खोली। बोली, लेकिन विक्तर जब यह जानेगा कि उसकी माँ जहाँ-तहाँ नाचती-गाती फिरती है और उस माँ का और सब परिचय अँधेरे में ढँका है ! इसके अलावा और भी बात है शांतनु। स्त्रियों के बच्चा पैदा हो जाना और माँ होना—दोनों एक बात नहीं है। विक्तर के जन्म की घड़ी से आजतक उसके साथ मेरा कोई परिचय ही नहीं हुआ। इसीलिए विक्तर मेरे लिए सत्य नहीं, महज कल्पना है।

शांतनु ने अवाक् होकर उसके मुँह की ओर ताका। मन की ऐसी अजीब उलझन से उसका परिचय नहीं था।—तो, अरुण से तेरा नाता ?

ईशानी हठात् हँसी। बोली, वह दैवी है।

—मतलब ?—शांतनु ने मूढ़ की नाईं निहारा।

आसमान पर ऊषा की झाँकी झलक आई थी। आस-पास के बाग-

बगीचों में चिड़ियाँ डैने फड़फड़ा रही थीं—अभी-अभी अनंत आकाश उनको पुकारेगा। किसी-किसी चिड़िया ने ब्राह्म-मुहूर्त में ललित की तान छेड़ दी थी। जरा ही देर में सूर्य की बंदना-सभा शुरू होगी।

शांतनु ने कहा, क्या कहना चाहती है तू, वह प्यार नहीं है ?

ईशानी बोली, कतरा भर नहीं।

—तुझे धिक्कार है ईशानी ! तू क्या सोचती है कि यह सुनकर मैं पुलकित होऊँगा ?

—मैं ताजिंदगी तेरी नफरत को ढोती फिरूँगी, वह भी कबूल, लेकिन तेरे सामने मैं झूठ नहीं बोल सकती। कच्चे मन की क्षणिक चकाचौंध को तू अगर मुहब्बत कहने की भूल करे, तो तुझे भी पछताना पड़ेगा, शांतनु ! वह आदमी पाँच-छः बार आया जरूर था, मगर कुल मिलाकर उसका वहाँ रहना बीस घंटे भी न होगा। उसे देखने से शायद पहचान लूँ, परंतु उसकी शक्ल अब बिलकुल याद नहीं आती। उस आदमी ने मेरी मुहब्बत को पैरों से रौंदा नहीं, क्योंकि मुहब्बत की सचेतनता पैदा होने के पहले ही वह लापता हो गया।

शांतनु ध्यान से उसकी बातें सुन रहा था। बोला, तो क्या तू यह कहना चाहती है कि तू विक्तर का कोई दायित्व कभी नहीं लेगी ? उसके जन्म की कहानी सदा रहस्यमय ही रह जाएगी ?

ईशानी जरा हँसी। बोली, दुनिया में ऐसे लाखों लाख बच्चे हैं जिनके जन्म की कहानी रहस्य से ढँकी हुई है, यह क्या तुझे मालूम नहीं है ? क्या करते हैं वे ? बड़े होने पर कहाँ खड़े होते हैं ? गोकि यह कौन नहीं जानता कि अनाथालय के बच्चे माँ-बाप विहीन नहीं हैं। शायद हो कि बहुतों के माँ-बाप पास ही रहते हैं, उन्हें पता नहीं होता !

शांतनु अचरज से सन्न हुआ-सा ताकता रहा ! इस दुनिया का कितना जानता ही है वह !

ईशानी कहने लगी, ऐसे अनगिनती पति हैं, जिन्होंने अपनी संतान-हीन स्त्री को धोखा देकर अपने गुप्त संतान को ही पुत्र के रूप में गोद लिया है ! कौन नहीं जानता कि बहुतेरी दुश्चरित्र स्त्रियों के बच्चे पति के ही नाम पर चल जाते हैं ! इसीलिए जन्म-कथा की पवित्रता के बारे में किसी आदमी का कोई विचार निर्मूल नहीं भी हो सकता है, यह बात जान रखना ठीक है, शांतनु।

शांतनु ने पूछा, तेरा ख्याल है, विक्तर सदा अजाना ही रह जायगा ?

ईशानी ने कहा, उसके मन में कभी अगर ऐसा कठिन सवाल उठा भी, तो मैंने उसका जवाब नहीं दिया, उसके माँ-बाप का परिचय देकर उसकी जिंदगी को परेशानी में नहीं डाला !

लेकिन अगर कभी अरुण से तेरी मुलाकात हो जाय ?

ईशानी बोल उठी, डरो मत, जो लड़की कभी उसके पाँव पकड़ कर रो सकती थी, वह बहुत पहले ही मर गई। लेकिन हाँ, उससे भेंट हो जाती, तो विक्तर की चर्चा शायद करती ! पुरुषों के जीवन में पिता का परिचय ही जरूरी होता है, माँ का परिचय मिट जाने से भी चल जाता है !

मजाक में शांतनु ने कहा, और तेरी मुहब्बत का मामला ?

—मुहब्बत !—ईशानी खिलखिला कर हँस उठी। उसके बाद बिस्तर से उठकर वह अपने कसरत के कमरे में चली गई।

सात

बात यहीं से साफ हो जानी चाहिए। माधू है पहले की लड़की, ईशानी उसका नया नाम है। माधू अपने उत्पीड़ित जीवन के संग्राम में खो गई और ईशानी उसी के मसान की राख मलकर खड़ी हो गई। माधू अतीत में लापता हो गई, ईशानी की स्मृति है। माधू ने जिसे स्वामी सोचना चाहा था, स्वामी हो उठने के पहले ही गायब हो जाने से वह खो चुका। ईशानी कौतुक से उन दोनों के इस खो जाने की तरफ़ कौतूहल से ताक रही है। अरुण का पीछे नजर आता है, माधू का सामने। माधू की आँखों से आँसू की धारा बह रही है, ईशानी हँसकर उसकी ओर ताकती है। ईशानी के प्राण की डंठल में वे दो फूल थे—माधू और अरुण—लेकिन दोनों ही फूल झड़ पड़े।

ईशानी से पूछो, वह कहेगी, माधू के प्रेमी की उसे याद है, लेकिन वह एक खूबसूरत जवान की निराकार छाया भर है—उसमें रेखा का कोई आकार नहीं। उसी के आकर्षण से माधू ने अपनी आत्मा को बेचा था, लेकिन ईशानी ने नहीं। उस युवक की प्रकृति कैसी थी, इस बात की गवाही उस दिन की माधू दे सकती थी, लेकिन ईशानी के लिए वह संभव नहीं है। उस युवक ने प्रेम किया था या नहीं, कह सकना कठिन है, क्योंकि जवानी की चुलबुली बातों को प्रेम का नाम नहीं दिया जा सकता। जो याद सिर्फ यौन-चेतना में ही सिहरन लाती है, उसे प्रशांत प्रेम के भाव का आवेश नहीं कहा जा सकता। क्योंकि प्रेम के एक हाथ में होती है कल्याण की कामना, दूसरे में त्याग की प्रसन्न उदारता। इसीलिए छोड़ने में प्रेम का थोड़ा-बहुत परिचय मिलता है, खींच-तान में उसकी अकालमृत्यु ही निश्चित है। प्रेम का ऐश्वर्य आँसू में है, मगर कामना का प्रकाश है विलाप।

शांतनु ने फौरन ईशानी को धर दबाया—मतलब ? माधू ने क्या प्यार नहीं किया ?

ईशानी हँसी। बोली, माधू ने शायद अपने उस क्षणिक प्रणय का प्रायश्चित्त किया था। नहीं समझा ?

—नहीं।

—दो फटने वाले बारूद करीब आ गए थे। दोनों की रगड़ से आग लहक उठी। वह आग माधू की आँखों के आँसू से बुझी। स्त्रियाँ तो जन्म से ही अर्वाचीन होती हैं। वह यंत्र होती है, पुरुष होता है, यंत्री ! उनमें अपनी निजस्वता नहीं होती, पुरुष उनमें प्राणों का संचार करते हैं, तभी वे सचल होती हैं। जिस पुरुष के आघात से उनका जीवन मटियामेट होता है, वही पुरुष उन्हें युग-युग के महाकाव्य के ऊँचे आसन पर बिठाकर उनकी पूजा करते हैं ! प्रेम के पहले ही अरुण माधू को माँग बैठा, प्रेम की चेतना जगने के पहले ही माधू ने अपने को सौंप दिया। पति को पाने के लिए वह इंतजार नहीं कर सकी, पुरुष को ही पहले पा गई। नासमझ लड़की ने यह नहीं सोचा कि सभी पुरुषों में स्वामी नहीं है। जो लड़की उन दोनों को एक साथ ही पाती है, दुनिया में उसी का जीवन सार्थक है।

यह बात उठ सकती है कि ईशानी के जीवन की सार्थकता कहाँ है ? कि तुरत जवाब मिलेगा, ईशानी नाम में ही उसकी सार्थकता है। जो स्त्री बाँकी चितवन से ताकती है, वह दुनिया की उलटी तरफ को देखती है। आज तक जो चल रहा है, वह किस युक्ति से चल रहा है ? नाच की दुनिया में मेरा नाम कम नहीं है, मगर नाचती हूँ कि नचाती हूँ ?

शांतनु ने कहा, तू यंत्र है, मैं तुझे नचा रहा हूँ।

—गलत ! अब तक पुरुष नचाते रहे, अब कुछ दिन हम लोग नचाएँ। हम लोग रुपए कमाकर उन्हें नचाएँगी, तलाक देकर उन्हें नचाएँगी, शासन के केन्द्र में बैठकर उन्हें नचाएँगी, पेट में बच्चा धारण करना बंद करके उन्हें नचाते हुए घुमाया करेंगी। वे लोग ताता-थेई करके नाचें, कुछ दिन रोते-रोते नाचें, जीवन के रंगमंच पर उनका नाचना-रोना देखकर हम लोग ताली बजाएँ।

मजाक करके शांतनु ने कहा, और घर-गिरस्ती ? जीवन का उत्तरदायित्व ? चिड़िया अंडा कहाँ देगी ?

ईशानी ने जवाब दिया, अंडा नहीं देगी। जैसी जरूरत, वैसा अंडा देगी। उसके बाद असीम मुक्ति का आकाश रहा !

शांतनु फिर हँसा। बोला, तलाक की प्रथा चालू होने से [illegible]

कर हाहाकार कर उठे।

और, उसके बाद ही मूसलाधार वर्षा उतर आई।

दूसरे दिन सवेरे का शांत आकाश नए सूरज के उदय से चमकता हुआ दिखाई दिया। शांतनु सवेरे टहलने को निकल पड़ा। चित्त उसका प्रसन्न था, खुशी से उसकी सारी दिशाएँ दमक-सी रही थीं।

नहाकर टसर की एक साड़ी लपेटे ईशानी मुस्कुराती हुई बरामदे पर आ खड़ी हुई। दूर से आँखों-आँखों में ही दोनों ने एक दूसरे को जताया —मंगल प्रभात!

कुछ ही देर में एक टैक्सी से रमेन बाबू आ पहुँचे। टैक्सी को खड़ा करके वह सीधे ऊपर चले आए। नंदू ने उन्हें बाहर वाले कमरे में बिठाया।

रामतीरथ को रसोई-पानी की व्यवस्था बताकर ईशानी कमरे में आई।

लाल कोर की टसर की साड़ी सवेरे की धूप की छटा में उसे फब रही थी। लावण्य के साथ ऐसा संभ्रम सहसा नजर नहीं आता। रमेन बाबू की आँखों में श्रद्धा भर आई।

—इतने सवेरे?

—सवेरे!—रमेन बाबू ने कहा, तुम और कहीं निकल न पड़ो, इसलिए मैं रात रहते ही जगा। आमने-सामने रहे बिना ये बातें पक्की नहीं होतीं।

ईशानी ने कहा, खामखा तकलीफ करके इतनी दूर आए, टेलिफोन से ही तो बात कर सकते थे।

—टेलिफोन की बात ही न करो। आजकल उसका रहना न रहना बराबर ही है। जब तक तुम्हारा नंबर मिलेगा, तब तक तो तुम्हारे यहाँ पहुँच ही जाऊँगा। कल रात दफ्तर में बैठकर सोचा जरूर कि तुमको एक बार फोन करूँ। लेकिन उस समय दस बज रहे थे। सोचा, सो [illegible] होगी।

ईशानी बोली, ठीक सोई तो नहीं थी, मगर वैसा ही समझि[illegible] तो क्या बात है?

रमेन बाबू ने कहा, तुमसे पक्की बात मिल चुकी है, मुझे [illegible] चिंता नहीं है। लेकिन कल रात अचानक नौ बजे के [illegible]

क कॉल आया ! वे लोग हम लोगों के जाने के बारे में पक्के तौर पर जानना चाहते हैं, यानी वे लोग तारीख जानने के लिए उतावले हैं। उन्हें तरह-तरह की पब्लिसिटी भी तो करनी है न ! इसके अलावा उन लोगों ने एक बात जाननी चाही है।

कुछ अनमनी-सी होकर ईशानी ने कहा, कहिए ?

—यदि हम लोगों को कुछ रुपए चाहिए तो वे लोग यहीं के बैंक से उसका इंतजाम कर दे सकते हैं।

ईशानी ने कहा, आप 'गीताली संघ' के नाम से रुपए ले सकते हैं, मैं अपने नाम पर कोई पेशगी नहीं लूंगी।

दुनियादारी में दक्ष रमेन बाबू अब की जरा हँसे। बोले, मैं ठीक यही बात सोचता आ रहा था। एक इतनी बड़ी कलाकार के पास जा रहा हूँ, कहीं ऐसा न हो कि उसे खुशमिजाज और बहाल तबीयत में न पाऊँ ? सो देवता को मन ही मन सुमरन करता जा रहा हूँ।

ईशानी हँस पड़ी।—क्यों, हुआ क्या है, कहिए न ?

—नसीब ! नसीब के सिवा और कुछ नहीं। रुपया क्या कोई कमाता है ? वह किस्मत का फल है, लक्ष्मी मैया की नजर ! मेरी ही गलती है। याद ही नहीं रहता कि बड़ी कलाकार के मानी है बड़ी प्रतिभा ! और प्रतिभा का चेहरा ही अलग होता है ! चूंकि उसके हाथों सृष्टि होती है, इसलिए वह अपनी खयाल-खुशी पर चलती है। बूढ़ा हो गया, मरने को आया, मगर मेरी बुद्धि नहीं पकी।

ईशानी ने कहा, आपको शायद रुपयों की जरूरत है, क्यों ?

—बस, ठीक पकड़ा है। पकड़े बिना जाओगी भी कहाँ ? कितने लोग कैसे बड़े-बड़े मनसूबे लेकर कोई संस्था खड़ी करने को आते हैं, मगर तुम जैसी कलाकार कितनों को नसीब होती है, बताओ ? सो, जब तुम्हें पा गया हूँ, तो मन की बात बताने में रोक काहे की है ?

ईशानी ने पूछा, वे कितने रुपये तक पेशगी देना चाहते हैं ?

रमेन बाबू ने कहा, तो फिर सुनो। स्त्री-पुरुषों समेत हमारे तीस-बत्तीस कलाकार हैं, उसके बाद मेरा अपना स्टाफ, वह तीन-चार आदमी। उनका कहना है, दिल्ली पहुँचने तक का चारेक हजार और हमारे पावने में से एक हजार, कुल पांच हजार रुपए वे अभी देना चाहते हैं।

ईशानी ने कहा, ठीक तो है।

—लेकिन साज-पोशाक ! खुदरा खरचा ! बजाने के कुछ यंत्र ! लोगों

की तनखाह—दफ्तर में इन्हीं बातों के लिए गड़बड़ी मच गई है।—रमेन बाबू ने स्वर को जरा उतार कर कहा, बात क्या है, जानती हो ईशानी, नाच-गान करने से उनकी भूख मानो दुगनी-तिगनी बढ़ जाती है। बात-बात में चाय, बात-बात में जलपान! जैसी-तैसी भी प्लेट जलपान की क्यों न हो, आठ आने लग जाते हैं। उस पर भी कुछ लड़कियाँ नाक ऊँची करके कहती हैं, हमलोग दालदा की कचौड़ी समोसा नहीं खातीं। नाचते समय हमारे पेट में मरोड़ होती है। मैं कहता हूँ, देवी जी, शुद्ध गाय का घी कहाँ से लाऊँ? गायें पाली बहुत हैं, दूध एक भी नहीं देती!

ईशानी हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई।

रमेन बाबू ने कहा, बात ठीक ही है। गाना, बजाना, नाच, अभिनय—जो भी क्यों न कहो, उसमें लीवर का काम अच्छा होता है। और लीवर अच्छा होने का मतलब समझ लो, मैनेजर की थैली का सत्यानाश! फल कहो, मक्खन रोटी कहो, फलमूल, मांस, पूरी, मिठाई—जो भी कहो, गपागप खाते हैं। उन लोगों की फितरत चिड़ियों की है, उड़ने को मिले तो बेहद खुशी!

हँसी दबाने के लिए ईशानी ने मुँह पर आँचल रक्खा।

रमेन बाबू ने कहा, तुम्हारा क्या ख्याल है, मुल्क से अकाल गया? अजी राम कहो, बिलकुल नहीं। उन सब के पेट में अकाल है! और हम लोगों की तकदीर देखो। हम बैठे-बैठे काम करते हैं न! थोड़ी-सी उबली सब्जी हुई कि हो गया—तोंद फूलकर कोंहड़ा! इसीलिए आइ० ए० पढ़ी हुई लड़कियाँ मुझे पूंजीवादी कहती हैं।

रामतीरथ ने लाकर जलपान रक्खा। सिर उठाकर ईशानी ने कहा, छोटे बाबू लौट आए रामतीरथ?

—जी, माँ जी। अखबार पढ़ रहे हैं।

ईशानी उठ खड़ी हुई। बोली, आप खाना शुरू कीजिए, मैं आती हूँ।—कहकर वह कमरे से बाहर निकल गई।

शांतनु ध्यान से अखबार देख रहा था। ईशानी जाकर पीछे खड़ी हो गई। कानों में कहा, रमेन बाबू को क्या जवाब दूँ?

—मैं कैसे कहूँ?

—तो क्या, चुप रहेगा?

जँभाई लेकर शांतनु ने अखबार रख दिया और कमरे में आ गया।

रमेन बाबू ने हाथ उठाकर नमस्कार किया।—आइए-आइए, बहुत दिनों से भेंट नहीं हुई।

शांतनु एक आरामकुर्सी पर बैठ गया। रमेन बाबू बोले, अभी दुःख-दर्द की बात हो रही थी! सदा तो टेबिल पर बैठकर कलम घिसते-घिसते जिन्दगी काटी, लेकिन सिर्फ एक सही बनाने से पाँच हजार रुपया मिलता है, यह बात जज भी कहता तो नहीं मानता। मगर आज यह बात ईशानी को देखकर मान गया।

—बात क्या है? कोई नई फरमाइश?—शांतनु ने हँसकर ताका।

ईशानी ने कहा, ये तुमसे ही कहने को आए हैं।

रमेन बाबू ने पलक मारते ही आँखों को इधर से उधर तक फेर लिया। बोले, हाँ, बात तो सही ही है। मेरी ही गलती है। पहले तो शांतनु बाबू से ही कहना चाहिए। अभिभावक तो वही हैं।

ईशानी ने कहा, हमारा दिल्ली जाना तै हो गया। लेकिन कब जायेंगे, यही सोचने की बात है। रमेन बाबू के पास टेलिफोन आया है, वे लोग रेल किराया और एक हजार रुपया पेशगी देना चाहते हैं। लेकिन अगर मैं इन लोगों के साथ शो करूँ और जाने को तैयार हो जाऊँ, तो वे लोग कुछ ज्यादा ही देने को तैयार हैं। लेकिन मेरे रुपए रमेन बाबू अभी अपने हाथ में लेना चाहते हैं, यही बात है न रमेन बाबू?

रमेन बाबू ने खिलकर कहा, एक-एक अक्षर सही! यही मेरे मन की असली बात है।

शांतनु ने पूछा, ईशानी को रुपए मिलने में देरी होगी क्या?

रमेन बाबू उछल पड़े, उन्हीं की संस्था है, उन्हीं के रुपए हैं! आप जो भी देख रहे हैं मिस्टर चौधरी, सब उन्हों का है! हम सब तो उन्हीं के रुपए पर नवाबी करते हैं, यह कौन नहीं जानता!

ईशानी झट बोल उठी, आपकी यह बात सच नहीं है रमेन बाबू! वे सभी कलाकार हैं, आप अपने परिश्रम से एक बड़ी संस्था चला रहे हैं। आपकी अपनी शक्ति पर ही आपकी प्रतिष्ठा है। हर कोई अपनी ही खूबी पर खड़ा है।

शांतनु हँसा। बोला, रमेन बाबू कहना चाहते हैं कि उन सब को नचाने वाली तू ही है।

रमेन बाबू ने कहा, बस, आपने वही असली बात कह दी। आपके पास सिर्फ बांसुरी ही नहीं, भाषा भी है!—कह कर रमेन बाबू अपनी

ही खुशी से हो-हो करके हँस उठे।

तीनों जलपान करने बैठ गए।

ईशानी ने पूछा, मेरे नाम से आप कितने रुपए चाहते हैं?

—ज्यादा नहीं, रमेन बाबू ने कहा—यही करीब तीन हजार रुपए हो जायँ तो छोटे-मोटे कर्ज-वर्ज चुका दे सकूँगा। ईश्वर ने चाहा, तो साल के शुरू में ही ये रुपए तुम्हें चुका दूँगा।

ईशानी ने कहा, लेकिन पहले के वे साढ़े पाँच हजार रुपए!

रमेन बाबू घबराने वाले आदमी नहीं। वह फिर से हो-हो करके हँस उठे। बोले, बादशाह अकबर वाली वह कहानी याद आती है। गीत से खुश होकर उन्होंने गवैये को एक हाथी ईनाम दिया। भला गायक को हाथी को खिलाने की क्या जुर्रत? उसने कहा, जहाँपनाह, अपना ईनाम आप वापस ले लें! यह भी वही बात हुई। तुमने हाथी उपहार दिया है ईशानी, लेकिन उस हाथी को तुम्हारे खर्च से खिलाए बिना उसका मरना अवश्यंभावी है! और तुम रुपए की बात कर रही हो? वह भी उस हाथी के ही पेट में गया।

शांतनु ने हँसकर कहा, यह कहानी सचमुच युक्ति पर खड़ी है।

ईशानी ने कहा, तो मुझे भागने का रास्ता बता दीजिए।

शांतनु ने कहा, जहाँ भी भागोगी, वह पागल हाथी तेरे पीछे-पीछे दौड़ेगा। उससे अच्छा तो मैं जो कहता हूँ, सो कर। उस पर हौदा कस कर तू उस हाथी की पीठ पर ही बैठ जा।

ईशानी ने कहा, उस संस्था को चलाने की शक्ति मुझमें नहीं है। मैं उसे मूर्त कर सकती हूँ, उसके पीछे लगी नहीं रह सकती। मेरी ही बनाई हुई चीज, मेरे ही पैरों में जंजीर बाँधेगी, यह विवशता मेरे बस की नहीं।

शांतनु ने कहा, तो फिर ये रुपए तू उन्हें दे ही दे। सचमुच तेरी संस्था के कारण वह परेशान हैं। सब उन्हीं को पहचानते हैं, तेरे पास तक तो वह पहुँच ही नहीं पाते। इसलिए इन पर ही आफत ज्यादा है। तू नाच-कर ही निश्चिन्त हो रहती है मगर उस नाच का नतीजा उन्हें झेलना पड़ता है।

ईशानी ने पूछा, आप खुद कितने रुपए लेते हैं रमेन बाबू?

रमेन बाबू ने कहा, मैं? फिर तो हो गया! मैं ठहरा रसोइया। सबके भोजन के बाद जो कुछ रूखा-सूखा बचता है, उसी से मेरी भूख मिटती है। मेरी चर्चा ही बेकार है, क्या ख्याल है मिस्टर चौधरी!

—और क्या !

—खैर, जान बची। अब मैं चलूँ। हाँ, तो दिल्ली पहुँचने की तारीख कौन-सी दूँ ? पच्चीस वैशाख क्या बुरा है ?

—ठीक ही है। वही दे दीजिए।

रमेन बाबू ने कहा, तुम क्या साथ ही चलोगी ?

ईशानी ने कहा, नहीं, मैं अलग से जाऊँगी। शायद कुछ पहले ही चली जाऊँ। मुझे और काम है।

—ठीक है।—रमेन बाबू उठ खड़े हुए। अन्य बातें फोन पर तुमसे कर लूँगा ?

ईशानी ने फिर कहा, तो मेरे नाम से उन लोगों से पाँच हजार रुपए की बात ही कहिएगा। उससे कहिए वे फोन करें, जिसमें मैं दफ्तर में जाकर रुपए ले लूँ। रुपयों की मुझे भी जरूरत है।

रमेन बाबू चले गए। नीचे उनकी टैक्सी खड़ी थी। मुस्कुराते हुए प्रसन्न मन से वह नीचे उतर गए।

कौतुक भरी नजर से ईशानी की ओर ताककर शांतनु ने कहा, तू भी तो कुछ कम व्यवसायी नहीं है।

ईशानी ने कहा, रुपए की गंध पाने से कौन चतुर नहीं हो जाता, बता तो ? लेकिन ये लोग गलती कर रहे हैं। सोने के बहुत से अंडे एक ही साथ पाने के लोभ में ये लोग बतख को ही काट डालना चाह रहे हैं। खर्च तू ने देखा, अभी आमदनी तेरे देखने में नहीं आई है। देखकर खुश ही होगा।

शांतनु ने कहा, तेरी बात में लेकिन रमेन बाबू के प्रति संदेह का एक इशारा था। उन्होंने शायद नहीं समझा, लेकिन मुझे लगा था।

ईशानी ने जवाब दिया, उनके प्रति मुझे कोई आक्रोश नहीं है। बल्कि मेरा ख्याल है, वह नहीं होते तो इस प्रतिष्ठान को चलाने वाला दूसरा आदमी नहीं मिलता। मगर तुझे मैं खोलकर ही बताऊँ, फिलहाल उन्होंने अपने गरीब ससुर के नाम पर छत्तीस हजार रुपए की एक जायदाद खरीदी है।

—धिक्कार है तुझे ईशानी, हजार धिक्कार !—ईशानी की तरफ कठोर नजर से ताककर शांतनु दूसरे कमरे में चला गया।

ईशानी एक बार तो ठिठक कर रुक गई। उसके बाद धीरे-धीरे उसका पीछा करती हुई बरामदे को पार करके देखा, शांतनु उसी अख-

बार को उठाकर अकेले में गुम-सुम बैठा है। सामने जाकर ईशानी ने कसकर अखबार को खींच लिया और फेंक दिया। उसके बाद वह बोली, तूने गाली-वाली तो कम दी, मगर ज्यादा उत्तेजना को दबा लिया।

शांतनु ने कहा, नहीं। मुझे कुछ कहना नहीं है।

—मुझे है।—ईशानी ने कहा, तू क्या मेरे लिए लोगों की वन्दनाएँ ही सुनेगा ? वंचना की बात क्यों नहीं सुनना चाहता ?

शांतनु ने कहा, रुपए-पैसे के साथ गंदगी जुड़ी होती है, तू उस तरफ कदम क्यों बढ़ाएगी ? कभी मेरे बारे में भी अगर तेरे मन में यही सवाल उठे तो ?

—धिक्कार है तुझे शांतनु, हजार धिक्कार !—वह जैसे चाबुक लिये खड़ी हो गई।

—धिक्कार किस बात का ? यह क्या सच नहीं हो सकता ?

ईशानी ने कहा, तू ने मुझे बहुत बार बहुतेरी कसौटी पर कस कर काबू करना चाहा है, इस कसौटी में तू आप ही काबू हो जायगा।

—क्यों ?—शांतनु ने उसकी तरफ ताका।

ईशानी ने कहा, जहाँ कुंठा है, वहीं मन की उलझन है। तेरे मन में पुरुष का अहंकार है, इसीलिए कुंठा है। इसीलिए तेरे मन में रातदिन काँटा कसकता रहता है और उसके लिए तू खुद ही कष्ट पाता है। मैंने अपनी आँखों ही तो देखा है, कि तू अपने पुरखों का मकान छोड़कर चला आया, तेरा वाजिब पावना तुझसे छीन कर लोगों ने तुझे दर-दर की खाक छानने को मजबूर कर दिया। लेकिन बिना चूँ-चपड़ किए, बिना लड़ाई-झगड़ा किए तू सब कुछ छोड़ आया। मैं क्या यह बात नहीं जानती कि लोभ दिखा कर या तुझे रोक कर रक्खा नहीं जा सकता ? और स्त्री के लिए आसक्ति ? मैंने क्या सुषमा को नहीं देखा ? वह तेरी आँखों के सामने से उस तरह से रोकर चली गई, तूने निगाह फेर ली—उस कच्ची उमर की लड़की के साथ तो तू ने एक दिन भी नहीं बिताया ? अपने ऊपर किसी प्रकार का संदेह करने की गुंजाइश भी रहने दी है तू ने ? इसीलिए तो कहती हूँ कि तुझे धिक्कार है जो तू मुझे इन गंदी बातों में इस तरह खींचता है। और मुझे धिक्कार है कि तेरे पाँवों पर सिर धुन-कर भी मैं तेरा मन नहीं पाया !

ईशानी की आँखें छलछला आईं। वह कमरे से बाहर चली गई।

अखबार उठाकर शांतनु ने आँखें गड़ाकर कुछ देर पढ़ने की कोशिश

की लेकिन सब धुँधला गया। हार कर वह उठकर इस-उस कमरे से होता हुआ ईशानी के सोने के कमरे के दरवाजे पर जा खड़ा हुआ। ईशानी बिस्तर पर औंधी लेटी थी। उसका एक पैर फर्श की तरफ झूल रहा था।

शांतनु उसके सोने के कमरे में कभी नहीं गया है। आज भी नहीं गया। कमरे के बाहर बरामदे की चौकी पर वह चुपचाप बैठ गया।

नंदू उधर से जा रहा था। उसने पूछा, एक प्याला चाय और दूँ छोटे बाबू ?

शांतनु ने कहा, चाय ? हाँ, पी लूँगा।

शांतनु की आवाज सुनकर ईशानी उठ कर बाहर आ गई बोली, नंदू, चाय के साथ थोड़ा-सा गुलाब जामुन लेते आना !

शांतनु ने कहा, चाय की बात तो समझ में आती है, यह गुलाब-जामुन किस लिए ?

ईशानी ने कहा, अगर जच्चाखाने में तुम्हारी माता जी ने तुम्हें नमक नहीं खिलाया तो मैं कम से कम मिठाई ही खिलाकर देखूँ कि गले में मिठास ला सकती हूँ या नहीं।

शांतनु ने पूछा, आँखें सुर्ख क्यों हैं ? रोई थी ?

—धत्तेरे की, क्या समझ बैठा तू—ईशानी ने कहा, अरे उन दिनों की नासमझ माधू होती, तो रोकर आँसू की नदी बहाती, यह ईशानी तो कपड़े से आँखें मलकर तुझे दिखाने आई है ! मेरा नाच ही देखेगा, अभिनय नहीं ?

शांतनु ने कहा, अच्छा अच्छा ! उस समय की वह नादान माधू मिलती तो मैं क्या कहता, पता है ? कहता, अरी, ओ माधू, आँखों से नदी बहा कर भी तू इच्छित पुरुष को पकड़ कर नहीं रख सकी ? अब किसी के मन को पाना चाहने पर आँखों पर कपड़ा रगड़ने से क्या होगा ! हाँ, शायद हो कि तेरी रुलाई देखकर उसका मन पिघल जाय !

ईशानी ने कहा, मैं क्या तेरे मन को लुभाने के लिए रात-दिन मर रही हूँ ?'

—राम कहो !—शांतनु ने कहा, जिसके नाच के इशारे पर हजारों हजार खुशामद करने वाले जुटते हैं, राजा का मुकुट पैरों पर लोट पड़ता है, वह भला मेरा मन लुभाने के लिए क्यों आएगी ? और फिर मेरे ऐसे का, जिसकी कि सामाजिक, लौकिक, आर्थिक कोई वकत ही नहीं ? मैं भला तुझे इतना मामूली कैसे कह सकता हूँ ? तू तो आज के युग की हीरोइन

है। पढ़ी-लिखी सारी लड़कियाँ तुझ जैसी होना चाहती हैं। नए मन वाले छोकरे, तुझे देवी के आसन पर विठला कर पूजा करना चाहते हैं ! तू भला मेरा मन लुभाना चाहेगी ही किस लोभ से ?

ईशानो चुप हो रही। जरा ही देर में चाय के साथ बहुत-सा गुलाव-जामुन लिये नन्दू आया और सामने रख कर वापस चला गया।

शांतनु जरा भी नहीं शर्माया। एक-एक करके कई गुलावजामुन वह खा गया। ईशानी उठ कर अन्दर गई और एक ग्लास पानी उसके सामने लाकर रख दिया। उसके बाद टसर की साड़ी का आँचल गले में डाल कर घुटने टेक कर शांतनु के सामने वैठ कर वोलो, गुरुदेव, मैं भी लोभी हूँ, थोड़ा-सा प्रसाद मिलेगा ?

शांतनु ने कहा, इसीलिए तो कहता हूँ, मेम साहवों के साथ रह कर तू विलकुल ही वेकार हो गई है, तुझमें हिन्दुत्व कुछ रहा ही नहीं। सुषमा होती, तो खाने में मेरा यह परिश्रम देख कर पीछे से पंखा झलती।

शायद रामतीरथ आ रहा था। तुरन्त ही उठ कर ईशानी कमरे में चली गई। रामतीरथ अन्दर आ गया।

शांतनु ने कहा, रामतीरथ, एक ग्लास पानी और भेज दो।

रामतीरथ पानी लेकर ही आया था। ग्लास और गुलावजामुन का प्लेट हाथ में लेकर शांतनु ईशानी के कमरे में गया। वोला, यह खा ले जिससे तेरे गले में भी मिठास आ जाय।

ईशानी ने हँस कर प्लेट को हाथ में ले लिया।

उसी के वगल में वैठ कर शांतनु ने कहा, मेरी अपनी मौजूदा जिंदगी भी युवक समाज का आदर्श है, यह पता है ?

गुलावजामुन मुँह में डाल कर ईशानी वोली, क्यों ?

शांतनु हँसा। वोला, सती-साध्वी नर्तकी के आश्रय और वात्सल्य में पलना, अन्न-वस्त्र के लिए वेफिक्र, रातदिन मन के लेने-देने का विलास, सुख के सपनों से रंगीन भविष्य, किसी वात की जिम्मेदारी-मजवूरी नहीं —इससे भी वड़ी चाह और कुछ हो सकती है ! और इस पर कहीं वाँसुरी वज उठे, तो जमुना के तीरे-तीरे ज्वार आ कर सिर पीट जाता है। वेकार युवकों का आदर्श तो मैं ही हूँ।

—वस-वस।—ग्लास रखकर ईशानी ने कहा, ज्यादा वहादुरी दिखाने की जरूरत नहीं। अव जाने का दिन तै कर ले, वरना कहीं अगर लोगों में मेरी हेठी हुई, तो तू भी मुंह दिखाने काविल नहीं रहेगा।

—तेरी वजह से मैं मुँह नहीं दिखा सकूँगा ? तू मेरी कौन होती है ?

ईशानी झट उठी। सख्त मुट्ठी से शांतनु का एक गुच्छा बाल पकड़ कर हिलाने लगी। दाँत पर दाँत रख कर पीसती हुई बोली, तू मेरा सबसे बड़ा दुश्मन है !

कह कर हँसती हुई ईशानी कमरे से निकल गई।

रमेन बाबू के आग्रह की अतिशयता दिनरात उनके पीछे लगी है। दिन में कोई छः-सात बार फोन करते हैं। उस दिन दफ्तर जाते ही उन्होंने दिल्ली का ट्रंक-काल बुक किया था। वहाँ से बातें करके उन्होंने ईशानी और दल के नाम पर कई हजार का ड्राफ्ट भी मँगवा लिया। लिहाजा दिल्ली जाने की तैयारी धूम से आरम्भ हो गई।

उस दिन कानवेंट से लौटने के बाद शांतनु जरा अड़ गया। कहा, मैं नहीं जाऊँगा।

जल्दीबाजी और दौड़धूप करती हुई ईशानी यह सुन सहसा मुड़ कर खड़ी हो गई। पूछा, अब यह कैसी बात हुई ? मुझे तू अथाह में डुबाएगा ? मैं आखिर जाऊँगी किसके साथ ?

शांतनु ने दूसरी तरफ ध्यान देकर कहा, तू तो अकेली ही सौ के बराबर है ! मैं बल्कि रह जाऊँगा तो तेरे घरद्वार की रखवाली करूँगा।

ईशानी हँस कर बोली, यहाँ रह कर तू मेरी जायदाद की रखवाली करेगा और वहाँ नर्तकी के शरीर की रखवाली कौन करेगा ?

—उसकी रखवाली मैं क्यों करूँ ? मैंने तो अग्नि और नारायण को साक्षी नहीं रक्खा है !

—परदेस में यदि मेरे माथे पर तू अपनी छाया नहीं रखेगा, तो चारों ओर के जंगली व्यवसायियों के पल्ले पड़ कर मेरी क्या दुर्गति होगी, यह मालूम है ? उससे तो बल्कि तू रमेन बाबू से कह दे। मैं जीवन भर के लिए नाचना-गाना छोड़ दूँगी, पर तू नहीं जाएगा तो नहीं जाऊँगी। यह सबेरे-सबेरे तेरे दिमाग में क्या खुराफात सवार हुई, बता तो ?

ईशानी उसके सामने आकर खड़ी हो गई।

शांतनु कुछ देर चुप रहा। उसके बाद बोला, एक शर्त पर मैं चल सकता हूँ।

—शर्त ? कैसी शर्त ?

—मैं विक्तर को साथ लेता जाऊँगा।

—विक्तर को ?—ईशानी ने अचंभे के साथ कहा, सिलविया उसे

जाने क्यों देगी ? कानवेंट का कायदा-कानून तुझे मालूम नहीं है ?

शांतनु ने कहा, अपने बच्चे पर तुझे अधिकार क्यों नहीं है ?

—किसने कहा उसे अपना लड़का ? मेरी कोई स्वीकृति है क्या ? तेरे कंधे पर यह भूत किस लिए चढ़ बैठा ?

शांतनु ने कहा, भूत नहीं ! तू दिल्ली जाने पर हजार हलचल में पड़ जाएगी, दिनरात अपने दल-बल के साथ रहेगी। तेरे दिन नाचते बीतेंगे। और मैं क्या वहाँ मूँगफली चबाता हुआ रास्तों में भटकता फिरूँगा ?

ईशानी ने कहा, तेरी इस समस्या की बात का मुझे ख्याल नहीं है, यह कहना चाहता है तू ?

—तो तू इसके लिए क्या करेगी ?

—मैंने रमेन बाबू से कह दिया है, मेरे लिए शहर से बाहर कोई मकान ठीक कर देंगे।

शांतनु ने कहा, वहाँ पराए की नाईं मैं किस हक से रहूँगा ?

—रमेन बाबू के निकट तो तेरा परिचय ही दूसरा है।

—लेकिन मेरे अपने पास ?

ईशानी ने कहा, मैं तो तुझे सारे आँधी-पानी से अपने डैनों के नीचे बचाए रखती हूँ।

शांतनु ने कहा, किस नाते ?

ईशानी चुप रह गई। उसके बाद बोली, विक्तर साथ रहेगा तो तेरी उस हालत में क्या तरक्की होगी ?

—उसी में थोड़ी-सी खुशी ! संगी रहने से ही पूरी आजादी—जी चाहे जहाँ घूमो।

ईशानी ने कहा, विक्तर को लेकर तो तू इतना घूम रहा है—आज चिड़ियाखाना, तो कल डायमंड हारबर, परसों बोटानिकल गार्डन—फिर भी तेरा अरमान पूरा नहीं हुआ ? सिलविया उसे क्यों जाने देगी ?

शांतनु ने मुस्कुरा कर कहा, सिलविया से मैंने कह रक्खा है। वह राजी है।

—एँ !—ईशानी हैरान रह गई—राजी हो गई ? ओ, अब तेरी हालात अच्छी नहीं !

शांतनु ने उसके मुँह की ओर देखा। ईशानी ने बनावटी [illegible] से कहा, तू ने जरूर अपनी यह [illegible] दिखा कर हँसते हुए अनुरोध किया होगा और वह ओंधे गिर गई। है न ?

—हो सकता है।—शांतनु कौतुक की हँसी हँसा।

—समझ गई! बेचारी औरत का नसीब फूटा।

—तो फिर यह कह कि तेरा नसीब फूट चुका है।

ईशानी बोली, मेरा फूटा नसीब और क्या फूटेगा?—खैर, तेरा इरादा बड़ा अच्छा है। मैं नादान की नाईं दिल्ली शहर में नाचती फिरूँगी और इधर मेरा मीत मेरे ही आँगन से होकर औरों के घर जायगा? माधू बड़ी बेवकूफ थी, मगर मुझको तू उतनी बेवकूफ मत समझ।

बरामदे की ओर जाकर ईशानी ने धीमे से आवाज दी, तिवारी?

'जी!'—नीचे से तिवारी ने जवाब दिया।

—गाड़ी निकालो।

—जी अच्छा।

ईशानी वहाँ से शांतनु के कमरे में आई। बोली, अपने कैमरे की बिक्री के रुपए से मुझे जरा पाँच सौ रुपए उधार दे तो?

शांतनु ने लाकर रुपए उसके हाथ में दिए! सारा कुछ ही एक तमाशा। फिर भी शांतनु ने मजाक से कहा, इसके सौदे में तो काफी रुपए उधार ले लिये हैं तू ने। अब तो अपने को तुझे बंधक रखना होगा!

—बंधक ही तो हूँ!—कहकर ईशानी तेजी से चली गई।

कैफियत नहीं पूछी जा सकती, कहीं ईशानी की आजादी पर चोट न
ाए। पुरुष स्वयं सदा अविश्वासी होते हैं, इसीलिए औरतों पर उन्हें
श्वास कम होता है। पुरुष हरम बनवाते हैं, पुरुष बुरका पहनाते हैं,
र महलों में कैद करके कविता में कहते हैं—असूर्यम्पश्या! उसे सूरज
नहीं देखता। धनी लोग औरतों के साथ दरवान को भेजते हैं और
ला देने के लिए कहते हैं, यह औरतों का सम्मान है। राजे-रजवाड़े
ी-घिराई मोरपंखी पालकी पर राजघराने की स्त्रियों को भेजते हैं।
न नारियाँ पुरुषों के कपट को समझ नहीं सकतीं। पूजा-पर्व में, कोई
लगने पर गंगा के घाट में पुरुष स्वयंसेवक स्त्रियों पर पहरा देते
ड़ी खुशी से, बड़ी मीठी उमंग के साथ। उन्हें डर होता है, स्त्रियाँ
ो न जायँ। बहुतेरी स्त्रियाँ उतनी-सी आजादी पाकर अपने को
ानती हैं, ईर्ष्यालु पहरेदार इस बात को जरा भी नहीं सोचते।
की कहानी में भी वही। स्त्रियों को पुरुषों से मिला सकें, तभी
श होकर पैसा देते हैं। लेकिन स्त्री को अकेली छोड़ देने से उनके

जी को बड़ी चोट लगती है।

मनोविज्ञान संबंधी इन समस्यायों की बात शांतनु समझता है। इसलिए वह कोई सवाल नहीं उठाता, कहीं ईशानी को ठेस लगे। खींचातानी भी वह नहीं करना चाहता, वह सिर्फ अपने को प्रकट करता है—उससे यदि कोई लड़की अनुप्राणित हो, तो उसे कोई आपत्ति नहीं है। वह सब कामिनी हैं, इसलिए संयम उन्हें प्रिय है—विपरीत रस नहीं पाने से स्त्रियां दुःख का अनुभव करती रहती हैं। पुरुषों में पाशविक चेतना स्वभावतया उग्र हुआ करती है, इसीलिए बहुत बार विवेकहीन असंयम से स्त्रियों को वे मारते हैं और खुद भी मरते हैं। नदी की उफान अगर तट के बंधन से छलकती है, तो वह सत्यानाशी होती है। जवानी की उच्छृंखलता में न तो श्री होती है, न सौंदर्य।

ईशानी इसी तरह से कभी-कभी निकल कर चली जाती है। उसके घरद्वार की हालत बिखरी-बिखरी-सी पड़ी रहती है। मेज पर गहने पड़े हुए हैं, रुपए-पैसे वाली दराज खिची-खुली पड़ी है, रेशमी साड़ी और ब्लाउज फर्श पर छितराए हुए हैं—उसके आँचल के कोने में गाँठ पड़ी है। उपकरणों का कोई ध्यान नहीं, आडंबरों की ओर जतन नहीं। ईशानी का शरीर उसकी प्रतिभा-सत्ता का एक आवरण मात्र है। शरीर की आड़ में ऊपर की ओर खिला उसका प्राण-पद्म—इसी पद्म के चारों ओर शांतनु के मन का भौंरा रातदिन गुनगुन करता रहता है। उसी पद्मगंधा के कमरे में आकर शांतनु चुपचाप बैठ गया और वह मायावी भौंरा शांतनु के कलेजे के गुहालोक से निकल कर सारे कमरे में गुनगुनाता फिरने लगा।

उधर कानवेंट के मैदान में घुसकर ईशानी की गाड़ी सीधे सिलविया के घर के सामने खड़ी हुई। पहचानी हुई गाड़ी का भोंपू सुनकर सिलविया हँसती हुई ही दौड़कर बाहर आई। गुड मार्निंग माधू।

ईशानी ने हाथ मिलाकर कहा, दिल्ली जाना तै हो गया।

सिलविया ने कहा, सो तो मालूम है। तुम्हारा प्रेमी आकर बता गया है।

—मेरा प्रेमी! यह कैसे जाना सिलविया?

सिलविया के होठों पर मीठी मुसकान थिरक गई। बोली, स्त्रियों के जीवन के पहले प्रेमी को छिपा रखना बड़ा कठिन है माधू!

ईशानी ने कहा, शांतनु ने शायद तुमसे कुछ कहा है?

नानसेंस !—सिलविया ने जवाब दिया—तुम्हारा प्रेमी बड़ा लजीला है, बहुत ही कम बोलता है। ऐसा भला लड़का मैंने नहीं देखा।

—लेकिन अंदर-अंदर बड़ा शैतान है, जानती हो। मेरी जरा भी परवाह नहीं करता। पड़ता कहीं तुम्हारे पल्ले तो सबक सीख जाता।

सिलविया बोली, खूब ! और मैं जो सदा रो-रो कर मरती।

ईशानी ने अवाक् होकर कहा, क्यों ?

सिलविया बोली, शांतनु तुम्हारे ही लिए पैदा हुआ था। तुम्हें छोड़कर और किसी स्त्री से वह मुहब्बत नहीं कर सकेगा।

—तुमने कैसे जाना ?

—उस दिन तुम्हारा प्रेमी लाइब्रेरी में बैठकर विक्तर से बातें कर रहा था। मैं मुस्कुराती हुई जाकर विक्तर के पास खड़ी हुई। मैंने पूछा, मिस्टर चौधरी, ह्वाट इज दैट थिंग, ह्विच यू आर रियली फोंड ऑफ ? यह सुनकर शांतनु ने मेरी तरफ देखा। बोला, येस यू सी, दि ग्रेट माइंड आलवेज़ इन्सपायर मी। मैंने कहा, बट यू कैननॉट आलवेज फाइंड इट एराउंड ! डू यू ? विक्तर के सामने बैठकर ही शांतनु ने कहा, सर्टेनली येस्, इट इज देअर ह्वेयर आइ स्टे ऑव फॉर दि प्रेजेंट। सुनकर मैं मुग्ध हो गई थी माधू।

ईशानी ने अपनी छलकती आँखों को सम्हाल लिया। मुँह से बोली, लेकिन मेरी ओर कितनी अड़चन और असुविधा है, यह तो तुम जानती हो सिलविया !

सिलविया बोली, माफ करो माधू, वह तुम्हारे हिंदू मन का संस्कार है। इसीलिए मैं उसे अश्रद्धा करती हूँ, ऐसा नहीं, उसे मैं समझ नहीं सकती, इसीलिए दुःख होता है। मेरा क्या विश्वास है, जानती हो ? शांतनु भी तुम्हारे उस संस्कार को श्रद्धा करता है। उसका मन बड़ा भला है।

—लेकिन मैं अगर इस संस्कार को तोड़ना चाहूँ, शांतनु की सहायता नहीं पाऊँगी ?

सिलविया बोली, यह बात मैं कैसे कहूँ माधू ? लेकिन यह रक्षणशील संस्कार तुम्हारे प्रेमी के भी हो सकता है। वह स्वयं विद्वान और पंडित है।

ईशानी ने पूछा, तुम होती तो क्या करती सिलविया ?

सिलविया बड़ी ही मीठी हँसी हँसी। बोली, मैं इस तरह का कोई मनोभाव लेकर तैयार नहीं हुई हूँ माधू ! मैं मिशनरी हूँ।

सिलविया का हाथ भरपूर अपने में खींचकर ईशानी ने कहा, दस वर्षों तक मेरे जीवन की समस्या में तुमने और तुम्हारी माँ ने जो मदद की, उस समस्या से बिलकुल मुक्ति देने की मजाल किसी भी प्रेमी में नहीं थी।—सुनो, विक्तर को हम अगर अपने साथ ले जायें, तुम इजाजत दोगी ?

सिलविया ने कहा, जो लड़का तुम्हें माँ के रूप में नहीं पहचानता, उसे तुम साथ कैसे ले जाओगी ?

ईशानी ने कहा, शांतनु उसे छोड़कर जाना नहीं चाहता। क्या करूँ, कहो तो ?

सिलविया ने कहा, शांतनु से उसकी खूब पटती है। उसके साथ वह जा सकता है। लेकिन विक्तर को छोड़कर मैं कैसे रहूँगी, यह तो नहीं बताया ?

ईशानी ने हँसकर कहा, इट्स ए स्ट्रेंज ऐटेचमेंट फॉर ए मिशनरी, इनडीड !

शांतनु के साथ जायगा, यह सुनकर विक्तर उत्साह के साथ तैयार हो गया। मानचित्र देखकर उसने शांतनु से विदेश की कहानी सुनी है। शांतनु ने उसे आदि से अंत तक भारत का इतिहास बताया है। एक के बाद दूसरी सभ्यता की कहानी दिल्ली पर से गुज़रती रही है। वह सब कहानियाँ सुनकर बालक मुग्ध हुआ है। उसे मानो अनाविष्कृत भारत पुकार रहा हो।

सिलविया ने अधिकारियों की अनुमति माँग ली। उसके बाद जरूरत के सारे सामान के साथ उसने विक्तर को तैयार कर दिया। गरमी की छुट्टी आ रही थी। लेकिन दिल्ली में शायद यहाँ से ज्यादा गरमी पड़ती है। सिलविया ने यह भी कह दिया, विक्तर को वहाँ अगर ज्यादा दिन अच्छा न लगे, तो मुझे ट्रंक काल करके उसे हवाई जहाज से भेज देना। मैं उसे दमदम से ले आऊँगी।

—अरे हाँ-हाँ, मिशनरी महिला जी, मैं जानती हूँ, वह तो शायद रह भी सकेगा, मगर तुम उसे ज्यादा दिन छोड़कर नहीं रह सकती।

सिलविया ने अपनी छलकती आँखों को छिपाकर कहा, तुम जैसी संगदिल औरत कोई नहीं है। हर स्त्री के मन में माँ जगी बैठी रहती है कि लड़का कब गोद में लौट आएगा !

ईशानी ने एक बार उसकी ओर ताका। बोली, तुम्हारी गोद भरा

भरी रहे सिलविया, मैं यही चाहती हूँ। चलो विक्तर।

विक्तर बड़ी खुशी से गाड़ी पर सवार हुआ। बोला, मम्मी, मैं मिस्टर चौधरी के पास जा रहा हूँ न ? मैं लेकिन रेलगाड़ी पर उनके पास ही बैठूंगा। हाँ ?

अनमनी-सी होकर ईशानी ने कहा, बेशक। उन्होंने ही तुमको लिवाने के लिए भेजा है।

स्नेह से गीली हो आई आँखों के साथ सिलविया ने दूर से उन लोगों की ओर हाथ उठाया।

आठ

ईशानी को निर्दयी कहें तो युक्ति के लिहाज से गलत होगा। अपना कसूर कबूल करने को वह तैयार रहती है। बशर्ते कि कोई युक्ति से उसे समझाए।

ईशानी से पूछते ही वह फौरन जवाब देगी, विक्तर शांतनु को साथ देने के लिए जा रहा है, उसके मन की किसी जरूरत से नहीं। वात्सल्य भी स्नेह जैसा ही आपेक्षिक होता है, क्योंकि वह भी सन्निधि और संयोग की अपेक्षा रखता है। माँ और बच्चा आजन्म साथ रहते हैं, इससे वात्सल्य उत्पन्न होता है। लेकिन जहाँ इसका उलटा होता है? तुरंत पैदा हुए बच्चे को दूर हटा ले जाओ, कभी सामने न लाओ, तो देखोगे कि माँ कुछ दिन तक उदास तो रहती है, पर बाद में वात्सल्य की कोई चेतना नहीं होती। रोज-रोज का सान्निध्य ही स्नेह-आसक्ति की मूल बात है। बहुतेरी माताएँ अपनी संतान को सामाजिक स्वीकृति देने के डर से उसे छोड़कर भाग जाती हैं। वे माताएँ पिशाचिनी नहीं होतीं, लेकिन समाज द्वारा सताए जाने के डर से वे घबरा कर अंधी हो जाती हैं। उसके बाद धीरे-धीरे मन पर विस्मृति का प्रलेप पड़ता रहता है। विक्तर की माँ थी माधू, मगर वह माधू मर गई। जच्चाखाने में माधू हफ्ते भर थी, लेकिन बच्चा जनने के बाद से विक्तर का उसे कोई पता नहीं रहा। सात साल के बाद उसने उसे पहली बार कानवेंट में देखा। लेकिन वात्सल्य की किसी चेतना ने उसके मन को स्पर्श नहीं किया। वह ईशानी का बेटा नहीं, सिलविया का पालित पुत्र है। माधू मर गई, ईशानी बिलकुल दूसरी दुनिया में खो गई।

ट्रेन रात के अँधेरे में बड़ी तेजी से दौड़ रही थी। डोल रही थी गाड़ी। विक्तर अपनी आदत के मुताबिक समय पर बर्दवान स्टेशन आने के पहले ही सो गया। उसने शांतनु से बहुत-बहुत बातें कीं और उन बातों की चौहद्दी से उसने ईशानी को अलग ही रखा। शांतनु उसका अपना

है, क्योंकि दोनों ने मन की दुनिया में एक दूसरे को जाना है, एक ने दूसरे को रसबोध में पाया है। लेकिन ईशानी उसकी अपनी नहीं है। मम्मी कहकर पुकारना एक रिवाज है, वह सिखाई हुई बोली है, सामाजिक भव्यता है—लेकिन उसमें जननी कहीं नहीं है! शिशु और बालक के सबसे नजदीक जो आदमी रहता है, वही उसका एकांत अपना होता है। दूसरा कोई नहीं। आनंद और आहार के लाभ का क्षेत्र अधिक आकर्षक होता है, तो कोई भी शिशु पिता-माता को सहज ही छोड़कर चला जाता है, जरा भी ख्याल नहीं करता। खतरे से खाली आश्रय और जरूरत के मुताबिक भोजन पाता है, इसीलिए बच्चों के लिए माता-पिता की कीमत होती है, नहीं तो सब बेकार। ईशानी के लिए विक्तर को जरा भी उत्सुकता नहीं।

दूसरी ओर का भी यही हाल। विक्तर के बारे में ईशानी की वह उत्सुकता नहीं, जो माता के स्नेह की होती है। दोनों की रुचि, शिक्षा, संस्कार—सब जुदा। दोनों दो दुनिया के—कहीं भी आपस में आत्मिक संबंध नहीं। इस लड़के को कभी उसने गर्भ में धारण किया था, यह बात उसे चौंकाती है। इसे सोचते ही उसका बदन सिहर-सिहर उठता है। उस दिन का वह नवजात शिशु अपनी दुनिया से अनभिज्ञ माँ के साथ कहाँ खो गया—ईशानी डोलती हुई गाड़ी पर बैठी तंद्रा-भरी आँखों अपने उसी सुदूर पथ की ओर ताकती रही। माधू के साथ सभी खो गए।

शांतनु ने उस लड़के का बिस्तर लगा दिया, खाना लाकर हँसते हुए उसके सामने रक्खा, सिलिंग फैन को उसके सिर की तरफ घुमा दिया। शांतनु विक्तर को पहचानता है, ईशानी शांतनु को पहचानती है।

आसनसोल पार करके गाड़ी अंधकार से अंधकार में दौड़ती जा रही थी। इस डब्बे में केवल वही तीनों थे, और कोई नहीं। विक्तर बड़ी खुशी से अपर वर्थ पर सोया और उसी वर्थ के नीचे वे दोनों पास-पास बैठे थे। नंदू साथ आया है, पर वह दूसरे डब्बे में था। घर में रामतीरथ और तिवारी रह गए। मोटर ताले में बंद पड़ी रही। ईशानी की नजरों में उसकी अपनी गिरस्ती ख्याल का एक खेल है। उसके चूँकि कोई बंधन नहीं, इसलिए उसका मूल्य स्वीकृत है। ईशानी के मन के केंद्रबिंदु में विषय की निरासक्ति बैठी है। बहुत-सी चीजों को लेकर वह बहुत बार उलट-पुलट करती है, उसके बाद उन्हें सहज ही हटा देती है।

शांतनु की आँखों में था अचरज, मन में थी अनुशोचना। माँ और

वच्चे के भीतर का यह अजीव संवंध उसके लिए एक नया आविष्कार था। इतने दिनों तक उसके हिसावी मन ने एक अनुमान कर रक्खा था, लेकिन वह गलत सावित हुआ। वार-वार उसने दोनों के चेहरे पर गौर किया और वार-वार ही उसे निराशा ने घेर लिया। दोनों के वीच सात समंदर की दूरी। ईशानी में मातृत्व का कोई उद्‌वोधन नहीं हुआ।

एक समय ईशानी ने धीमे से पूछा, नींद नहीं लगी है ?

शांतनु ने कहा, नींद ! कहाँ ? कितनी रात हुई ?

ईशानी ने मुस्कुराकर कलाई से अपनी घड़ी खोली, उसके वाद शांतनु के वाएँ हाथ को खींचकर वह घड़ी पहना दी। शांतनु ने कहा, इसका मतलव ?

ईशानी वोली, मैं अनंत काल में वास करती हूँ—समय के लिए तू अपना दिमाग खपा।

घड़ी की ओर देखने से पता चला, रात का एक वज गया। इसी वक्त कोई स्टेशन पार हो गया। गाड़ी पहाड़ों के आस-पास से गुजर रही थी। वड़ा अच्छा लग रहा था।

शांतनु ने कहा, तुझसे अगर मेरा कोई सामाजिक संपर्क होता, तो यह सफर इतना सुहाना नहीं लगता। मगर तू ने यह क्या किया, वता तो ?

ईशानी ने निंदाई आँखों से उसकी ओर ताका। शांतनु ने कहा, वात यहाँ तक आएगी, यह मैं हरगिज नहीं सोच पाया था।

वात वहुत अस्पष्ट नहीं थी, फिर भी ईशानी ने धीमे से कहा, क्यों ? क्या कह रहा है ?

शांतनु ने दवे गले से कहा, विक्तर को साथ लाकर क्या मैंने सचमुच ही गलती की है ?

—क्यों, गलती क्यों ? उसे तो तू अपने लिए ले आया है।

—लेकिन लड़के की ओर तेरा मन क्या विलकुल ही आगे नहीं आ सकता है ?

मुस्कुरा कर ईशानी वोली, मैं तो तेरे साथ ही हूँ !

शांतनु ने मुँह को गंभीर करके कहा, तू क्या सच ही उसकी माँ नहीं है ?

ईशानी हँस उठी। वोली, यह आधी रात को तो तू वड़े मजे का तर्क कहाँ से ले आया ?

शांतनु चुप हो गया। कुछ देर तक दोनों में कोई वात नहीं

खिड़की के बाहर घने अँधेरे में पहाड़ तले से पेड़-पौधे, जंगल-झाड़ियाँ पीछे की ओर खिसकती जा रही थीं। उस ओर देखकर ईशानी हठात् जरा उत्तेजित होकर बोल उठी, विक्तर एक दिन मुझे माँ कहकर रोते हुए जकड़ लेगा और मैं बेटा कहकर उसे गोदी में उठाकर आँसू बहाऊँगी, यही नाटकीय तमाशा खड़े होकर देखने के लिए ही क्या तू उसे साथ ले आया है ? इस आसान परिशिष्ट के बाहर भी जीवन बड़ा पेचीदा है, शांतनु।

शांतनु ने कहा, मुझको तू माफ कर ईशानी !

ईशानी ने कहा, तू ठीक से जानना चाहता तो मैं पहले ही कहती। मैं जानती हूँ कि मुझे अनुभूति कुछ नहीं है, इसीलिए विक्तर पर जब कोई चर्चा उठती है, तो मुझे नई लगती है। दो महीने, छै महीने पर शायद उसे मैं पाँच मिनट के लिए देख पाती हूँ, बस। पहले सात साल तो मैंने उसे आँखों देखा ही नहीं। मैं अपनी जिंदगी की बहुरंगी लड़ाइयाँ लड़ने में मशगूल थी। सिलविया मेरे बुरे दिनों की मित्र है। इसीलिए कभी-कभी कनवेंट जाया करती हूँ, वरना वहाँ जाने की और कोई वजह नहीं। दो साल पहले सिलविया ने प्रस्ताव किया, मैं अगर कुछ ज्यादा रुपए दूँ, तो विक्तर की उन्नति और भविष्य के लिए अच्छा काम हो सकता है। उसे पेट में धारण किया था कभी, उस कर्ज को चुकाने की बात तो है।

शांतनु ने कहा, वह अगर सुन ले कि तू उसकी माँ है ?

ईशानी बोली, सुना कर भी तो देख, हँस उठेगा, लेकिन यह सब सुनने से नतीजा क्या होगा, जानता है ? उसके मन में एक उलझन पैदा होगी, जो उसके लिए नुकसानदेह होगी।

—सच-सच बता तो, उसकी शकल क्या तुझे अच्छी नहीं लगती ?

—बहुत ही अच्छी लगती है—ईशानी ने कहा, लेकिन वह तो महज अच्छा लगना ही है, अच्छी है, इसलिए अच्छी लगती है ! वह यदि बुरा होता, तो क्या कर सकती थी ? बहुतेरे लड़के बुरे हैं, वह भी उन्हीं में से एक होता !

—इतनी उदासीन है तू ? माँ भी ऐसी संगदिल होती है ?

ईशानी हँस पड़ी। बोली, रात बहुत हो चुकी। सो जा। फिर भी एक बात कहे रखती हूँ, तेरा बुद्धि-विचार निर्विकार हो, तू चलते संस्कारों के बाहर निकल आ। यह समझना सीख कि कौए के घोंसले में कोयल

पला है—माँ और बेटे में कोई सम्पर्क नहीं हुआ।

शांतनु ने उत्तेजित होकर कहा, लेकिन इसका भविष्य ?

—आसमान में उड़ने वाली चिड़ियों का भविष्य मैं या तू कितना जान सकेंगे।

चिंतित-सा होकर शांतनु बोला, यदि ऐसा हो तो दिल्ली पहुँचने के दो-चार दिन बाद ही मैं विक्तर को वापस भेज दूँगा !

—वह तेरी मर्जी।—कहकर ईशानी चुप हो गई।

सुबह विक्तर की नींद खुली। उसने इधर-उधर देखा। उसके बाद निहुर कर देखा, नीचे के दो बर्थों पर ईशानी और शांतनु बेखबर सो रहे हैं। रेलगाड़ी पर वह बहुत बार चढ़ा है, 'एक्सकर्शन' में टोली के साथ यहाँ-वहाँ गया है, लेकिन इस तरह से उसे रात अकेले नहीं बितानी पड़ी है। ज्यादातर तो सिलविया उसके साथ रहती ! और लड़के तो सिलविया को 'मैडम' कहते, वह कहता मम्मी या सिलविया ! ऐसा वह कब से कहा करता है, उसे पता नहीं। सोचने में बड़ा मजा आता है कि सिलविया बड़ी मायूस होगी। उसके लिए सिलविया अलग से छिपाकर बिस्कुट रखा करती है, जाने वह बिस्कुट अब किसे मिलेगा ! जल्दी नहीं लौटने से सिलविया बहुत बिगड़ेगी। आते वक्त कानों-कान उसने जो सिखाया था, वह मिस्टर चौधरी को कहना ही पड़ेगा। अब तक उसके संगी-साथी वहाँ प्रार्थना में बैठ चुके होंगे। हैरी, रोज, ईसाबेला, फिलिप, कॉक्स— सभी।

विक्तर नीचे उतरा। टायलेट केस खोलकर तौलिया, साबुन, मंजन और हाफपैंट तथा कमीज निकाल कर बाथरूम में गया। उसे सिलविया ने जो बता दिया था, उसके एक-एक अक्षर का पालन करना होगा।

आधे घंटे के लगभग में वह लौटा। एकबारगी नहा करके ही निकला। गाड़ी खूब तेज भाग रही थी। बाहर सवेरे का प्रकाश दिखाई दे रहा था। सामने नजर पड़ी तो देखा, ईशानी बाहर की ओर ताकती हुई एक कोने में बैठी है।

दोनों की आँखें मिलते ही विक्तर बोला, 'ड्-मार्निंग मम्मी।

—'ड्-मार्निंग विक्तर।

ईशानी उठकर खड़ी हो गई। शांतनु बेखबर सो रहा था। जरा गला धीमा करके वह बोली, इतने में नहाना भी हो गया ? खूब ! सवेरे ही

कसरत नहीं करते हो ?

विक्तर ने कहा, मैडम ने कहा है, ग्यारह साल का हो जाऊँगा, तब कसरत करना शुरू करूँगा।

ईशानी ने कहा, हाँ, तुम्हारी उम्र तो अभी दस भी पूरी नहीं हुई।

विक्तर ने ईशानी के मुँह की तरफ एक बार देखा। उसके बाद बोला, स्ट्रेंज ! तु....आप मेरी उम्र जानती हैं ?

—हाँ—ईशानी ने दूसरी ओर मुँह फेर करके कहा, सिलविया ने बताया है।

विक्तर ने अपने मन से स्वतंत्र रूप से अपने टिफिन-कैरियर को खोला। एक प्लेट निकाला, फ्लैक्स से गरम दूध, उबला अंडा, केक, मक्खन-टोस्ट और चीनी। अपने ही हाथों उसने अपना जलपान ठीक कर लिया। कलाई की घड़ी की तरफ देखकर बोला, साढ़े छः बज चले ! सोचा था, मिस्टर चौधरी के साथ खाऊँगा, मगर वह देरी से जगते हैं।

टूटी-फूटी हिंदी। सहेज-सुलझा कर नहीं बोल सकता। लेकिन आवाज मीठी है, इसलिए सुनने में अच्छी लगती है। ईशानी के साथ खाने के बहुत ज्यादा सामान थे। उसके मन में यह भी था कि विक्तर और शांतनु को वह अपने ही हाथों परोस कर देगी। लेकिन वह सिलविया का दिया हुआ है, वह और ही दुनिया का है। उसमें सिलविया के मातृ-हृदय का स्वाद मिला हुआ है, उसका स्वाद ही और है ! समझ में आया, कल शाम सिलविया जब विदाई देने के लिए स्टेशन आई थी, तो खाने की ये चीजें उसे छिपा कर दे गई थी।

ईशानी ने विक्तर को इतने पास से कभी नहीं देखा। देखती रही हैं आँखों से, मन से नहीं। उसका ढंग-ढर्रा, बोल-चाल, सब कुछ ही दूसरे समाज का है, ईशानी से कहीं भी मेल नहीं है। स्वभाव में मिठास है, गीलापन नहीं है। निगाहें, हाथ-पाँव हिलाना, बैठने का ढंग, यहाँ तक कि प्रसाधन और जलपान ठीक-ठाक करने में भी साहबी तौर-तरीका, कहीं भी जड़ता नहीं नजर आती।

ईशानी हँसी। बोली, विक्तर, तुम्हें मिस्टर चौधरी को खिलाने की बात याद आई थी, मगर मुझे तो तुमने कुछ आफर नहीं किया ?

विक्तर ने मुँह उठाया और अपने दोनों लाल होंठों को मिलाकर बोला, सॉरी, याद नहीं आया !

ईशानी और कुछ नहीं बोली। उसने धीरे से शांतनु के बदन में एक

हलकी-सी ठोकर लगाई और बाथरूम में चली गई।

गाड़ी जब मुगलसराय पहुँची, ईशानी नहाकर निकल आई थी। नन्दू डब्बे के सामने आकर खड़ा हुआ। ईशानी ने कहा, नन्दू अन्दर आकर बिस्तरों को सम्हाल दे।

अब शांतनु की नींद खुली। आँख-मुँह धोकर उसके निकलते ही विक्तर उसका हाथ पकड़ कर प्लैटफारम पर उतरा। उसे शांतनु को बहुत करीब पाने की जरूरत थी।

मुगलसराय नाम क्यों पड़ा, यह भी तो जानना जरूरी था! ग्रैंडट्रंक रोड यहाँ तक आयी है या नहीं, काशी यहाँ से किधर है, जमुना नदी कब मिलेगी, इलाहाबाद को प्रयाग क्यों कहते हैं—ऐसे बहुत-से सवाल।

हरी झंडी दिखाई जाने लगी, यह देखकर वे लोग फिर डब्बे में आ गए। विक्तर ने शांतनु को जरा छेंक कर अपने पास बिठाया। गरदन फिरा कर सिलविया की मित्र मम्मी को उसने एक बार देख लिया।

नन्हीं-सी रंगीन चिड़िया अपनी सुन्दरता से सबको आकर्षित करती है, इसमें कोई खास बात नहीं है; लेकिन कोई आदमी अगर उस चिड़िया का प्रिय होता है, तभी वास्तविक कौतूहल होता है। बच्चे सभी सबके प्रिय होते हैं, लेकिन जो व्यक्ति बच्चे का प्रिय होता है, वह भाग्यवान है — इसमें क्या संदेह?

मुस्कुराकर उधर से ईशानी ने कहा, मुझे लेकिन ईर्ष्या हो रही है!

गरदन घुमाकर शांतनु ने कहा, बस। इतना ही? अरे, चाय दे गया है, यह तो बताया ही नहीं तुमने।

विक्तर को छोड़कर शांतनु इस बेंच पर आ बैठा। काफी गर्द आ रही थी। ईशानी ने खिड़की के काँच को उठा दिया। ये लोग चाय जल-पान लेकर बैठे। विक्तर ने स्कूल-बैग से दो-एक किताबें निकालीं और उन्हें पढ़ने लगा। बाहर काफी आकर्षण थे—नई दुनिया की अनोखी जीवन-यात्रा। लेकिन सिलविया की शांत, स्नेहभरी आँखों का स्थिर निर्देश विक्तर भूला नहीं। मौका मिलने पर कुछ देर किताब लिए बैठे बिना उसका नहीं चलता।

मजाक में शांतनु को ईशानी ने चिकोटी काटी—तुझे हरा दिया।

इशारा साफ था। शांतनु ने कहा, धीरे-धीरे ऐसा भी हो सकता है कि मैं ही तुझे हरा दूँ!

प्याला रखकर चौंकती हुई ईशानी ने उसकी ओर देखा, मतलब?

चाय का घूंट लेकर शांतनु ने कहा, भविष्य की बात क्या कोई बता सकता है ?

—ओह ! तुझे शायद कुछ अच्छा नहीं लग रहा है ?

हँसकर शांतनु बोला, अच्छा लगता है, इसीलिए शायद डर लगता है !

ईशानी स्थिर आँखों से उसकी ओर ताकती रही, किन्तु कुछ कह नहीं सकी। शांतनु ने कहा, दुनिया में इस अच्छा लगने का अंतिम नतीजा सदा अस्पष्ट रह जाता है, यह क्या तू नहीं समझती ?

ईशानी ने पूछा, तेरे काँटा कहाँ चुभ रहा है ?

—काँटों की सेज पर सोकर इसका क्या जवाब दूँ ?—शांतनु हँस उठा।

गाड़ी मिर्जापुर से आगे इलाहाबाद की ओर बढ़ रही थी। ईशानी एक बार उठी। चाय के प्याले वगैरह उतार कर एक ओर रख दिए। देखा, विक्तर उधर एक किताब लिए इधर को पीठ किए बैठा है। ईशानी आगे बढ़ी। बेंत की टोकरी से केले और अंगूर निकाल कर एक प्लेट में सजाया। उसके बाद शांतनु के आश्चर्य भरे नेत्रों के सामने वह कुछ फल एक प्लेट में रखकर विक्तर के सामने जाकर बोली, तुम्हें केला और अंगूर पसन्द है, सिलविया ने मुझे बताया था। आओ !

विक्तर ने मुड़कर देखा और शर्माता हुआ-सा मुस्कुराया। बोला, थैंक यू मम्मी ! अभी नहीं, मैं खुद माँग लूँगा।

ईशानी को जरा ठेस लगी, कोई शक नहीं। विक्तर ने सिर झुकाकर फिर किताब में आँखें गड़ा लीं, ईशानी एक बार ठिठक कर खड़ी हुई, फिर बोली, तुम्हें थोड़ी-सी चाय दूँ विक्तर ?

विक्तर को फिर मुँह घुमाना पड़ा। बोला, जी—

खुशी हुई। ईशानी ने फ्लास्क के ग्लास में थोड़ी-सी चाय लाकर विक्तर को दी। उसके बाद वह अपनी जगह पर जाकर बैठी। दो मिनट के बाद उसने महसूस किया कि विक्तर ने चाय के ग्लास को हटा कर रख दिया है, चाय पी नहीं।

शांतनु अब तक सारा कुछ देख रहा था। लेकिन यह इनकार जरा उसे भी चुभा। अपनी सीट छोड़कर वह विक्तर के पास जाकर बैठ गया। विक्तर ने झट किताब रख दी और खुश होकर उससे बात करने लगा। शांतनु ने पूछा, तुम्हारी चाय तो धरी ही रह गई !

विक्तर ने कहा, ठंडी है। लाइफलेस !

हिन्दी में जिसे कहते हैं निर्जीव। शांतनु बिलकुल चुप हो गया।

गाड़ी इलाहाबाद स्टेशन में खड़ी हुई। जरा ही देर में नन्दू डब्बे में आया। साथ में भाड़ूदार भी आया। डब्बे को बुहार कर कुछ पैसे लेकर चला गया। यहाँ भी कोई दूसरा मुसाफिर डब्बे में नहीं आया। डब्बे में उन तीनों ने मिलकर छोटी-सी अपनी दुनिया बसा ली हो जैसे।

शांतनु को लेकर विक्तर प्लैटफारम पर उतर गया था। नाबालिग लड़के के निरासक्त मनोभाव का ईशानी आनन्द ले रही थी, इसमें क्या सन्देह ! सिलविया के साथ उसे विक्तर ने कई बार देखा है—इतनी ही उसकी जान-पहचान थी, इससे जरा भी ज्यादा नहीं। भलमनसाहत के नाते ईशानी ने दो-एक बार विक्तर की ठोड़ी पकड़ कर हिलाई—उसने भी इससे ज्यादा कोई कोशिश नहीं की और विक्तर को भी उसके पास आने का मौका नहीं मिला !

शांतनु सवाल उठाएगा, जो भी हो चाहे, तू आखिर उसकी माँ है। तेरे लिए चोट, उपेक्षा, असम्मान, जो भी चाहे आए, तू उसकी माँ है। लेकिन ईशानी जानती है, अकस्मात् वह जननी हो गई, माँ वह आज तक कभी भी नहीं हो पाई ! माँ और बेटे के सम्पर्क की पंडित लोग प्रशस्ति करते आए हैं। माँ जगज्जनी का अंश है, यह बात सन्तानों के कानों में सदा से गूँजती आई है ! स्त्रियों के कानों में कहा गया है, नारी की सबसे बड़ी अभिव्यक्ति उसके मातृत्व में है ! कौन नहीं जानता, यह समाज की प्रतिष्ठा की शुरुआत की बुनियाद है !

दूसरी ओर निगाह मत डालो, पुरुष के आत्मज का पालन करो—नारियों के लिए यह कठिन निर्देश है। सन्तानों के लिए निर्देश है, घर तोड़ कर मत भागो, घर में वात्सल्य का शहद जमा है। इसके आकर्षण को मानने पर ही समाज है, नहीं तो दुर्गत। पुरुष के सम्पत्तिवाद से नारी और उसकी सन्तति बँधी है। परम्परा से नारी और सन्तान पुरुष की सम्पदा पर ही पहरा देने को मजबूर हुई है। जहाँ इसका व्यतिक्रम हुआ, वहीं हुआ समाज-विप्लव, सब कुछ इखरा-बिखरा। इसी डर से सब प्रकार की सम्पदा के प्रति सन्तान को आकृष्ट करने के लिए पुरुष-प्रधान समाज ने सम्पदा की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी की कल्पना की है। घर में बहू को लाकर अभिभावक कहते हैं, घर में लक्ष्मी को ले आया हूँ। इसकी ओर सभी आकृष्ट होओ !

ईशानी के जीवन में भो इस सर्वनाशी विप्लव का बीज अपना भय नक काम करता जा रहा है। वह घर से अलग है—उसके प्राणों में बंध की सिहरन कहीं नहीं है। उसका वास जो है, वह घर नहीं, आश्रय है वह अतिथिशाला है। कभी भी उसे छोड़ जाना होगा। उसमें प्राण नहं है, मात्र देह है। विलास है, ऐश्वर्य नहीं है। दान है, दया है, दाक्षिण्य है—लेकिन नेह की कहीं कोई वर्षा नहीं है। उसके मन्दिर में संध्या-आरती वे करुण दीप के साथ शंख की आवाज नहीं उठती, उसमें साझे की पूजा र्क चहल-पहल मिलती है।

इसके लिए ईशानी के मन में कोई वेदना है? कहाँ? नहीं तो! विक्तर ने क्या जान-बूझकर अपनी जननी को अपने आचरण से चोट पहुँचाई है? कतई नहीं! विक्तर के लिए वह एक स्त्री भर है, सिलविया की बहुत-सी मित्रों में से एक—इससे ज्यादा कुछ नहीं। ईशानी की अन्दर की आकुल-व्याकुल जननी की बत्तीस नाड़ियों के हर पेंच में भूखे वात्सल्य की वेदना नित्य एकत्र होती रही हो—यह बात सही नहीं है; सभी आश्रयों से वंचित माधू जिंदा होती, तो यह बात उठ सकती थी; लेकिन विक्तर की हर तरह की उपेक्षा और लापरवाही देख कर भीतर-भीतर ईशानी के कौतुक और हँसी का अन्त नहीं। उसे जरा भी चोट नहीं लगती।

गाड़ी जब इलाहाबाद से खुल गई, तो शांतनु नहान-घर में घुसा। विक्तर उसे धोती निकाल कर देने लगा, तेल-साबुन-तौलिया देने लगा। शांतनु का कोई काम करने में उसे खुशी होती है, शांतनु के आराम के लिए वह हरदम परेशान है। मुँह पर आँचल रख कर ईशानी हँसी छिपाए बैठी रही।

इसी समय विक्तर ईशानी के पास आया। बोला, मम्मी! नहाने के बाद मिस्टर चौधरी कुछ खाएँगे न? मेरे पास खाना है, वह खाना क्या वह खाएँगे? आप अगर कहें तो—

ईशानी ने हँस कर कहा, मेरी इजाजत क्यों माँगते हो विक्तर?

विक्तर ने एक बार इस महिला के मुँह की ओर ताका। फिर बोला, हाँ, वही तो! मैं ही निकाल लेता हूँ!

विक्तर शांतनु के लिए खाने की प्लेट तैयार करने लगा। जतन कितना! धूल न पड़े, मक्खी न बैठे!

ईशानी ने कहा, वह खाना तो सिलविया ने तुम्हारे लिए दिया है,

वह तुम दूसरे को क्यों दे रहे हो विक्तर ?

विक्तर खुशी से हँस उठा। बोला, वाह, मैंने कल रात मैडम से परमिशन माँग लिया था !

—परमिशन क्या सिर्फ मिस्टर चौधरी के लिए ?—ईशानी फिर हँसी।

—हाँ। वह और मैं—दो जने खाएँगे।

सुन्दर रेशमी कुरता पहन कर शांतनु बाहर निकला। उसके बाल ऐसे घुँघराले, जैसे सैकड़ों अँगूठियाँ हों। दोनों गाल और ठोढ़ी की दाढ़ी सफाई से घुटी हुई, लेकिन दाढ़ी की सारी रेखा पहचान में आ जाती है। चेहरा चिकना, सुर्ख-सा जैसे बराबर। आँखों की पलकें घनी काली, भौरों के पखनों-सी। छोटे बच्चे की तरह दोनों होंठ लाल, पतले। शांतनु पान और सिगरेट नहीं छूता। लावण्य और गठीलेपन के साथ तन्दुरुस्ती भी बड़ी अच्छी है। ऊँचे कद का शांतनु बगल में खड़ा हो जाता है तो स्त्रियाँ छोटी-सी हो जाती हैं।

बाँकी चितवन से एक बार ताककर ईशानी ने मुँह फेर लिया। चाँद के उदय के साथ नदी का ज्वार-भाटा मिला हुआ है।

विक्तर के हाथ के सजाए भोजन को देख कर शांतनु ने पुलकित कंठ से कहा, जानते हो विक्तर ? मैंने आज तक किसी का प्यार नहीं पाया है। बस, तुम्हीं हो जो मुझे जरा अच्छी नज़र से देखते हो !

विक्तर ने पूछा, तुम्हारे मम्मी नहीं है ?

—नहीं है, जभी तो तकदीर खुल गई ! तुमको पा लिया। जिसका जो जी चाहे कहे, मगर तुम्हारी-मेरी दुनिया में मेरे-तुम्हारे सिवा कोई नहीं। कोई-कोई सामने आकर खड़ा जरूर होता है, मगर जानते हो, वह सब रंगीन मेघ हैं—अभी हैं, अभी नहीं हैं ! तुम और मैं सत्य हूँ।

शांतनु खाने बैठ गया। उसी प्लेट से एक बिस्कुट उठा कर शांतनु ने ज्योंही विक्तर के हाथ में दिया, वह गद्गद हो गया। आहार थोड़ा-सा ही था। अन्त में दोनों ने एक-एक चाकलेट मुँह में डाला। शांतनु ने पूछा, मैं तुम्हें अच्छा क्यों लगता हूँ विक्तर ?

शर्म से झिझककर उसने कहा, यह नहीं जानता।

धीमी आवाज में शांतनु ने कहा, एक बात का पता है तुम्हें, तुम्हारी यह मम्मी तुम्हें बहुत प्यार करती हैं।

धीमे से विक्तर ने कहा, सच कह रहे हैं ?

शांतनु झट दूसरी बात पर चला गया। बोला, तुम्हारे दोस्तों की माँ कनवेंट नहीं आती हैं ?

—आती हैं। रोज, फिलिप, ईसाबेला, हैरी—इनकी माँ अक्सर आती हैं।

—लेकिन तुम्हारी माँ ?

विक्तर ने कहा, मैडम की कह रहे हैं ?

शांतनु ने कहा, मैडम सिलविया तो सबकी माँ हैं—है न ?

विक्तर ने कहा, हाँ।

—तुमने अपनी माँ को नहीं देखा है ?

—अपनी माँ और कौन ? विक्तर ने अचरज से ताका।

शांतनु ने कहा, हर बच्चे के अपनी माँ होती है, यह नहीं जानते हो ?

विक्तर को जानकारी हासिल हो रही है। शांतनु की बात पर एक बार गरदन हिला कर उसने हामी भरी। फिर बोला, और बाप ?

—हो, वह भी है। सिलविया ने कुछ बताया नहीं है ?

—नहीं।

—क्यों ?

—मैंने जानना नहीं चाहा, इसीलिए।

शांतनु ने कहा, जानने से तुम्हें खुशी होगी न ?

विक्तर ने कहा, हाँ—

—तुम्हारा जी नहीं खराब होगा ?

—जी खराब !—विक्तर ने अवाक् होकर कहा, वह क्यों होगा ?

शांतनु यह सुन जोर से हँसा, उसके बाद बोला, न, वही कह रहा हूँ। तुमसे बात करने में ही मुझे क्यों खुशी होती है, कहो तो ?

विक्तर खूब हँसा। बोला, मैं आपको बेहद पसन्द करता हूँ, इसीलिए !

दोपहर की धूप की तपती गरमी में गाड़ी फतेहपुर पहुँची। गाड़ी रुकने के मिनट भर के अन्दर रेस्तराँ-कार का बैरा नन्दू के साथ दोपहर के भोजन की थाली ले आया।

विक्तर ने शिकायत की, आपने तो कहा था, मुझे रेस्तराँ-कार में ले जाएँगे ?

ईशानी ने कहा, ठीक तो है। वह और तुम वहाँ जाकर खा लो। अगले स्टेशन में आ जाना। मैं यहाँ खाती हूँ। नन्दू, तू मेरे पास रह। तू खरीद कर खाना यहीं खा ले। नहाना चाहे तो नहा भी सकता है।

नन्दू खुशी-खुशी राजी हो गया।

विक्तर और शांतनु उत्साह के साथ गाड़ी पर से उतर पड़े। हठात् खिड़की के पास खड़े होकर मीठे गले से ईशानी की ओर देख कर विक्तर ने कहा, मम्मी, प्लीज़, आप फिक्र न करें, हम अगले ही स्टेशन में आ जाएँगे !

ईशानी ने कहा, धन्यवाद विक्तर।

वे दोनों जरा इधर-उधर घूमकर रेस्तराँ-कार में चढ़ गए। विक्तर के लिए यह नया अनुभव था। अन्दर काफी भीड़ हो गई थी। दोनों टेविलों की दोनों पंक्तियों पर पुरुष और महिलाएँ बैठी थीं। कोई भी टेबिल खाली नहीं थी। बीच वाली बड़ी टेबिल पर एक महिला अपनी एक छोटी बच्ची को लेकर बैठी थीं। इधर-उधर जगह न पाकर लाचार शांतनु और विक्तर आकर उन्हीं के सामने बैठ गए। महिला अकेली थीं, इसलिए शांतनु को थोड़ी झिझक हो रही थी। लेकिन वह झिझक उस महिला ने ही तोड़ दी। बोली, बैठिए न, हमें कोई असुविधा नहीं होगी।

बंगाली स्त्री। शांतनु जरा अवाक् हुआ। पहनावे से पहले बंगालिन-सी बिलकुल नहीं लगी। बंगाल छोड़ते ही बंगालिनों की झिझक चली जाती है, वे बहुत कुछ स्वस्थ और सहज हो जाती हैं। लोगों से बोलने की भाषा उन्हें मिल जाती है।

शांतनु विक्तर को लेकर बैठा। बॉय आकर दो अंग्रेजी लंच का आर्डर ले गया। महिला ने कहा, लड़का तो बड़ा सुन्दर है। क्या नाम है तुम्हारा ?

—विक्तर।

महिला हँसी।—नाम से शकल मिलती है। क्या पढ़ते हो !

विक्तर ने कहा, कॉनवेंट के स्टैंडर्ड थ्री में पढ़ता हूँ।

—वाह ! आप लोग क्या कलकत्ते से आ रहे हैं ?

शांतनु ने कहा, जी हाँ। दिल्ली जाएँगे। आप ?

महिला ने कहा, मैं इलाहाबाद से सवार हुई हूँ। मैं भी दिल्ली जाऊँगी। मेरे पति की वहीं बदली हुई है न, इसीलिए बच्चों को लेकर जल्दी जाना पड़ रहा है। सवेरे नौ बजे तार मिला। इसी बीच सामान-वामान जो बन पड़ा, सहेज कर गाड़ी पकड़ी। बच्ची को वहाँ खिला भी नहीं पाई।

शांतनु ने मुस्कराकर फ्रॉक वाली बच्ची की ओर ताका। ९

साल की उम्र, खिला-सा चेहरा, मुँह बड़ा मीठा-सा ! शांतनु ने पूछा, दिल्ली आप पहली बार जा रही हैं ?

—जी हाँ ! पहली बार। वह अभी दिल्ली में नहीं हैं। सरकारी काम से पठानकोट गए हैं। चपरासी और घर का नौकर स्टेशन पर रहेगा इसी बात का भरोसा है।

दो बॉय एक साथ ही आकर चारों आदमी का खाना रख गये। सूप से खाने की शुरूआत हुई, साथ में मक्खन और रोटी।

सूप खत्म करके तौलिया से मुँह पोंछते हुए शांतनु ने कहा, आपके पति किस दफ्तर में काम करते हैं ?

महिला हँसीं। बोलीं, वह बहुत दिनों से सरकार के बहुतेरे विभागों में काम करते रहे हैं, उनका रेकर्ड बड़ा अच्छा है। अभी वह 'सेरीकलचर' विभाग में हैं।

विक्तर अनमना और आकुल हो रहा था। कभी भी शांतनु को अकेले में पाने की गुंजाइश नहीं है। बॉय, एक के बाद दूसरी प्लेट लाने लगा।

शांतनु ने पूछा, आप बंगाल नहीं जातीं ?

—जी, खास नहीं। मैं इलाहाबाद की लड़की हूँ और वह भी यू० पी० के हैं। बंगाल से हमारा बड़ा कम नाता है। बच्चे-बच्चियाँ छुटपन से ही हिंदी सीखने को मजबूर होती हैं। हमारे घर के बहुतेरे बच्चे बँगला लिखना-पढ़ना नहीं जानते।—आप लोग दिल्ली जा रहे हैं, एक दिन हमारे यहाँ आइए। मेरे पति बहुत खुश होंगे। विक्तर को भी लेते आइएगा। —महिला ने अपने पति के नाम-पते का एक कार्ड वैनिटी-बैग से निकाल कर शांतनु के हाथ में दिया। उसे हाथ में लेकर एक बार उलट-पुलट कर शांतनु ने कहा, ठीक तो है, किसी दिन आएँगे।

महिला ने एक बार शांतनु की ओर ताका। उसके बाद पूछा, इसकी माँ कहाँ हैं ?

शांतनु को ऐसे ही प्रश्न का ज्यादा डर था। पहले तो वह कसमसा कर चुप रहा। मगर कुछ क्षण बाद बोला, जी हाँ, हैं।

—आप लोगों के साथ वह नहीं जा रही हैं ?

शांतनु घुट कर विक्तर की ओर ताक कर एक बार हँसा। कहा, विक्तर अपनी मम्मी के बारे में बताओ।

विक्तर ने कहा, हाँ ! मम्मी तो साथ ही हैं।

देखते ही देखते शांतनु के माथे पर पसीने की बूँदें झलक आईं। उसने

खँखार कर गले को साफ कर लिया। महिला को कुछ अजब-सी उत्सुकता हुई। क्योंकि दोनों में से किसी का भी जवाब बहुत स्पष्ट नहीं था। उन्होंने कौतूहल से पूछा, लड़का तो यह आपका ही है न ?

छूरी से कटलेट को काटकर मुँह में डालते हुए शांतनु सहसा आँधी की तरह हँस उठा। उसके बाद बोला, देखिए, हर शिशु ईश्वर का दान है, यह उन्हीं का है ! आदमी केवल अपना-अपना करके चिल्लाता है ! लेकिन अनंत काल की तुलना में हम संतान को अपने पास कितना पाते हैं, बता सकती हैं ? कोई क्या बलपूर्वक कह सकता है, यह मेरा है ? हर्गिज नहीं ! हर संतान माँ-बाप की होती है, लेकिन किसकी संतान और कौन माँ-बाप ! हम महज यंत्र हैं, वे हैं यंत्री। हम सब अपने जीवन रंग-मंच पर सिर्फ माँ-बाप, भाई-बहन, बेटा-बेटी की भूमिका अदा कर जाते हैं, और कुछ नहीं ! बिव्तर तुम्हारा खाना हो चुका ? बॉय, बिल ले आओ।

महिला मुग्ध होकर शांतनु का भाषण सुन रही थीं। बोलीं, गाड़ी रुके बिना उतर तो नहीं पाएँगे।

रुँधी सांस से शांतनु पसीजता हुआ हँस रहा था। अब चौकन्ना होकर बोला, ओ हो, कानपुर शायद अभी नहीं पहुँचा है ?

बॉय आकर फल का रस मिला मिष्टान्न दे गया।

उसके भी आधे घंटे बाद कानपुर स्टेशन आया। किसी तरह से नमस्कार करके शांतनु बिव्तर को लेकर यहाँ से भाग सके तो जी जाए।

× × ×

रात साढ़े नौ बजे के बाद लाल किले के बगल से गाड़ी दिल्ली स्टेशन पर पहुँची। नंदू ने आकर उनके डिब्बे का सब सामान तैयार कर लिया था। इन बातों में वह खूब पटु है।

होटलों के दलालों ने आकर भीड़ लगा दी। उन्हीं में से एक नामी होटल का आदमी मिल गया। वह आदमी बड़ी रुआबदार पोशाक में था। वह आगे बढ़ आया। सारे सामानों की जिम्मेदारी लेकर उसने कुली को बुलाया। शांतनु ने जरा अन्यमनस्क होकर इधर-उधर ताका, लेकिन भीड़ में रेस्तराँ-कार की वह महिला नजर नहीं आई।

स्टेशन से बाहर निकल कर एक बड़ी-सी टैक्सी ठीक करके वह पुरानी दिल्ली की ओर चले। रेल की लाइन के किनारे-किनारे पुल के नीचे से काश्मीरी गेट पार करके काफी दूर तक गए।

है, पेड़-पौधे वाले दीवारों से घिरे मकानों वाला चिकना रास्ता। लेकिन वे सभी नए थे। दिन को घूमे बिना दिल्ली को वे समझ ही नहीं पाएँगे।

उत्तेजना जाती रही। विक्तर को नींद आ रही थी। होटल के दुतल्ले पर एक दूसरे से लगे तीन कमरे उन्होंने लिए। सामानों और विस्तरों की कोई कमी नहीं थी। वातानुकूलित कमरे। अन्दर गरमी और घुटन एकदम नहीं। बाहर की ओर एक दरवाजा। अंदर काफी चौड़ा। पाँच-सात स्त्री-पुरुषों के रहने लायक काफी जगह। ऐसी सजी-सजाई और आडंवर पूर्ण व्यवस्था पाकर उन्होंने चैन की साँस ली। भीतर के कमरे के एक कोने में फ्रीज—मनमाना ठंडा पानी मिलेगा।

सामने का कमरा ड्राइंग रूम। बीच के कमरे में रहेंगे शांतनु और विक्तर। ईशानी का निर्देश। अंतिम कमरा एकांत में था। वहाँ ईशानी का विस्तर इनके सिवा ड्रेसिंग रूम और दो बाथरूम।

सबसे पहले विक्तर का खाना आया। हाथ-मुँह धोकर वह डाइनिंग कार्नर में खाने के लिए बैठ गया। उमदा खाना। शांतनु के कहे मुताबिक उसी टेबिल के एक ओर दो बॉय दो आदमी का खाना रख गए। नंदू के लिए अलग इंतजाम किया गया।

खा-पीकर विक्तर तो अपने बिस्तर पर गया और ईशानी और शांतनु लगभग एक ही समय पर नहाकर बाहर के कमरे में आकर बैठे। बॉय दो ग्लास ठंडा लेमन स्क्वैश दे गया।

वे दोनों आमने-सामने बैठे। लेकिन कौन हैं वे? एक से दूसरे का संबन्ध क्या? कल सबेरे होटल की बही में वह क्या परिचय लिखेगा? दो ग्रह सौर-लोक में अपने-अपने कक्ष पर घूम रहे थे। अभी वे दोनों एक सँकरे दायरे में आ गए—दोनों ग्रह एक दूसरे को गौर कर रहे हैं। यह कलकत्ते के घर के रहने जैसा नहीं है—वहाँ स्वच्छंदता के साथ अबाध स्वाधीनता थी। यहाँ नपी-तुली सँकरी सीमा में दोनों एक ही सूत्र में बँध गए हैं! इस घर को छोड़कर दूसरे कमरे में जाने की कोई आजादी नहीं है। सिर्फ एक दरवाजा और बाहर अजान अनचीन्ही दुनिया का विशाल लोक-समाज।

शांतनु ने एक बार दरवाजे की ओर देखा। बोला, दरवाजा रात में खुला रहे तो क्या हर्ज है?

ईशानी ने कहा, अनजान जगह है, कोई खतरा नहीं?

—डर तो घर में है। बाहर काहे का डर? सभी तो हैं! हम लोग

कुछ हीरा-मोती कमरे में बिखेर कर तो नहीं रखेंगे कि डकैती होगी।

—सो तो है। कुछ रुपयों के सिवाय कुछ नहीं है।—ईशानी कुछ देर तक चुप रही। फिर बोली, किवाड़ के पल्ले भिड़का कर रखने से भी काम चल सकता है!

शांतनु ने कहा, भिड़काना और बन्द करना एक ही बात है!

ईशानी ने हँसकर कहा, औरत होकर पैदा हुआ होता तो जानता कि दोनों में जमीन आसमान का फर्क है।

बात को और बढ़ाना ठीक नहीं। शांतनु चुप हो गया। ईशानी बोली, कल सवेरे रमेन बाबू को तार देना ही है। दल-बल के साथ वे परसों रवाना होंगे। वे लोग अलग ठहरेंगे।

शांतनु ने कहा, यहाँ ज्यादा दिन रहना क्या अच्छा लगेगा?

—तुझे शायद अच्छा नहीं लग रहा है?

शांतनु जरा रुककर बोला, ठीक क्या होने से अच्छा लगेगा, वह भी तो कहना कठिन है। सारा माजरा ही दिन-दिन आदि से अंत तक अजीब उलझता जा रहा है। तू सदा नाचती फिरेगी, विक्तर सदा अँधेरे में रह जायेगा और मैं सदा 'घर का न घाट का' वाली स्थिति में रह जाऊँगा। इस समस्या का कोई समाधान भी है?

ईशानी ने कहा, तू क्या अपने भैया के यहाँ लौट जाना चाहता है?

—वहाँ मेरे लिए जगह कहाँ है?

—तो? मुझे क्या तू सब काम-काज छोड़कर निष्क्रिय बैठने को कहता है?

शांतनु ने कहा, फिर तेरा चलेगा कैसे?

ईशानी ने कहा, फिर क्या चाहता है? विक्तर अगर कनवेंट की पढ़ाई खत्म करके मेरा दामन थाम कर माँ कह कर मेरे यहाँ आ जाए, तो तू सन्तुष्ट होगा?

—वह नहीं होगा।—शांतनु ने जवाब दिया।

—फिर तो इस समस्या का हल भी सहज नहीं।

शांतनु चुप हो रहा। सब का पूरा भविष्य ही मानो बहुत बड़ा एक प्रश्नवाचक चिह्न होकर सामने आ खड़ा होता है।

ईशानी ने कहा, नींद आ जाने पर तू बड़ा अंट-शंट बकता है। खैर बहुत रात हो गई। कुछ खा कर अब सोजा जा कर। चल, उठ।

शांतनु के साथ ईशानी भी उठ खड़ी हुई। सामने के दरवाजे व भिड़का कर वे दोनों अंदर की ओर गए।

नौ

तीन-चार दिन हुए, रमेन बाबू अपने दलबल के साथ दिल्ली आ पहुँचे। रीगल सिनेमा हॉल नई दिल्ली के ठीक बीच में है और वहाँ से शहर के विभिन्न समाज में शो देने का समाचार प्रचारित हो चुका था। उसी की तैयारी में रमेन बाबू प्राय: रात-दिन डूबे हुए थे। योजना थी कि ईशानी को किसी हलचल और काम-काज में परेशान नहीं किया जायगा। ईशानी ऐन वक्त पर प्रकट होगी।

ईशानी वगैरह चार-पाँच दिन अपने खर्च पर एक होटल में रहे। अब वे इन 'शो' कराने वालों के अतिथि हैं। अरावली की शाखा-प्रशाखा के भीतर से जो रास्ता ऊपर की ओर गया है, उसी तरफ के राजपथ पर उसके लिए बहुत बड़ा एक बागमहल किराए पर लिया गया है। वहाँ रहने योग्य हर प्रकार का सामान मौजूद है। यहाँ तक कि एक रसोइया, एक नौकर, एक परिचारिका भी। ईशानी के लिए एक गाड़ी रात-दिन तैयार खड़ी रहती है। चालाक और विषय बुद्धि वाले रमेन बाबू ने 'शो' कराने वालों के खर्च पर ईशानी के हर प्रकार के आराम की व्यवस्था पहले से ही कर रक्खी है। ऐसे आदमी को स्वार्थी कह कर संदेह करने के कारण शांतनु ने बार-बार ईशानी की लानत-मलामत की।

शांतनु और विक्तर के साथ ईशानी सारी दिल्ली और शहर के आस-पास घूमती फिरी। धूप धीरे-धीरे काफी तीखी होती जा रही थी, लिहाजा सवेरे दस-ग्यारह बजे तक घूमना हो सकता है, उसके बाद और देर तक विक्तर को बाहर नहीं रक्खा जा सकता। सिलविया के इसी बीच में दो तार और तीन लम्बी चिट्ठियाँ आ धमकी हैं। विक्तर ने उसे दो चिट्ठियाँ लिखी हैं। ईशानी ने भी तार और चिट्ठी भेजी है। सिलविया बहुत हड़बड़ा रही है। विक्तर को ज्यादा दिन नहीं रक्खा जा सकेगा। यदि वैसी जरूरत आ पड़े, तो नन्दू है, उसके साथ विक्तर को भेज देना पड़ेगा।

वे लोग बहुत घूमे। रुपए-पैसे बहुत खर्च हुए। पौराणिक युग में उर्वशी के नाच की ठुमक के बारे में सुना था कि उसके घुंघरुओं की छनक से कानन कांतार में फूल खिल उठते थे, आज के युग में ईशानी के नाच की

ठुमक में माटी के सात हाथ नीचे से रुपए-पैसे उग आते हैं। लोग आनन्द और लावण्य के लोभ में पैसे सबसे ज्यादा खर्च करते हैं। होटल में जो खाऊँगा, उसका खर्च वैसा कुछ नहीं, लेकिन आनंद-विलास और स्वच्छंदता का दाम बहुत रुपया देना पड़ा। होटल का बिल देखकर शांतनु सिहर उठा था।

रीगल मंच पर उतरने का दिन प्रायः हो आया। दीवार-दीवार पर पोस्टर चिपक चुके थे। अखबारों के दफ्तरों में टेलिफोन आने लगे। दिल्ली के लोग पूछताछ करने लगे। कनाट प्लेस में छोटा-सा एक दफ्तर ही खुल गया। एक-एक अखबार में नाचती हुई ईशानी का एक के बाद दूसरी धुँधली तसवीर छपी। ईशानी के बारे में बहुत-सी बातें छपीं। वह बंगाल के किसी बड़े घर की बेटी है—उसके यहाँ घुड़साल और हाथी-खाना था। उनके राजत्व में सुन्दरवन के बाघ और बकरी एक ही घाट में पानी पीते थे। ईशानी का जीवन अजीब नाटकीय घात-प्रतिघातों से भरा है। अंगरेज मिशनरियों के साथ शायद उसने बहुत दिन धर्म-प्रचार के काम में बिताया है। सारी दिल्ली में हलचल-सी मच गई और उसका नतीजा यह हुआ कि ईशानी का बाहर निकलना असंभव हो गया।

शांतनु ने कहा, तेरे बारे में ऐसी अजीबो-गरीब कहानियाँ लोगों ने कैसे जानी ?

ईशानी ने कहा, रमेन बाबू की कृपा से !

मामूली-सी सच्चाई की राई को झूठ के पहाड़ से जोड़ दिया गया है, यह भी रमेन बाबू की ही बदौलत ?

—बेशक खूबसूरत झूठ को मामूली से सत्य के साथ जोड़ देना ही प्रचार का कौशल है।

शांतनु ने पूछा, वास्तविक सत्य और सतता से प्रचार का काम नहीं चल सकता है ?

ईशानी ने हँसकर कहा, क्यों नहीं ! मगर उसके खरीदार कम हैं। जो आदमी मनुष्य का इतिहास लिखता है, वह कितना ही पंडित क्यों न हो, उसकी वैसी नहीं चलती ? लेकिन जो आदमी, आदमी पर उपन्यास लिखता है, वह चूँकि रंगीन कल्पनाओं का जाल बुनता है, इसलिए उसकी कद्र होती है। यही कारण है कि उपन्यासकार के प्रति इतिहासकार का सदा-सदा का विद्वेष हिंसक शकल लिए खड़ा रहता है।

शांतनु ने कहा, इसी अनोखे प्रचार-कार्य पर तेरी प्रसिद्धि कायम है ?

—बहुत हद तक—ईशानी फिर हँसी,—मुझे केन्द्र करके बहुतों की उद्दाम रंगीन रस-कल्पना करिश्मे दिखाती है। जो चीज मिलने की नहीं, मगर जिसे पाने के लिए लोगों की भूखी इच्छा ताजिंदगी हाहाकार करती है, लोग मेरे नाच में ढूँढ़ कर उसी चीज को पाते हैं। कुशल प्रचार-कार्य उनकी उस भूख को और भी उग्र किए देता है, इसलिए लोग मेरे पैरों पर असंख्य रुपए लुटा जाते हैं। आनन्द लुटाने के इस व्यवसाय में मैं रमेन बाबू की मूल पूँजी हूँ।

शांतनु ने कहा, लेकिन इसमें तेरा एक बहुत बड़ा असम्मान जुड़ा हुआ है, उसे तूने सोच देखा है?

ईशानी चुप होकर कुछ देर तक अनमनी-सी हो रही। उसके बाद बोली, इसी जालिम आत्म-विक्रय के हाथ से छुटकारा पाने के लिए ही मिहिजाम में मैंने तेरी मदद माँगी थी, याद आता है?

—उस दिन तेरे वास्तविक परिचय को मैं इस तरह से नहीं जान पाया था। आज जाना जरूर, लेकिन इससे तेरे छुटकारे का तो कोई उपाय नहीं दीखता।

—क्यों?

शांतनु ने कहा, रुपए के आँकड़ों ने चारों ओर से तुझे घेर लिया है, इसे देखा है? कभी प्रेम के लिए इन्सान सब कुछ छोड़कर संन्यास ले सकता था, परन्तु आज तो प्रेम भी पैसे पर खरीदने से मिलता है। रुपए से क्षमता आती है, क्षमता से प्रभुता—तू तो आज आसानी से दिल्ली पर प्रभुत्व कर सकती है, तुझे रोकता कौन है? दौलत की प्रचुरता तेरे मन को नीति से बिलकुल नीचे गिरा रही है, छुटकारे का रास्ता खोजना भी तेरे मन का एक विलास है! तू भागना चाहे, तो हजार आदमी तेरे पीछे-पीछे दौड़ेंगे, तू खो जाय, तो लाखों-लाख लोग तुझे खोज निकालेंगे। तू कहीं संन्यास भी ले तो वही लाखों लोग चंदा करके तेरे लिए माया कानन में महल बना देंगे। यदि तू जंगली फलों पर जीना चाहे, तो वे लोग तेरे लिए द्राक्षाकुंज बना देंगे, प्यास लगने पर वे तेरे लिए भोगवती नदी की रसधारा ला देंगे। तेरी मुक्ति कहीं भी नहीं है ईशानी!

नीचे एक दबी-दबी-सी हलचल बड़ी देर से सुनाई पड़ रही थी। शांतनु बरामदे में आकर खड़ा हुआ। फाटक के अन्दर कोई तीस-चालीस आदमी घुस आए हैं। बहुतों के साथ साइकिल भी है। लोगों को शायद गंध मिली है कि देश की मशहूर नर्तकी यहीं टिकी है। नर्तकी ही नहीं,

राजकुमारी। और सिर्फ राजकुमारी ही नहीं, रूप और लावण्य में अमरावती की अप्सरा।

शांतनु से सब ने चिल्लाकर अपने मन की विनती कही। बगीचे में शोर-गुल होने लगा।

कल रीगल में मशहूर नृत्य नटी पहली बार उतरेगी ! आज स्त्री के रूप में उसके दर्शन किए बिना काम नहीं चल सकता।

शांतनु कमरे में आ गया। ईशानी का चेहरा बदरंग हो गया था। शांतनु ने कहा, जा, एक बार उनके सामने जाकर खड़ी हो।

—क्यों ?

—वे लोग देखना चाहते हैं।

—क्या देखना चाहते हैं ? मुझे ?

शांतनु ने कहा, नहीं। नर्त्तकी के शरीर को। जिसके लिए वे लोग बेखटके हजारों हजार रुपये खर्च करने को तैयार हैं।

ईशानी ने कहा, ऐसा शरीर क्या दिल्ली की राह-बाट में नहीं है ?

—है।—शांतनु ने कहा, लेकिन उन सब शरीरों में ख्याति के साथ रंग नहीं है, रंग के साथ रस की कल्पना नहीं है।

—मैं नहीं जाती।—ईशानी बोल बैठी।

शांतनु हँसा। बोला जिनके पैसों पर तेरे इतने गुलछर्रे हैं, उनका कर्ज नहीं अदा करेगी ! क्यों ? जा, हाथ जोड़कर सामने खड़ी हो जा।

ईशानी बोली, वे मुझे किन निगाहों देखेंगे, यह क्या तुझे मालूम नहीं है ?

—मालूम है। उन निगाहों का नकद मूल्य कम नहीं। ये लोग कल रीगल में टिकट खरीदेंगे। तुझे काफी रुपये मिलेंगे।

ईशानी फिर भी नहीं गई। बोली, मैं जब असम्मान की ओर बढ़ती हूँ, तो तेरे दिल में क्या दाग नहीं पड़ता ?

शांतनु ने कहा, तुझे क्या इस बात की याद नहीं कि तू इसी असम्मान के बदले मोटी रकम ले जाने के लिए दिल्ली आई है ?

ईशानी जरा देर ठिठकी, फिर अपना रूप-यौवन लिए बरामदे पर जाकर हाथ जोड़े मुस्कराती हुई खड़ी हुई।

भारत-समुद्र में लहरों का गर्जन सुनाई पड़ा।

बैशाख की उस चिलचिलाती धूप में देखते-ही-देखते बाग में जनता की भीड़ बढ़ गई। इधर पेड़-पौधे कम हैं, नहीं आबादी इधर-उधर बस

गई है, लेकिन उस तेज धूप में भी जनता का जोश किसी भी तरह से कम नहीं हुआ। बाग में फूलों के नए पौधे लगाए गए थे, कुछ लोग उनके फूल तोड़कर ऊपर की ओर फेंकने लगे। बात-की-बात में फूलों के पौधे नंगे हो गए। ईशानी काठ के खिलौने-सी खड़ी रही।

कुछ देर में वह अंदर चली आई। लेकिन लमहे में उत्तेजित जनता ने अपनी प्रिय नायिका को देखने के लिए शोर मचा दिया।

आयोजकों को तो यही चाहिए था। जनता ने प्रचार की जिम्मेवारी अब अपने हाथों में ही ले ली—अब यह और भी विशाल तथा व्यापक हो जायगा। खर्च अपने आप घटेगा। अखबार अब मुफ्त में ही तस्वीरें और राइट-अप छापेंगे। विशाल यंत्र अब चालू हो गया। रीगल विल्डिंग सजाई गई है। कम-से-कम पाँचेक हजार रुपये तो रमेन बाबू की अपनी जेब में जरूर जाएँगे।

टेलीफोन पर रमेन बाबू के एकांत अनुरोधों से ईशानी को इस मकान में कैदी की नाईं रहना पड़ा। विशाल हाल को चारों तरफ से बंद करके उसे अपने नाच का आप ही रिहर्सल करना पड़ा। तीसरे पहर विक्तर को लेकर शांतनु गाड़ी से निकल पड़ा। इन कई दिनों में पुरानी दिल्ली की पुरानी वास्तु-कला के नमूने उन लोगों ने घूम-घूम कर देखे। किला, जामा मस्जिद, निजामुद्दीन औलिया, फीरोज शाह कोटला, हुमायूँ का मकबरा, सफदर जंग—कुछ भी बाकी नहीं रहा। ओखला, राजघाट, इन्द्रप्रस्थ घूमा। बाकी रह गया था कुतुबमीनार—यह अब ईशानी के नसीब में नहीं है।

शांतनु कुतुब की ओर चला। नन्दू गाड़ी पर था।

धूप की तेजी कम हो आई। प्राचीन दिल्ली के बेशुमार खंडहर दोनों ओर बिखरे पड़े थे—बीच से बहुत ओर को बहुत-से रास्ते गए हैं। वे लोग विजयनगर के बगल से चले। सिर्फ आठ-नौ मील। आधे घण्टे में वे कुतुबमीनार पहुँच गए।

तमाम रास्ता विक्तर बातें करता आया। अपने इतिहास की किताब में उसने कुतुबमीनार की तसवीर बहुत बार देखी है। गाड़ी से उतर कर अब वह खुद ही आगे बढ़ा। पास ही आकाश चूमती मीनार खड़ी थी, नीचे का हिस्सा मोटा, ऊपर क्रमशः पतला होता गया है। पत्थरों पर अजीब-अजीब काम देख कर विक्तर बिलकुल मुग्ध हो गया। शांतनु के लिए भी यह पहला ही मौका था। आस-पास जंगल-झाड़ियों में पठान,

मुगल और भारतीय स्थापत्य ने हर युग के चिह्न रख छोड़े हैं। दोनों देर तक घूमते रहे।

एकांत में एक बेंच पर बैठकर शांतनु ने विक्तर को बहुत-सी कहानियाँ सुनाई हैं। ऐतिहासिक स्तम्भ को सामने रखकर कहानी कहते जाना —यही शिक्षा शायद अच्छी है। इधर-उधर के चक्कर काटकर आखिर वे तीनों मीनार के ठीक नीचे जा खड़े हुए। विक्तर ने जिद पकड़ी, वह अन्दर की सीढ़ी से ऊपर चोटी तक जायगा। इस प्रस्ताव से नन्दू खुश हुआ। बोला, कोई बात नहीं छोटे बाबू, मैं नन्हें साहब के साथ रहूँगा।

शांतनु ने कहा, लेकिन होशियार, धीरे-धीरे चढ़ना। मैं उस चाय की दूकान में इन्तजार करूँगा।

नन्दू और विक्तर सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। लेकिन कुछ दूर जाकर दूकान के आसपास शांतनु ठिठक गया। दूकान की कुर्सी पर कोट-पेंट पहने एक खूबसूरत-से भले आदमी बैठे थे और उनके बगल में ही वह महिला और बच्ची बैठी थी, जिनसे आते समय गाड़ी पर शांतनु से गहरा परिचय हो गया था।

शांतनु को देखते ही वह महिला बोल उठीं, खूब, फिर भेंट हो गई। आप लोगों को बड़ी देर से देख रही थी, लेकिन टोका नहीं। ये मेरे पति हैं।

उन सज्जन ने कहा, आइए।

शांतनु एक ओर बैठ गया। बोला, मैंने भी नहीं सोचा था कि आपसे फिर भेंट हो जायगी।

उनके पति ने पूछा, यों ही घूमने-फिरने के लिए दिल्ली आए हैं?

—जी हाँ।

—मगर जानते हैं, दिल्ली का यह सीजन नहीं है। अक्तूबर से मार्च और अप्रैल आधे तक दिल्ली की तुलना नहीं! कब तक हैं?

शांतनु ने कहा, हफ्ता भर से हूँ। लगभग एक हफ्ता और रहूँगा।

—ठहरे कहाँ हैं?

—पहले होटल में उतरा था। अब राजेन्द्रनगर के आसपास हूँ।

—किन्हीं के मेहमान हैं?

शांतनु हँसा—जी, वही समझिए।

महिला बोलीं, लड़के को ले आए, अपनी स्त्री को तो नहीं लाए!

शांतनु ने गले को साफ़ कर लिया। उसके बाद बोला, आप ग

उस दिन ठीक समझ नहीं पाई। मैंने अभी तक शादी नहीं की है।

महिला कुछ अचम्भे में पड़ीं। बोलीं, जी, माफ कीजिए, उस दिन शायद मैं समझ नहीं सकी। लड़का लेकिन बड़ा अच्छा है। कौन होता है आपका ?

शांतनु ने कहा, अपना कोई नहीं है। लेकिन उन्हीं लोगों के यहाँ रहता हूँ न, इसलिए हम लोगों से बड़ी घनिष्ठता है।

पति ने कहा, यह तो बहुत ही अच्छा है। पराया अपना होता है तो बहुत ही अपना होता है। साथ में कैमरा देख रहा हूँ, तसवीर से शौक है ?

शांतनु हँसा। बोला, कैमरा प्रायः कन्धे में ही लटका रहता है, तसवीर खींचने की याद नहीं रहती।

एक साथ चाय पीने के बाद शांतनु ने कहा; यदि कोई एतराज न हो तो आइए न, आप लोगों की तसवीर ले लूं !

—लीजिएगा ? बुरा क्या है। चलिए।

तसवीर खिचाने का शौक औरतों को ही ज्यादा होता है, क्योंकि वे अपनी तसवीर देखकर अपने को पहचानने की कोशिश करती हैं। महिला बच्ची को लेकर आगे खड़ी हुई। बगीचे के बीच में आकर शांतनु ने उन लोगों को पास-पास खड़ा करके फोकस किया। डूबती बेला में पश्चिम की रोशनी अच्छी ही थी और शांतनु के कुशल हाथों से सम्भवतः तसवीर बहुत जीवंत हो आई।

महिला ने कहा, तसवीर की प्रति लेकिन हमारे पते पर भेज ही देनी होगी। समझ गए ? उस दिन आपको पता दिया था, खो तो नहीं गया ?

पति ने कहा, भेजने की क्या जरूरत है ? तुम इन्हें चाय पर बुलाओ, तसवीर लेकर वह कल ही आएँ। आपका शुभ नाम जान सकता हूँ ?

—जी, शांतनु चौधरी।

—चौधरी ! वाह, मिल भी खूब गया। मैं हूँ दत्त चौधरी। हमारे बंगले का रास्ता बड़ा आसान है। एक फटफटिया लेकर तीसरे पहर हमारे यहाँ चले आइएगा।

महिला बोलीं, रुको। कल कैसे होगा ? इतने रुपये के टिकट जो हमने रीगल के खरीद रक्खे हैं। कल शाम तो नाच देखने जाएँगे। आप परसों आ जाएँ तो बड़ी खुशी होगी।

शांतनु ने कहा, ठीक तो है। परसों ही आ जाऊँगा।

इतने में एक नौजवान आकर सामने खड़ा हुआ। बोला, तुम लोग यहाँ चाय का मजा ले रहे हो हम लोग उधर किस मुश्किल में पड़ गये थे। गाड़ी में स्टेपनी नहीं थी। सो चक्का खोल कर टायर-ट्यूब निकाल कर तब पंचर ठीक कराया। पसीने-पसीने हो गया। मगर मँझली भाभी, अब देरी न करो। वेला झुक आई है। मीनार पर चढ़ना हो तो बस तुरंत ही—

—चलो चलें।—महिला उठकर आगे बढ़ी फिर मुँह घुमाकर शांतनु से बोली परसों लेकिन जरूर आइएगा।

शांतनु ने हँसकर हामी भरी। पीछे से दत्त चौधरी ने कहा, हम लोग यहीं हैं जल्दी करना।

बिक्तर के लौटने में अभी काफ़ी देर थी। उतने ऊँचे चढ़ेगा, फिर ऊपर कुछ देर बैठेगा, चारों ओर के दृश्य देखेगा और शायद हो कि नंटू को कुछ इतिहास बताए, तब कहीं उतनी सीढ़ियाँ उतरेगा। देरी तो होगी ही।

चाय वाला इतने में एक प्याला गरम चाय रख गया। उधर देखते हुए दत्त-चौधरी ने हँसते हुए कहा, कुछ पूछना बेअदबी तो होगी, लेकिन जानना चाहता हूँ, आप क्या कोई बिजनेस करते हैं?

शांतनु ने कहा, जी नहीं। मैं बिलकुल निर्जला बेकार हूँ। कोई बँधा-बँधाया काम नहीं है, इसलिए तरह-तरह के काम करता हूँ। गरीब गृहस्थ का लड़का हूँ।

—तो क्या दिल्ली किसी काम की तलाश में आए हैं?

शांतनु ने मुस्कराकर कहा, बिना किसी काम के दिल्ली आने से लोग बेवकूफ कहते हैं, और काम से आइए तो कहते हैं, आदमी यह बड़ा धूर्त है। मैं इसके ठीक बीचोबीच हूँ। समझ लीजिए बिना काम के काम से आया हूँ।

दत्त चौधरी खूब हँसे। शांतनु ने चाय के प्याले से घूंट लिया। पर वह सज्जन उधर मुखातिब नहीं हुए। सिर्फ एक बार पूछा, कलकत्ते में ही रहते हैं?

—जी हाँ। लेकिन मैंने आपकी धर्मपत्नी से सुना, बंगाल से आप लोगों का कोई संपर्क ही नहीं है।

दत्त चौधरी ने कहा, हाँ। करीब-करीब वैसा ही। लेकिन मुझे एक-बार कुछ दिनों तक बंगाल में रहना पड़ा था।

—अच्छा !

—जी हाँ। उस समय लड़ाई छिड़ी हुई थी। मैं एक गाँव के पास मिलिटरी कैंप में रहता था। गाँव का नाम था शायद फूलकाठी।

शांतनु ने सहज भाव से कहा, फौज में थे शायद ?

भले आदमी ने कहा, हाँ। मैं लेफ्टिनेंट था। उसी सिलसिले में पहली बार बंगाल गया था। लेकिन उसके बाद ही आजाद हिंद का आंदोलन और हिंदू-मुसलमान का दंगा हुआ। हमें कैंप को लेकर बड़ी मुसीबत में पड़ना पड़ा।

—मुसीबत क्यों ?

—चारों ओर अराजकता। खाना कहीं मिलता नहीं था। उसी स्थिति में एक दिन मैं सिविल पोशाक में सामान खरीदने के लिए फूलकाठी गाँव गया। वहाँ एक गृहस्थ परिवार से मेरा परिचय हुआ।

शांतनु ने कहा, फौज के लोगों को उस समय बाहर के लोगों से परिचय करने दिया जाता था ?

भले आदमी ने कहा, वह एक बचपना था! छिप-छिपकर उनके यहाँ जाया करता था। किसी समय वे लोग जमींदार थे, राजा की उपाधि थी। उस समय एक बुढ़िया फूफी थीं और थे उनके भाई। उन भले आदमी के एक बड़ी खूबसूरत लड़की थी।

चाय का घूंट लेकर शांतनु कान खड़े किये रहा। बोला, वाह, लड़ाई के दिनों आपको तो बड़ा अच्छा अनुभव हुआ।

—हाँ। अनुभव ही कहिए। वैसी खूबसूरत लड़की उस रोज तक मैंने अपनी आँखों नहीं देखी थी। बड़ा अच्छा लगा।

—फिर ?—शांतनु के गले में सांस रुँध गई।

भले आदमी कहने लगे, पाँच-सात बार वहाँ गया था, उसके बाद बीमार पड़ा। मुझे बंबई भेज दिया गया। साल भर बाद मिलीटरी से डिसबैंडेड हो गया। उसके बाद फिर बंगाल के उस गाँव में एक बार गया। सुना, दंगे में उस घर के सब लोगों को काट डाला गया। उस बार बड़ा दुखित होकर लौटा था।

जमीन के नीचे और सामने की वह आकाशचुंबी मीनार मानों हिल उठी। शांतनु ने गरदन घुमाकर उत्सुकता से पूछा—आप फिर दूसरी बार उस गाँव में क्यों गये ?

—क्यों गया ?—भले आदमी जरा हँसे। बोले, बात दस बरस की

पुरानी हो चली, पूरी याद भी नहीं आती। उस समय उम्र कम थी। स्नेह-ममता का बंधन अच्छा लगता था।

किसका बंधन ? फूफी और उनके भाई शायद आपको बहुत मानते थे ?—शांतनु ने अपने गले को बिलकुल निर्लिप्त कर लिया।

दत्त चौधरी ने उस सरल-स्वभाव युवक की ओर एक बार ताका। फिर बोले, आप क्या साहब कभी शादी-ब्याह नहीं करेंगे। लड़कियों के बारे में आपको कुछ अता-पता नहीं है। मैं क्या उस बूढ़े-बूढ़ी को कह रहा हूँ ? कह रहा हूँ उस लड़की की बात।

शांतनु ने पूछा, उस कुमारी लड़की की ?

—हाँ अगले ही साल उसके मैट्रिक इम्तहान की बात थी। कुछ अच्छा-सा नाम था भला ! शायद मिनती या मालती !

शांतनु हँस उठा। कहा, गजब है। जिससे इतनी घनिष्ठता, उसका नाम भी याद नहीं है ? माधवी क्या ?

—हाँ-हाँ, आपने ठीक ही कहा।—दत्त चौधरी ने उमग कर कहा, मगर आपने कैसे जाना ?

—बड़ी आसान-सी बात है। जिस कोटि के लोग मालती-मिनती नाम के सिवा कुछ खोज नहीं पाते, वही लोग माधवी नाम पसंद करते हैं।

भले आदमी ने कहा, हाँ, याद आया। उसे 'माधू' कहकर पुकारते थे। कोई कहता है, उसे काट डाला, कोई कहता है, उसे ले भागा। बेचारी !

दोनों में इतनी ही देर में खासी घनिष्टता हो उठी थी। शांतनु ने पूछा, आपने क्या उस लड़की को प्यार किया था ?

दत्त चौधरी हँसे। बोले, अब मैं स्त्री के साथ गिरस्ती करता हूँ, एक बच्ची का बाप हूँ, लिहाजा वह बात अब नहीं उठती। लेकिन माधू से परिचय के समय कच्ची उमर की धुन तो थी ही शायद हो कि मैं उससे शादी भी करता।

शांतनु के सिर पर भूत सवार हो गया। बोला, आपने ठीक ही कहा है मिस्टर दत्त चौधरी, मुझे कोई अनुभव नहीं है। यह लड़कियों वाली बात दिमाग में भी नहीं आती है। मगर मैं क्या सोचता हूँ जानते हैं ?

—क्या ?

—अभी अगर वह लड़की जिंदा होती और आपसे उसकी भेंट हो जाती, तो आप क्या करते ?

भले आदमी ने शांतनु की ओर एक बार संदेह की नजर से देखा। उसके बाद सिर झुका कर बोले, करता क्या, उसे पहचान ही नहीं पाता।

—मतलब ? पहली जवानी में जिस लड़की से उतनी घनिष्ठता हुई थी, दस साल के बाद उसे पहचान भी नहीं पाते ?

शांतनु के गले से हलके तिरस्कार का आभास-सा मिला। भले आदमी ने एक बार उस पर गौर किया। फिर बोले, लगता है, आप जैसे नाराज हो उठे हैं। आप क्या चाहते हैं, मेरा घर टूट जाय ?

शांतनु अबकी हँसा। बोला, माफ कीजियेगा, मैं बड़ा असामाजिक हो जाता हूँ। स्त्रियों से मिलते-जुलते रहने से हो सकता है यह मेरी पोथी रटंत विद्या मुझसे छूट जाती। खैर, आपसे परिचय होने से बड़ी खुशी हुई। और कुछ न सही तो कम-से-कम आपको एक प्रेम-कहानी ही सुनने को मिली। आप तो जगह-जगह घूमा करते हैं, दिल्ली में कब तक रहेंगे ? दत्त चौधरी ने कहा, अभी दो साल के करीब रहूँगा।

नंदू के साथ विक्तर आ पहुँचा। चाय के पैसे देकर शांतनु नीचे उतर आया। विक्तर को देख कर भले आदमी ने कहा, वाह लड़का तो बड़ा खूबसूरत है। आपके किसी सगे-संबंधी का लड़का है शायद ?

—जी हाँ।

देखते-ही-देखते भले आदमी की स्त्री भी आ पहुँचीं और पीछे-पीछे उनका देवर भी। दोनों ही थके हुए थे। महिला ने आगे बढ़कर पति से कहा, तुम्हें उस दिन बताया था, जो कि गाड़ी में एक लड़के को देखा था, तुम्हारे चेहरे से जिसकी शकल बहुत मिलती थी। देखो न, ठीक वैसा ही लगता है न !

भले आदमी ने कहा, हमसे तो तुम लोग ही ज्यादा ठीक बता सकती हो !

देवर और शांतनु एक ही साथ बोल उठे, गजब ! अनोखा मेल है। जैसा बाप और बेटे का होता है, वैसा ही।

दत्त चौधरी बिलकुल सकपका गए। शांतनु मन-ही-मन मानों सब कुछ को चाटे जा रहा था, पर जरा भी संयम खोने से काम नहीं चलेगा। अनजानते वह बार-बार भले आदमी की निरख-परख कर रहा था। दत्त चौधरी जो अनमने से उठे, कुछ चाकलेट खरीद कर विक्तर के हाथ में दिया और ठोढ़ी पकड़ कर उसे जरा दुलारा। उसके बाद बोले, चलो,

अब चलें।

चलते-चलते महिला ने फिर याद दिलाई, मगर तसवीर लेकर दुबारा जरूर आइएगा ?

शांतनु ने हाथ उठाकर नमस्कार करते हुए हामी भरी।

पाँव के नीचे की धरती, सामने की मीनार की आकाशचुंबी चोटी, उसके भी उस पार सारा त्रिभुवन उस समय तक थर-थर काँप रहा था। क्यों काँप रहा है, इसकी सही-सही अनुभूति नहीं। शांतनु एक बार ठिठक कर खड़ा हो गया। शायद उसके कठिन हृदय के अंतरतम में कहीं एक आने वाले वियोग की बहुत ही धीमी आवाज गूंज रही थी। अब छोड़ देना पड़ेगा! लेकिन ईशानी यह दुस्सह मिलन कबूल भी करेगी। यह भयंकर भूकम्प अगर कई जिंदगियों में प्रचंड विस्फोट ले आए ? उस विस्फोट के धक्के से और चाहे कुछ न हो, उस महिला की सुखी गिरस्ती को आवश्य ही मटियामेट कर देगी। उससे तो यही अच्छा है। जैसा चल रहा है, चलता रहे। शांतनु अगर इस मामले को पी जाय, तो कोई समस्या ही नहीं खड़ी होती। ईशानी दस साल पहले की गुजरी हुई उस आकस्मिक घटना को भूल गई है, दत्त चौधरी ने अपने उस अतीत को धो-पोंछकर-फेंक दिया है। आदमी यह धोखेबाजी नहीं है, क्योंकि वह दुबारा उसकी खोज में फूलकाठी गाँव गया था और उससे ब्याह करने को भी तैयार था। तकदीर की खोटी साजिश माधू को और ही रास्ते ले गई, असहाय स्त्री आश्रय के लिए मारी-मारी फिरी—मगर उस आदमी का कसूर कहाँ है ? असंयम के उमड़े पागलपन में स्त्री-पुरुष दोनों ने अपने आपको एक दूसरे को सौंप दिया—जैसा कि हर पति-पत्नी के रोजमर्रे के जीवन में होता है। लेकिन पुरुष ने अपनी नैतिक जिम्मेदारी में कोई कसूर नहीं किया। शांतनु यह नहीं समझता कि इस स्थिति में दत्त चौधरी का कोई अपराध है। उस दिन उन लोगों के सामने विश्वयुद्ध के झपेटे थे, राजनैतिक अराजकता थी, सांप्रदायिक दंगे की खूनी होली थी, उसी के चक्कर में पड़कर प्रेम का एक मिलन छिन्न-भिन्न हो गया। शांतनु यह मानता है कि इसमें दोनों में से किसी का दोष नहीं है। लिहाजा कभी की लगी एक आग जो धीरे-धीरे बुझ आई है, उसे फिर से फूंक कर जगाने में शांतनु का छोटापन जाहिर हो सकता है। शांतनु ने यह तै कर लिया कि जीवन में इस बात को वह कभी जाहिर नहीं करेगा।

साँझ के बाद राजेन्द्रनगर के आस-पास जब मोटर बगीचे में दाखि

हुई, तो शांतनु को सुध आई। आठ-दस दरबान इधर-उधर पहरा दे रहे थे, भीड़ कहीं फिर भीतर न आ घुसे। फाटक के बाहर तीन पुलिस के सिपाही घूम रहे थे। आस-पास कुछ लोग जमा थे। फाटक पर एक टेलिफोन लग गया था, कि अन्दर से पूछताछ की जा सके कि आने वाले को अन्दर जाने की अनुमति है या नहीं। देख-सुनकर शांतनु मुग्ध हो गया। और कुछ हो या नहीं एक बड़े जहाज से उसके जीवन की डोंगी बँधी है! लेकिन चारों तरफ एक ऐसा धम्-धम् करता हुआ-सा भाव, कि डर लग रहा था, भीड़ से पहरेदारों की मुठभेड़ न हो जाय! कौन नहीं जानता, हेलेन की वजह से ट्रॉय नगरी तबाह हो गई थी!

ईशानी अधीर होकर शांतनु की प्रतीक्षा कर रही थी। आहट मिली तो वह धड़धड़ाती हुई सीढ़ी से उतर कर बीच ही में शांतनु से बोली—अकल की बलिहारी! दूर परदेस में मैं इतने बड़े मकान में अकेली पड़ी हूँ—जरा भी दया-माया नहीं? चारों ओर साँझ की बत्ती जल उठी, मैं तो चिंता के मारे बेहाल हो उठी थी।

उसके जूड़े में अशोक के लाल गुच्छे लटक पड़े थे, कान में झूल रहे थे हीरे के दो झुमके। पहनावे में सफेद साड़ी, जिसकी जरी की कोर एड़ी से चोटी तक तलवार की झलक दे रही थी। गोया सारे शरीर में मरण की सेज सजा कर वह बड़ी बेसब्री से घड़ियाँ गिन रही थी। शांतनु ने कहा, तो यह कहा कि लग्न शुभ है, ऐन मौके पर मैं आ पहुँचा हूँ!

सभी ऊपर आए। विक्तर नन्दू के साथ नहाने गया। पाँच ही मिनट के अन्दर चाय-जलपान आ पहुँचा। उधर ताक कर शांतनु ने कहा, लग रहा है, मारे भूख के अब तक छटपटा रही थी।

ईशानी लपक कर गई। शांतनु का कुरता-पाजामा, तौलिया-साबुन ले आई। चप्पल को लाकर जतन से सामने रख दिया। उसके बाद हाथ धोया। अपने हाथ से उतने ढंग से प्लेट में जलपान सजाया। उसके बाद चाय ढालने लगी। बोली मैं किसी भी तरह से तेरा मन न पा सकी।

शांतनु खाने लगा। कहा, तूने मेरा मन पाने की कभी इच्छा भी की थी। मिहिजाम की बात याद कर, तूने तो मेरी मदद चाही थी।

—तू तब से उसे मेरा सही किया हुआ तमस्सुक मानता आ रहा है? आदमी के मन को तू सब के साथ बांधना चाहता है? इसीलिए मैंने तुझे अपने जीवन का इतिहास नहीं बताना चाहा था। जानती थी, तू मुझसे सदा नफरत ही करेगा।

—नफरत ! शांतनु अवाक् ।

—और नहीं तो क्या,—ईशानी ने काँपती आवाज़ में कहा, एक बेकसूर लड़की अपनी जिन्दगी में एक भूल कर बैठी थी, उसके लिए वह तमाम जिन्दगी अपने माथे पर अपमान ढोती फिरेगी ? उसके लिए क्षमा-दया विचार कुछ भी नहीं है ?

प्याला रख कर शांतनु ने कहा, तेरी आँखों में आँसू क्यों आ गया ? मैंने तेरा क्या किया है, ईशानी !

—कुछ भी नहीं किया, यही तो अपमान है ! तू हँसता हुआ मुँह फेर कर रह गया, इससे बड़ी चोट और क्या हो सकती है ? तेरी उदासीनता, तेरी निर्लिप्तता, तेरा स्वभाव-संयम—मैं क्या सदा पत्थर पर सिर मारती रहूँगी ? मेरा सर फटकर लहू बहेगा और तू समवेदना जताएगा ? तुझ पर कोई असर नहीं ? कोई मोह, कोई माया नहीं है ?

शांतनु जरा हँसा । बोला, तुझे माथे चढ़ा कर रात-दिन थेई-थेई नाचने से तू खुश होती, क्यों ? पुरुष की असंयत आत्म-विस्मृति देखे बिना शायद तुझे चैन नहीं आती ?

ईशानी शांत हुई । बोली, मेरे कहने का क्या यही मतलब है ?

उत्तेजित होकर शांतनु ने कहा, और फिर क्या कहा चाहती है, तेरे नाच के साथ ताल दूँ ? घुंघरू बन कर पैरों से लगा रहूँ ? जूड़े में अड़हूल खोंस दूँ ? सोने के कमरे में जाकर ऊधम मचाऊँ ? या कि दिन भर मन के लेन-देन की लुक्का चोरी खेल में—'मतवाले पागलपन में, धरती औ नभ तल में—शोर-रोल—दे दोल, दे दोल, दे दोल !' किया करूँ क्या चाहती है तू ?

ईशानी ने कहा, अब तक वहाँ क्या कर रहा था ?

इस तरह की कैफियत पूछने से शांतनु सदा बिगड़ जाता है । बड़े ही तीखे गले से वह बोल उठा, नन्दू को बुलाकर पूछ ले, ट्रेन में जो मिली थी, उस खूबसूरत महिला से बैठा बातें कर रहा था !

—नाम क्या है महिला का ?

—क्या नाम है या क्या पता है, इससे क्या करना है, औरत है, बस !

—कौन है वह ?

शांतनु चीख उठा, तेरी सौत !

ईशानी इस पर फिक् से हँस पड़ी । बोली, तूने उससे
क्या ?

—कुमारी होती तो व्याह करने का लोभ दिखा बैठता।

—ओ, समझ गई। तू मुझी को खरोंच लगाना चाहता है। लेकिन एक बात का मुझे यकीन है, संसार की किसी स्त्री के नाखून की खरोंच तेरे सख्त पत्थर पर कभी कोई लकीर नहीं बना सकेगी।—ईशानी बोली, तू चाहे जिस स्त्री से भी घनिष्ठता कर मुझे कोई भय नहीं है।

शांतनु हँसा—फिर तुझे भय किस बात का है ? तेरे नाच की ठुमक में दोनों पैरों को प्यार आ घेरते हैं—तुझे क्या फिक्र पड़ी है !

इस बार ईशानी ने शांत स्वर में कहा, बेचारी स्त्री पर बार-बार आघात करके तुझे उल्लास क्यों होता है, बता तो ?

शांतनु ने उधर देखा। हँस कर बोला, सारा दिल्ली शहर जिसके लिए पागल है, वह स्त्री है, यह तो देख ही रहा हूँ; लेकिन चारों ओर असंख्य उपासक और भक्तों की यही जमात देखकर अपने को बेचारी क्यों कहती है ?

ईशानी ने कहा, तू नासमझ है, इसीलिए पूछता है। जन-समुद्र में जो मन के आदमी को खोजना चाहते हैं, वे बच्चे हैं। मैं स्त्री हूँ, पुरुष नहीं !

अन्दर टेलीफोन बज उठा। उधर से जाकर नन्दू ने टेलीफोन उठाया। उसके बाद रिसीवर रखकर बता गया, रमेन बाबू बुला रहे हैं।

ईशानी ने जाकर टेलीफोन उठाया। रमेन बाबू ने बताया, रीगल में बेहद भीड़ है। अगले चार दिनों के सारे टिकट बिक गए। टिकटों की काला बाजारी चल रही है। तुम आज वहीं रिहर्सल कर रही हो न ?

ईशानी ने सिर्फ इतना ही कहा, हाँ। आप फिक्र न करें।

रमेन बाबू ने कहा, एक बात और, तुम्हारे सोलो नाच के साथ शांतनु बाँसुरी बजाने को राजी है, बता सकती हो ?

—रुपया लिए बिना शांतनु राजी नहीं होगा।—ईशानी ने जवाब दिया।

अपना नाम सुनकर शांतनु उस कमरे में जा खड़ा हुआ। रमेन बाबू ने कहा, शांतनु वहाँ हैं ?

ईशानी बोली, नहीं। वह बाहर गए हैं। अभी तक लौटे नहीं।

—तुम्हारा क्या ख्याल है ? शांतनु कितना रुपया माँगेगा ?

—बाँसुरी वह कहीं नहीं बजाते। मगर मैं अनुरोध करूँ तो शायद राजी हों। आप कितना देना चाहते हैं, कहिए, मैं उनसे कह देखूंगी।

—रोज पचास रुपए समझो।

—ठीक है। उनसे पूछ देखूँगी। लेकिन मुझे नहीं लगता कि इतने में वह राजी होंगे।—ईशानी ने कटाक्ष के साथ एक बार शांतनु से आँखें मिलाईं।

रमेन बाबू ने कहा, तो सौ रुपये रोज। कहे रखता हूँ। क्योंकि मीठी बाँसुरी नहीं होने से तुम्हें नाच में रुकावट आएगी। लेकिन कह रखता हूँ, मेरी ओर से जितना कम करा सको। कल सवेरे फिर फोन करूँगा।

—अच्छा।—ईशानी ने फोन रख दिया।

शांतनु ने हैरान होकर कहा, अरे, कहती क्या है? रोज सौ रुपए? इतने रुपए एक साथ मैंने कभी देखे नहीं। और तू हँस रही है? पचीस रुपए मिल जाते तो धन्य हो जाता मैं। अपने शौक की चीज खरीद कर भला-बुरा खाकर, तीसरे दरजे का टिकट कटाकर मजे में कलकत्ता लौट जाता।

—मुझे छोड़ कर अकेला चला जायगा?

—तू तो मोटी रकम पाकर डैने फैलाकर हवाई जहाज से चली जायगी। तुझे किस बात की चिंता है? जब तक जवानी है, तब तक राज भोग। ईशानी ने कहा, लेकिन जिस दिन बूढ़ी हो जाऊँगी, कौन देखेगा?

हँसकर शांतनु ने ईशानी को एक बार एड़ी-चोटी देखा। बोला, ठहर, पुरखिनपना मत कर। पुराण में, महाकाव्य में, कहीं भी तूने सुना है कि उर्वशी-मेनका बूढ़ी होती है?

ईशानी दूसरे कमरे में चली गई। कुछ देर के लिए गायब। इस बीच शांतनु ने नहाकर रेशमी कुरता और पाजामा पहन लिया। नन्दू उसे एक ग्लास लेमनजूस पिला गया। उधर अपने कमरे में विवतर अपनी पढ़ाई और चित्र बनाने में जुट गया।

ठीक इसी समय अपना रेशमी खालता पाजामा और टाईट बोडिस पहन कर ईशानी आई और बोली, और देरी नहीं, जल्दी चलो रमेन बाबू हड़बड़ा रहे हैं।

एक बहुत बड़े हाल में जाकर शांतनु दंग रह गया पूरे हाल में पर्शियन कार्पेट बिछा था। चारों तरफ की दीवालों पर सुनहले फ्रेम में बड़े-बड़े तैल चित्र लटक रहे थे। देश के बड़े-बड़े नेताओं के चित्र, उन्हीं के बीच-बीच में तरह-तरह के विदेशी चित्र। चार-पांच आदमकद अ

उनमें किसी भी आदमी की पूरी परछाईं पड़ेगी। इधर-उधर शांतनु ने देखा, हाल भर में तमाम फूलों के बेशुमार गुलदस्ते, ढेरों सफेद और लाल कमल, गुलाब के गुच्छे, सूर्यमुखी के झुक्के, और भी कितनी फूल-लताएँ। सारा हाल मीठी खुशबू से महमह। ईशानी ने हरी रोशनियाँ जला दीं। सारा कमरा लमहे में एक स्वप्नलोक बन गया।

शांतनु ने पूछा, यह कमरा कब सजाया?

ईशानी ने कहा, एक ट्रक माल लाकर पचीस आदमी घंटे भर में कमरे को सजा गए। इसकी जरूरत थी, मैंने आयोजकों को कहला भेजा था।

—क्यों?

सारे बदन में लहर-सी उठाकर ईशानी हँसी। बोली, आज मेरी सुहागरात जो है।

शांतनु ने कहा, सुहागरात का दूसरा भागीदार कहाँ है?

ईशानी बोली, दईमारी के नसीब में क्या कोई गैर-कानूनी पति भी नहीं जुटेगा? ले-ले, जल्दी से बाँसुरी सम्हाल, वह, वहाँ रक्खी है।

गुनगुन गाकर ईशानी ने नाच का उपक्रमणिका बता दी। शांतनु ने बाँसुरी में सुर बाँधा।

सारी बत्तियाँ जल रही थीं, मगर सारा कुछ गोधूलि-सा धुँधला। दोनों साफ दिखाई दे रहे थे, मगर निश्चित-से नहीं—सिर्फ छाया हिल रही थी। सृष्टि के आदि रहस्य तल से कमल की पंखड़ियों को खोल कर अपनी प्राकृत देह लिए पाताल कन्या निकल रही थी। निगाहों में जीवन मृत्यु का निगूढ़ रहस्य। पाताल कन्या के प्राणों के इशारे से देवलोक में शंख की ध्वनि उठी। बाँसुरी में पहले कभी नहीं सुने गए सुर में वह कहा जा रहा था, पृथ्वी का जन्म हुआ!

उस पृथ्वी की प्राण-प्रतिमा हैं श्रीमती राधा। बाँसुरी की मीठी तान ने राधा के हृदय को प्रकाशित करके बताया, वह चिर वियोगिन है। विश्वसृष्टि का पहला भाष्य है—क्रन्दसी। लाखों-लाख युग की रुलाई लिए क्रन्दसी! वेदना से सृष्टि का सूत्रपात हुआ। मिलन की कामना से नित्यकाल की वियोगिन अपने आँसू से उनकी कामना कर रही है, जो पुरुषोत्तम हैं! बाँसुरी की तान की आकुलता में बार-बार यही बात उभर कर आ रही थी। प्रत्येक प्राणी के अन्तर में मिलन की यह आकुल-व्याकुलता चिरस्थायी है—उसी व्याकुलता को न बुझने वाली दीप-शिखा-

सी जगाए रखने के लिए अनन्त-वियोग-वेदना पर पुराण-महाकाव्य की सृष्टि हुई। कौन नहीं जानता, तीर विंधे क्रौंच के लहू-लेखन से अनादि अन्तहीन विरह-काल की उत्पत्ति है! लेखन नाच के छन्द से सुर मिलाकर श्रीमती के आनन्द को भी प्रकट किया जा रहा है, अनागत मिलन की जय का उल्लास। हर पाँव में खुशी की थिरकन हर आँख में आँसू। विरह-मिलन का वह प्रलाप बाँसुरी की मधुर तान में उमड़ रहा था।

सारी दिल्ली महानगरी बाहर रह गई। जो बेशुमार दौलत दे रहे हैं, अपार यश और प्रतिष्ठा, अनगिनती लोगों की प्रीति और श्रद्धा-सामर्थ्य, वे सब के सब जीवन में जो कुछ इच्छित है जो अभिलषित है, आनन्द के वे हजारों उपकरण—दे रहे हैं, ठुकराए-सा बिखर बाहर रहेगा, भीतर बैठी है इन्द्र की सभा, नील मायालोक में नन्दनवासिनी के नृत्य की ताल-ताल पर आँसू के मोती गर्म गाल के कोने-कोने में झड़ रहे थे। वासना-विवश देहवल्लरी की निढाल विह्वलता में लावण्य का मीठा मरण थर-थर कर रहा था।

काँपते कलेजे के रक्त की पेंग नर्त्तकी के नाच के छन्द-छन्द पर लग रही थी। वेदना के साथ वासना, वासना के साथ उमड़न—यह सब फूलों के गुच्छे से झुकी माधवी लता को जकड़े हुई थी। निचुड़े द्राक्षारस की तरह कपाल से पसीने की बूँदें गाल के बगल से गर्दन के नीचे ढुलक रही थीं। ये बूँदें वैदूर्यमणि की तरह झलमला रही थीं।

पुरुषोत्तम की नित्य बाँसुरी सहसा थम गई। शांतनु ने एक ही बटन दबा कर बहुत सारी बत्तियाँ जला दीं। ईशानी कमरे से भाग गई।

दस

बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन की जरूरत नहीं। रीगल विल्डिंग्स के आस-पास बेहद भीड़ थी। कनाट प्लेस में साँझ को सवारियों की भीड़ यों तो रोज ही बढ़ जाती है, तिस पर रीगल में यह नई सनसनी। रोशनियों से चारों ओर चकाचक। मखमली साज और बिजली के घूमते कौशल से रीगल को सजाया गया था। काउंटर में टिकट नहीं बचा था, अन्दर की रोशनी बुझाकर बाबू लोग भी प्रेक्षागृह के कोने में जा खड़े हुए थे। बाहर पोस्टर, स्ट्रीमर, प्रचार-पुस्तक, विज्ञापन और हैंडबिल से सारा रास्ता पट गया था। रीगल के पोर्च के नीचे उत्सुक एक भीड़ झाँक-ताक रही थी। रास्ते के उस ओर आज टैक्सी वालों का उत्सव-सा हो रहा था।

अन्दर गीत की महफिल। रमेन बाबू और उनके सहयोगियों की व्यवस्था और ईशानी का निर्देश—इसके अलावा और किसी का हाथ नहीं। माया-कानन तो एक कल्पना है, वह पकड़ से परे है। उसे वास्तविकता में बदलने के लिये कवि-कल्पना की ही तो जरूरत है। पीछे से इस सम्मोहिनी लोक का वर्णन कौन कर रहा है? कौन चला रहा है यह जादू-मन्तर?

झूठ को सच के रूप में पाने का आनन्द! शिक्षित और रसिक लोग अकुला कर खुशी-खुशी ठगे जाने के लिए आए थे। यदि पूर्णतया ठगा नहीं सके, तो आलोचना होगी। रुपया खर्च करके वे अगर नासमझ न बन सके तो दुखी होंगे। मिथ्या यदि मनोरम हुई तो तालियाँ मिलेंगी। ये सब रुपए देकर ठगाने आए थे, घर लौटेंगे खाली जेब, इसी में खुशी!

सन्नाटे में पड़े प्रेक्षागृह में बैठे सैकड़ों की मुग्धदृष्टि मंच की ओर टकटकी लगाए थी। वे लोग वही चाहते हैं, जो मिलने का नहीं। वही रस चाहते हैं, जो रसातीत है। सम्मोहन विद्या ही शायद रंगमंच की जान है।

अँधेरे प्रेक्षागृह में शांतनु धीरे-धीरे यहाँ-वहाँ घूमता फिर रहा था। वह सभी की आँखों से ईशानी को देखना चाहता था। बाहर की नजर से भीतर के आदमी को जानना चाहता था। कामना कि आराधना—क्या? आनन्द का भोग या लोलुपों का लेहन? ईशानी माया के मोहलोक की

सृष्टि करेगी कि वासना की अग्निशिखा जलाकर पतिंगों को जला मारेगी ? अपनी आत्मिक शक्ति से वह नाच के छन्द में विश्व की निगूढ़ लीला को प्रकट करती है कि शारीरिक कसरत के कौशल से लुभाए दर्शकों की पूंजी हजम करके भाग जाती है ? शांतनु को बहुत से प्रश्नों का जवाब चाहिए था।

मंच पर अरण्य लोक उभरा सेमल की घनी छाया घिरी। अरण्य के पेड़ तले योग में आसीन ऋषि-मुनिगण तप के क्लेश से पत्थर हुए-से, उलझी जड़ों की भीड़ से उनका कंकाल भरा हुआ। घने वन में चांदनी की आभा। कभी कहीं रात जगी चिड़ियों का कूजन। ऐसे में दूर से आता हुआ नारी-कंठ का संगीत। मदन और वसंत का वन-वन में खेल। वनवासी पांडव—अर्जुन उसी जंगल से जा रहे हैं, अचानक मीठे कंठ का अनुराग सुना। उन्होंने उस कंठ का अनुसरण किया। कुछ ही दूर पर वन में राजकुमारी चित्रांगदा। नृत्य विभोर है। आड़ में खड़े होकर सव्यसाची ने विस्मय और आनन्द के अमृत का पान किया।

अचानक शांतनु ने दबे गले की पुकार सुनी। शांतनु ने मुड़कर देखा। इशारे से दत्त चौधरी और उनकी स्त्री बुला रही थीं। यह याद नहीं था कि वे लोग आज आएंगे। शांतनु जा कर उन लोगों के पास खड़ा हो गया। वे लोग किनारे ही बैठे थे। बातचीत करने की असुविधा नहीं थी। दबे गले से वे बोले, आपसे फिर भेंट हो गई, बड़ी खुशी हुई।

घूम रहे हैं, जगह नहीं मिली ?

—सीट नहीं है, यों ही आया हूं।

—ओ, जान-पहचान है ?—उनके गले में उल्लास था।

शांतनु ने कहा, मैनेजर से मामूली जान-पहचान है।

दत्त चौधरी ने कहा, गजब लग रहा है साहब। मैंने ऐसा कभी नहीं देखा।

स्त्री ने कहा, यही ईशानी राय है न ? अनोखी सुन्दरी है ? नाच देखने से लगता है, शरीर में कहीं हड्डी ही नहीं है। जैसा चाहती है, मोड़ती है मरोड़ती है। कैसी सुन्दर है।

दत्त चौधरी ने कहा, बहुत ठीक। नाच में चेहरा भी फब रहा है।

अंधेरे में वे दोनों शान्तनु की आंखों को देख नहीं पा रहे थे।

स्त्री ने कहा, अच्छा मिस्टर चौधरी इस महिला से बातचीत [illegible] जा सकती ? मैनेजर तो आपके मित्र हैं !

उत्सुक दत्त चौधरी ने कहा, ये क्या बाहर के लोगों से बात नहीं करतीं ?

वहाँ और खड़ा होना सम्भव नहीं था। आस-पास के लोगों को खोज हो सकती है। और फिर तुरत शांतनु की पुकार होगी। उसने रुपए लिए हैं। उसके अपने खाते में बैंक में वे रुपए जमा हुए हैं। अभी ही जाकर उसे बाँसुरी बजानी है।

शांतनु ने कहा, जरा देर बाद आकर आपको बताएँगे।

—हम लोग लेकिन उम्मीद में रहे।

गरदन को जरा झुका कर शांतनु दरवाजे की फाँक से निकल गया। उसके जाने की तरफ ताक कर महिला ने अपने पति के कानों में कहा, नाच देखकर तुम बिलकुल पागल हो गए हो! मगर तुमने बताया तो नहीं, ऐसी स्त्री तुमने कहाँ देखी थी ?

दत्त चौधरी तन्मय होकर मंच की ओर देख रहे थे। बोले, कहाँ देखा यह तो ठीक नहीं कह सकता, लेकिन बहुत कुछ वैसी ही है।

कुछ ही देर में बाँसुरी का सुर सुनाई पड़ा। सारा आवह-संगीत और सहयोगी बाजे एकाएक चुप हो गए। वंशी की धुन से चित्रांगदा चौंकी—सम्मोहित-सी उसने अपने नाच को उस धुन से मिला लिया। आँसू की बूँदें चित्रांगदा की आँखों में जम गईं। आड़ में करीब ही बैठे रमेन बाबू की मुग्ध आँखें अपलक हो रहीं। नाचते-नाचते चित्रांगदा बाहर निकल गई—वनवासिनियाँ ऊँचे सुर में गाती हुई उसकी खोज में आईं और फिर नाचने लगीं।

बीच में दो गीतों के साथ नृत्य उसके बाद अर्जुन का विरह। सो हाथ में समय था। ईशानी सिल्क के एक झब्बे में अपने को लपेटे आ खड़ी हुई। पूछा, बीच-बीच में तू निकल क्यों जाता है रे ?

शांतनु ने कहा, कौन क्या कहता है, यह जानना जरूरी है।

—लेकिन आज मुझे कुछ झिझक है, प्राणों को उँड़ेल नहीं पा रही हूँ।

—गजब! यह कैसी बात!

ईशानी ने कहा बिक्तर को नहीं लाता तो ठीक था।

शांतनु ने कहा, कहाँ, बिक्तर तो नहीं आया है। उसे तो नंदू के पास रख आया हूँ!

—खैर गनीमत है। अब कोई झिझक नहीं। हँसकर ईशानी ने फिर से कहा, अब लाज, भय, मान, सब छोड़ सकूँगी। अब तू पृथ्वी को पुकार

कर कह दे, सब आकर कवि कल्पना की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति को देख जायँ।

शांतनु ने कहा, यह तो अहंकार की बात है।

—बेशक! लेकिन तू एक दिन मेरे सारे अहंकार को मिट्टी में मिला-एगा, इसीलिए तेरे सामने कह दिया! मेरा जो भी भला-बुरा है, गौरव-पूर्ण या कलंकित है। पाप-पुण्य है—इन सब कुछ के सहित जो मैं हूँ, उसी मैं को अंजलि दूँगी।

प्रेक्षागृह में तालियों की गड़गड़ाहट। उधर ताक कर शांतनु ने कहा एक आदमी से परिचय करेगी?

ईशानी ने पूछा, कौन है?

—वही जो कल कहा था, तेरी सौत।

—यह जला नसीब फिर एक बार तो नहीं जलेगा न?

शांतनु ने कहा, किसका? तेरा कि उसका?

—मेरा ही मान ले।

—तो फिर मैं तुझे अभय देता हूँ, तेरा सिंहासन अटल रहा।

ईशानी ने अभिभूत आँखों से शांतनु की ओर देखा। शांतनु स्थिर शांत और संयत था। ईशानी एक डग बढ़कर कुछ कहना चाहती थी, लेकिन नहीं, यहाँ नहीं। वह सिर्फ बोली, अविश्वासी, मैं तेरे मन की बात जानती हूँ। अपने ही नाखून से कलेजे की शिरा-उपशिरा [illegible] में खरोंचे बिना तेरी पूजा नहीं हो सकती—ऐसा खौफनाक है तू। [illegible] जा, भाग जा। गाना खत्म हो जाने दे, तो सौत को अंदर ले आना। बात करूँगी।

ईशानी ने बदन पर से फिर झव्वे को उतार [illegible] मुस्कुरा कर पर्दे के पास से सीधे मंच पर चली गई। प्रेक्षागृह में [illegible] थी। उसके आते ही सहसा सब शांत हो गया। [illegible] दर्शक मंत्रमुग्ध थे।

प्रदर्शन खत्म हुआ। [illegible] उतनी बड़ी भीड़ की आँखें मोह से आच्छन्न थीं। [illegible] मानो घर लौटने की [illegible] नहीं खोज पा रही थी। [illegible] शोरगुल सुनाई पड़ने [illegible]

प्रेक्षागृह जब खाली हो गया [illegible] चौधरी के [illegible] खड़ा हुआ। शांतनु [illegible] —हिताहित [illegible] नहीं। उसको यह [illegible] नाट्य में [illegible] को ले आएगी, उसे [illegible] उसे अपने [illegible] सत्य करना है। [illegible] है, उसे ईशानी के [illegible]

को जानना है। शंका, अविश्वास, गहरी कमजोरी, जाप की माला में पहले प्रेम का मंत्र, प्राणों के देवता के नैवेद्य की अंजलि, स्त्री के हृदय का अनोखा रहस्य—यह सब जाने बिना ईशानी से उसका अपना संपर्क भी सत्य नहीं होगा। जानने से ज्ञान—शांतनु का वह ज्ञान जिसमें संशयाकुल न रहे।

—चलिए—शांतनु बुलाकर उन लोगों को भीतर लिवा गया। वे लोग खुशी-खुशी शांतनु के पीछे-पीछे चले।

लकड़ी के रंगीन सिंहासन पर चित्रांगदा बैठी थी—माथे पर अभी भी मुकुट रक्खा ही हुआ था—हजारों हीरे-मोती जड़ा पन्नियों का मुकुट —बाजार में जिसकी कीमत पाँच रुपये से ज्यादा नहीं होगी। कपाल से तर-तर पसीना बह रहा था, उस पसीने से रंग धुलता जा रहा था। होंठ लाल रंग से रँगे, आँखों में माया-काजल। लज्जा के आवरण सीमा-रेखा से बाहर नहीं गए थे—आज ईशानी, भय, लज्जा, मान किसी भी चीज को मानने वाली नहीं थी।

कुछ दूर पर एक टेबुल-फैन घूम रहा था, उसी की हवा में ईशानी अपनी थकावट मिटा रही थी।

शांतनु ने उन लोगों को ले जाकर सामने खड़ा करके ईशानी को आवाज दी। ईशानी ने आँखें खोलीं। उन लोगों को देखते ही उसने झट-पट उस झब्बे को उठाकर बदन पर डाल लिया। उठ खड़ी हुई। मुस्करा कर नमस्ते करती हुई उसने दत्त चौधरी को गौर से देखा।

शांतनु ने कहा, यह आज कई दिनों से थकी हुई हैं।

सहसा उमग कर वह महिला बोल उठी, यह आशा सपने में भी नहीं थी कि आपके कभी इतने निकट से दर्शन कर पाऊँगी—उफ्, कितनी खुशी हो रही है।

दत्त चौधरी शायद ईशानी को बिलकुल नहीं पहचान सके, क्योंकि साज-बाज ने उसे एकबारगी छिपा सा रखा था। शांतनु हर पलक हर पल एक-एक रुँधी साँस को गिन रहा था। उसके पैरों के नीचे भूकंप-सा हो रहा था। जमीन काँप रही थी।

दत्त चौधरी ने कहा, मेरी स्त्री ने गलत नहीं कहा। आज हम सबको बड़ा गौरव है! हम सौभाग्यशाली हैं।

ईशानी एक ही पल में पहचान गई थी, लेकिन उसकी आँखों में कोई भाषा नहीं थी—वह सिर्फ नवेली कुमारी जैसी ताक रही थी।

दत्त चौधरी कहते जा रहे थे, आपका नाम, आपका यश, देश-देश में आपकी इज्जत—सच पूछिए, तो आप जिस परिवार की लड़की हैं, उसका भी परम सौभाग्य है।

महिला ने पूछा, मेरी उत्सुकता के लिए मुझे माफ करेंगी, आपने व्याह किया है?

ईशानी की निगाहें दत्त चौधरी के चेहरे पर टिक गईं। गरदन हिला कर उसने कहा नहीं।

—नहीं किया है?—उस महिला के गले में कैसी तमक!

ईशानी की गड़ी हुई आँखें दत्त चौधरी के चेहरे पर से नहीं हटीं। उसके उन्नत माथे पर का मुकुट, दमकता हुआ व्यक्तित्व, उसके अंग-अंग में प्राकृत यौवन की दौलत जो रग-रग से बिखरी पड़ती थी, देख महिला बोली, व्याह नहीं करके अच्छा ही किया है आपने।

अपलक आँखों देखती हुई लड़खड़ाती हुई आवाज में ईशानी सिर्फ इतना ही उच्चारण कर सकी, भूल की है।

उसके ढीले पड़े हाथ से छूट कर झब्बा नीचे गिर गया।

—क्यों भला?—कोट-पैंट पहने दत्त चौधरी को जरा कौतूहल हुआ।

महिला बोलीं, यह कह रहे थे, इन्होंने ठीक आप जैसी लड़की को कब कहीं तो देखा था। कहो न जी, यही तो नहीं हैं?

—नहीं-नहीं, वह कोई बात नहीं। वह और बात है।—दत्त चौधरी जरा शर्मा कर टाल गए।

बीच में जब शांतनु ने टोका, अब यह ग्रीन रूम में जाएँगी। ठीक है, फिर भेंट होगी। यह बहुत थकी हुई हैं।—यह कहकर हाथ में बाँसुरी लिए वह खिसक पड़ा।

इतने में हड़बड़ाते हुए रमेन बाबू आकर हाजिर हो गए। उन्हें देख-कर अतिथिगण विदा हुए। जाते-जाते वह महिला गद्‌गद स्वर में बोलीं, आज की बात सदा याद रक्खूंगी। आपके चरणों की धूल ले लूं।

—हाँ-हाँ, ठीक ही कहा। इतनी बड़ी कलाकार के चरणों की धूल से मैं भी वंचित होना नहीं चाहती।—दत्त चौधरी ने उत्साह के साथ सर झुकाया। और पति-पत्नी दोनों ने ईशानी के चरणों की धूल ली। नमस्कार करके चले गए। रमेन बाबू ने उनकी ओर एक बार ताक कर मारे खुशी के उछलकर कहा, दिल्ली टेकन् बाइ स्टॉर्म! इतनी कामयाबी मिलेगी, यह कल्पना भी नहीं कर सका था। अरे रे, हुआ क्या? ईशानी!

क्या हो गया ?

सिंहासन पर से लुढ़क कर ईशानी का अचेत शरीर जमीन पर गिर पड़ा।

—हाय राम ! यह तो बेहोश हो गई। ईशानी बेहोश हो गई !

डाक्टर-डाक्टर कहते-कहते रमेन बाबू पागल की तरह दौड़ पड़े।

हाथ में बाँसुरी लिए शांतनु फिर आ खड़ा हुआ। इधर-उधर ताक कर उसने ईशानी के माथे का मुकुट और अंगों के अलंकार खोल लिए। सिंहासन को हटाकर ईशानी को जतन से सीधे लिटा दिया। उसके बाद उस महीन रेशमी झब्बे से इस खिले शतदल के सारे शरीर को स्नेह से ढक दिया। टेबुल-फैन को उसकी तरफ और जरा घुमा दिया। मद्धिम रोशनी में बेबस पड़ी-सी देह-लता गजब की लग रही थी। अँजुरी में पानी लाकर उसने ईशानी के मुँह और माथे पर डाला।

हड़बड़ाती हुई लड़कियाँ और लड़के दौड़े चले आ रहे थे। शांतनु ने उन्हें रोका। कहा, कोई जरूरत नहीं है। आप लोग कोई भी उसके पास न जाएँ। वह आप ही ठीक हो जायगी।

—डाक्टर आ रहा है।

—आए, तो लौटा दीजिएगा। डाक्टर की जरूरत नहीं है।

सभी अवाक् हो गए। वह सब और भी अवाक् रह गए, जब देखा कि वहीं बैठकर शांतनु ने बांसुरी में फूंक मारी। यह आदमी तो गजब का है। अकल से भी वास्ता नहीं ! यह कोई बाँसुरी बजाने का समय है ? इसके चेहरे पर जरा अकुलाहट भी नहीं। अजीब निर्दयी है। किसी ने कहा, दिमाग कुछ खराब है। कोई बोला, स्क्रू ढीला है !

दौड़ते हुए रमेन बाबू फिर आये।—कैसी है ईशानी ? मुसीबत तो नहीं आएगी ? कोई चिंता तो नहीं है न ?—वह हाँफ रहे थे।

हाथ बढ़ाकर शांतनु ने निश्चिन्तता का इशारा किया।

पाँचेक मिनट बाद शांतनु ने जाकर देखा, ईशानी थकी हुई-सी उठ बैठी है। जाने कौन उसे एक ग्लास शरबत दे गया। हँसकर शांतनु ने कहा, बड़े मीठे सपने में डूब गई थी, न रे ?

मुस्कुरा कर ईशानी ने सिर्फ ताका। शांतनु ने बढ़ कर उसका हाथ पकड़ा। कहा, चल, अब घर चलें।

चल।—झब्बे को ओढ़ कर ईशानी ग्रीनरूम की ओर चली गई।

उस दिन काफी रात गए ईशानी जाकर विवतर के बिस्तर के पास खड़ी हुई। बड़ी ही धीमी नीली-सी रोशनी जल रही थी, बड़ा ही हलका-हलका पंखा चल रहा था। रोते-रोते ईशानी की आँखें सूज गई थीं, लगता था, जैसे प्रायश्चित्त की रुलाई हो, या कि शायद गहरी पीड़ा की। बिछौने के पास डूबते हुए चांद की चाँदनी आकर पड़ रही थी। निष्पाप, निर्दोष बालक अपने जीवन की सारी सरलता और पवित्रता लिए बेखबर सो रहा था। घिनौनी आत्मग्लानि और धिक्कार भरे पछतावे में उसका जन्म हुआ,—इन बातों को ईशानी ने मानो नये सिरे से जाना। अपार घृणा से उसका वात्सल्य जर्जरित था, घृणित लज्जा से उसका माता का हृदय मलिनता के पंककुंड में डूबा हुआ था। इस बात को उससे ज्यादा और कोई नहीं जानता। उसे याद है, एक दिन भी उसने अपना दूध उसे नहीं पिलाया, एक क्षण के लिए भी उसे अपनी गोदी में नहीं उठाया, कभी भी उसने बच्चे के लिए शुभकामना नहीं की।

ईशानी देर तक चुप खड़ी रही। अँधेरे में खड़ी रहकर यह बात आज नहीं कही जा सकती कि उसके खोये हुए वात्सल्य का नये सिरे से जागरण हो रहा है। दस साल से जिस बच्चे को उसने कभी भी स्वीकार नहीं किया, भूल कर भी जिसे कभी अपने करीब नहीं सोचा, आज अचानक एक घटना घट जाने से वह डाँवाडोल होकर उसे अपनी छाती से चिपका कर जोरों से रो पड़ेगी—ऐसी झक्की, मुग्ध और अंधी माँ वह नहीं है।' वह सब कुछ जानती है, मगर बेताब आँसू आज किसी भी तरह से रोके नहीं रुक रहे थे। यह निर्दोष नाबालिग लड़का किसी भी प्रकार से कभी सामाजिक स्वीकृति का हकदार नहीं होगा, पिता-माता के होते हुए भी उसे आजीवन जन्म के कलंक का बोझ चुपचाप ढोते रहना पड़ेगा—उस बालक के माथे पर भविष्य के उस बोझ की चिन्ता से ईशानी के गालों पर से फिर आंसू की धारा उतर आई। वात्सल्य की वेदना नहीं, अंधे मातृत्व की भूखी वासना नहीं—बल्कि पाप रहित पुण्यजन्म के ऊपर झूठे कलंक का एक दुस्सह बोझ लाद कर उस निष्पाप, बालक को वह दुनिया की राह पर छोड़ दे रही है—इस धिक्कार से ईशानी का जीवन क्या जल कर खाक नहीं हो जायगा? कंठ तक आये गरल की जहरीली [illegible] साँस, अपने आपको ठगने का यह घृणित चित्त-विकार [illegible] मन [illegible] जमी हुई मलिनता, पछतावे का रोज-रोज का हाहाकार—[illegible] सब [illegible] साथ ईशानी की शापग्रस्त जिन्दगी कब खत्म होगी? [illegible] वह

रोज-रोज शांतनु के ही सामने कैसे खड़ी होगी ? अपना सारा पाप, अन्याय, असत् प्रवृत्ति, असंयम, अपनी सारी गौरवहीनता की जिम्मेदारी इस बालक के कंधे पर यूँही थोपकर वह अपने सुख की खोज में शांतनु को लेकर भाग जाएगी ? और, इतने बड़े अनाचार का नतीजा क्या शांतनु के लिए भी अकल्याण कर नहीं होगा ?

अचानक फर्श पर दोनों घुटने टेक कर वह विक्तर के सर के पास मुँह रखकर फफक-फफक कर रोने लगी। दीवाल घड़ी में रात के दो बजे।

पीछे के दरवाजे के पास शांतनु आकर खड़ा हुआ ! रुँधी रुलाई का आवेग। ईशानी के सर्वाङ्ग में उमड़ रहा था। शांतनु काठ का मारा-सा ताकता रहा। इस दृश्य की एक स्वाभाविक महिमा है, जो उसके लिए अजानी है। लेकिन निष्कलुष बालक के स्वाभाविक आकर्षण ने आज जो उसकी उदासीन माँ को वात्सल्य की पीड़ा से इस कदर रुलाया, इसके लिए शांतनु के मन में कुछ चैन-सी भी मिली।

शांतनु कुछ देर चुप रहा और फिर जैसे आया था, वैसे ही चुपचाप चला गया। और जाकर निश्चिन्त होकर बिस्तर पर लुढ़क पड़ा।

वह कब तक सोया रहा पता नहीं। लेकिन पुकार सुनकर उसने जग कर देखा, नहा-धोकर विक्तर मुस्कुराता हुआ सामने खड़ा है। यह लड़का कभी भी नियम में इधर-उधर नहीं करता।

—समझे मिस्टर चौधरी, आपको एक बड़ी मजेदार बात बताने आया हूँ।

हँसकर शांतनु ने कहा, जल्दी कह डालो, दम घुटा जा रहा है।

हहा-हहा हँसकर विक्तर ने धीरे-धीरे कहा, मम्मी कल रात कहाँ सोई थी, पता है ? मेरे पास। हाँ, मेरे ही तकिए पर सर रख कर ! सिलविया होती, तो इतना हँसती कि क्या बताऊँ !

—सिलविया हँसती क्यों ?

—हम लोग कभी क्या एक बिस्तर पर सोते हैं ?

शांतनु ने कहा, बेशक बड़े मजे की बात है। मम्मी ने शायद सोचा हो, तुम उसके छोटे लड़के हो !

विक्तर ने कहा, यह कैसे हो सकता है ? मम्मी ने तो सपना नहीं देखा है ! मैं सो रहा था, तब चुपचाप आकर सो गईं। मैंने देखा तो उछल कर भाग गया।

शांतनु हँस उठा, अच्छा किया। मम्मियों का स्नेह साँप के फुफकार-सा होता है। एक बार कहीं फुफकार कर छू दिया कि सदा के लिए मन में जहर रह जायगा। अच्छा विक्तर, मान लो, मम्मी कहीं तुम्हारी माँ होती ?

विक्तर ने कहा, क्या खूब ! मैं कोई नन्हा हूँ कि वह माँ होगी ?

—माँ होती तो तुम उसे प्यार करते ?

विक्तर जरा अवाक्-सा होकर अचकचा गया। बोला, वाह ! माँ क्यों होने लगी ? हमें क्या माँ होती है ?

शांतनु ने कहा, मैं भी बेशक ठीक नहीं जानता, लेकिन मैंने सुना है, सबके एक माँ हुआ करती है।

—तुम्हारे थी ?

—सुना है। अच्छा, मान लो, मम्मी अगर सचमुच ही तुम्हारी माँ हो ?

विक्तर ने हँसकर कहा, आप शायद मुझे तंग करना चाहते हैं। मैं आपका मतलब समझ गया। माँ है, तो बाप कहाँ है ?

—बाप ! ठहरो।—शांतनु बिस्तर पर से उतर आया। फिर जरा चहलकदमी करके बोला, ये बाप जो होते हैं, न विक्तर यह बड़े यों होते हैं। राह-घाट में ढूँढ़ो, माँ बहुतेरी मिलेंगी, मगर बापों की तादाद बहुत कम है।

—आप जाने क्या-क्या बोलते जा रहे हैं, मेरी जरा भी समझ में नहीं आया मिस्टर चौधरी !—विक्तर ने कहा—यू आर वेरी नॉटी। मम्मी अगर माँ हो तो बाप भी होगा।

शांतनु ने कहा, अच्छा खैर, तुम किस तरह का बाप चाहते हो ?

विक्तर ने बहुत गम्भीर होकर कहा, देखने में अच्छा नहीं होगा, तो बाप नहीं कहूँगा, हाँ !

—यह जरा कठिन है, समझे विक्तर ! मामला जरा और किस्म का है।—शांतनु ने कहा—यानी बच्चों की इच्छा से बापों की पैदाइश नहीं होती, यह कुछ उलटी-सी बात है !

—क्यों ?

शांतनु ने कहा, तो खोल कर ही बताऊँ। मान लो, पौधा और फूल, पौधे में ही तो फूल फूलते हैं ?

—हाँ।

—लेकिन फूल अगर यह कहे कि मैं पहले फूलूँगा, पौधा [illegible] में

होगा, तो यह हो सकता है ?

बात तो वाजिब है ! विक्तर जरा सोच में पड़ गया। उसके बाद बोला, ठीक है, बाप कहाँ है, दिखाओ मुझे ?

—ठहरो।—शांतनु ने कहा, जरा सोच देखूँ। खैर, ठीक है। एक आदमी को ढूंढ़ निकाला है ! कहाँ उसे देखा है, सो तो कहो ?

बहुत सोचकर भी विक्तर के दिमाग में नहीं आया। उसके बाद वह रंज होकर बोला, आ !, आप बताने में बड़ी देर कर रहे हैं—मुझे तुरत पढ़ने के लिए बैठना है। झटपट बताइए।

शांतनु ने हँसी रोककर कहा, तुमने तो मुसीबत में डाल दिया देखता हूँ। अरे, बाप बनना आसान है, लेकिन बाप बनकर भागते फिरना और आसान है ! हाँ-हाँ, अब आया। कुतुबमीनार में उस दिन मिस्टर चौधरी को देखा था न, मान लो, वह अगर तुम्हारे बाप हों ? देखने में बड़े सुन्दर हैं, याद है न ? नापसन्द नहीं करने दूँगा लेकिन !

बड़ी देर तक विक्तर ने सोचा। उसके बाद बोला, मुझे अच्छा नहीं लगा।

—क्यों, तुमको चाकलेट दिया, ठोड़ी पकड़ कर दुलारा !

विक्तर ने कहा, न ! उनका ठंडा हाथ मुझे अच्छा नहीं लगा। और फिर वह तो मुन्नी के बाप हैं, मेरे नहीं। उन्हें मैं नहीं चाहता। उससे तो आप बहुत अच्छे हैं। आप मेरे बाप क्यों नहीं बनते !

शांतनु ने दो-एक बार थूक घोंटा। दोनों आँखों को उसने एक बार कपाल की तरफ उठाया। निगाहें बाहर दौड़ाईं, लेकिन आसमान की ओर ईश्वर नहीं नजर आया। विक्तर तो उसकी अदा देखकर ही बेहाल। उसके बाद शांतनु जरा सम्भल कर बोला, तुम्हारा मनसूबा बहुत अच्छा नहीं है विक्तर, तुम जो एक रेडीमेड बाप चाहते हो, मैंने यह उम्मीद नहीं की थी। अच्छा, झाड़ू किसे कहते हैं, जानते हो ?

—झाड़ू ? नहीं तो—

शांतनु ने कहा, जानते तो अच्छा था। तुम्हारी माँ नाम की वह जो म्मी है न, वह इस रेडीमेड बाप को झाड़ू मार कर विदा कर देगी, तुम ायद यही चाहते हो ?

विक्तर फिर ताली बजा कर हो-हो करके हँस उठा। उसके बाद ला, मैं लेकिन आज से सचमुच ही आपको बाबूजी कहूँगा, देख जाएगा।

रंग नहीं छूटता। रूज, पावडर, लिपस्टिक—कुछ नहीं। रोजमर्रे की मामूली पोशाक में ही ईशानी झलमला रही थी। आज सुबह से ही सहसा दिखाई दिया—उसके गले में मुक्ता की माला झूल रही है!

ईशानी ने हँसती आँखों कहा, जभी शायद दौड़ी-दौड़ी आईं। आइए। परदेस में बंगाली कोई मिल जाय, तो बड़ी खुशी होती है। लेकिन आप तो वास्तव में मुझे देखने नहीं आई हैं?

—और नहीं तो क्या! आपसे मिलने के लिए ही तो आज दोपहर में ही रसोई-वसोई कर-करा ली। कहीं वह आ जाते तो क्या आना हो सकता? दाई-नौकर हैं। बच्ची को वे लोग रख लेंगे। इस शाम की मेरी छुट्टी।

—आपको मेरा पता कहाँ मिला?

—पता? दिल्ली शहर में आपका पता किसे नहीं मालूम है? और फिर उस दिन शांतनु बाबू से भी पता मिल गया था।

बातें करते हुए वे सब बड़े हॉल में आ बैठे। ईशानी ने हँसकर कहा, मैं फिर भी कह रही हूँ, आप मुझको देखने के लिए नहीं आई हैं। आप तो चित्रांगदा के लिए आई हैं। माथे पर मुकुट, जरी के साज, हीरा-मोती की बहार, लाज-मान गँवा कर वह पैर उठा-उठा कर नाचेगी—आप उसे देखना चाहती हैं।

—उसके साथ आपको भी चाहती हूँ।

ईशानी ने इधर-उधर नजर घुमाई। शांतनु न जानें कब चुपचाप खिसक पड़ा था। शांतनु को शायद आशंका थी, बातचीत की धारा न जाने कहाँ बह चले। ईशानी ने कहा, हमारी यहाँ की जिन्दगी अब खत्म होने को आई। जल्द ही हमें चल देना होगा।

कमला ने कहा, मैं आपसे अपनी एक ख्वाहिश कहने आई हूँ। यहाँ बंगालियों का कोई नाच-गाने का स्कूल नहीं है। होता, तो अपनी बिटिया को वहाँ दाखिल करा देती। आप जरा इस दिशा में कुछ सोचिए न? उनसे मैंने सुना है, यहाँ बंगाली परिवार बहुत हैं।

ईशानी ने पूछा, आपके वही एक लड़की ही है क्या?

—हाँ, बस वही एक लड़की। और न हो तो बहुत अच्छा। उनकी समय-समय पर बदली होती है। बच्चों को पालने में बड़ी कठिनाई होती है। उस दिन घर लौटकर वह आपकी सौ मुँह से तारीफ कर रहे थे।

ईशानी जरा हँसी। बोली, असली मूर्ति को देखने से उतनी तारीफ

थोड़े ही करते ? उस दिन तो उन्होंने मणिपुर की राजकुमारी चित्रांगदा को देखा था कमला। नकली साज-सिंगार में असली स्त्री छिपी हुई थी।

कमला ने कहा, मैंने और भी दो दिन टिकट के लिए कितनी कोशिश की, क्या बताऊँ ! किसी भी तरह नहीं मिला। सुना, आपका नाच देखने के लिए मेरठ, रोहतक, गाजियाबाद तक से लोग आए थे !

तब शांतनु हँसता हुआ आकर कुछ दूर पर बैठ गया। कमला ने कहा, विक्तर को नहीं देख रही हैं ? उस बच्चे के साथ उस दिन हम लोगों ने बड़ा आनन्द किया। माँ-बाप को वह नहीं जानता, मगर सिलविया को मम्मी कहने में खुशी से बेहाल। उसके माँ-बाप कहाँ हैं, आप लोग भी नहीं जानते ?

शांतनु ने कहा, बिलकुल ही नहीं जानता, यह तो कहना भी ठीक न होगा, और ठीक-ठीक जानता ही हूँ, यह कहने में भी बहुत असुविधा होती है। बात दरअसल यह है, वह हम लोगों के पास तो पला नहीं है न ?

कमला ने कहा, मगर मैं आप लोगों से कहे देती हूँ, यह लड़का बड़ा असाधारण होगा ! ऐसी बुद्धि, पढ़ने-लिखने में ऐसी लगन मैंने कहीं नहीं देखी ! वह तो उसी दिन से विक्तर के नाम से बेहद उमग पड़ते हैं। उस दिन मुझसे कह रहे थे, ऐसे एक बेटे का बाप होने में जीवन में आनन्द है।

ईशानी ने कहा, पति-पत्नी दोनों चाहें, तो वैसा आनन्द पाना बहुत कठिन बात नहीं है ?

तीनों जने खूब हँस उठे। लेकिन शांतनु के चेहरे पर परेशानी-सी झलकी। इस पर अगर बात बढ़े तो पेचीदा हो सकती है। वह चुप हो रहा।

कमला बोली, मुझे बड़ा अरमान है, आप लोग यदि विक्तर को कुछ दिन मेरे यहाँ रहने की इजाजत दें। मैंने सुना, उसकी छुट्टी अभी काफी है। हमारे यहाँ बड़ी अच्छी तरह से [illegible] रहेगा।

ईशानी ने कहा, यह तो बड़ी खुशी की बात है। लेकिन मुश्किल है कि सिलविया उसे छोड़कर ज्यादा दिन तक रह नहीं सकती।

शांतनु ने कहा, और भी एक मुश्किल है। जो मुश्किल कि [illegible] बाप के लिए है।

कमला और ईशानी ने उसकी ओर ताका। शांतनु ने [illegible] अभी मिसेस दत्त चौधरी ने जैसा कहा, मान लीजिए [illegible]

दावा करें कि विक्तर मेरा लड़का है ?

मजाक चूँकि बड़ी गम्भीरता के साथ किया गया था, इसलिए से खिलखिला पड़ने में लोगों को एक क्षण का समय लगा। शांतनु ने उसमें जोड़ दिया, विक्तर का स्वभाव और प्रकृति भी बड़ी आफत व माँ-बाप का प्यार तो उसे खास मिला नहीं—एकाएक अगर किसी 'बाबू जी' कह कर अरुण बाबू से लिपट पड़े, तो वह गाँठ छुड़ाने देर लगेगी !

कमला हँस उठी। बोली, अच्छा ही होगा। कोई अविश्वा करेगा। आप लोगों ने तो देखा है, विक्तर से उनकी शकल कितनी है। मेरे देवर तो यही कह रहे थे।

ईशानी अब परिहास किए बिना न रह सकी। कमला की ओ ले जाकर आवाज को जरा झुका कर बोली, बात क्या है मिसे चौधरी ! ब्याह के पहले का कोई इतिहास है क्या आपके पति का ? ठीक से खोज-पूछ तो की है न ? आपकी बात से तो जरा खटका-न रहा है !

शर्म से कमला का हँसता हुआ चेहरा लाल हो उठा। खिलखि हँसती हुई वह बोली, दक्ष-यज्ञ में पति की निंदा सुनकर सती ने प्राण दिया था जानती हैं न ?

ईशानी भी हँसी। बोली, हाय री मेरी तकदीर। मैं तो कह कि पुरुष बिल्ली के स्वभाव के होते हैं—उनके पैरों की आहट का प चलता। भागने का रास्ता रखकर तब वह रसोई-वसोई [illegible]सते

चरणों की धूल ली, उनके जीवन की यह पहली घटना है। सच बताऊँ, ब्याह के बाद उनकी लाज हटाने में ही मेरी जान निकल जाती थी। स्त्रियों के इच्छा-अरमान का उन्हें कोई पता ही नहीं था। बिलकुल निस्पृह आदमी।

सहसा ईशानी का मन अपनी ही आँखों में लौट आया। सारी बातों से बाहर आकर उसने कहा, हो सकता है। मगर जीवन बड़ा रहस्यमय है। हम सब उसका बहुत थोड़ा हिस्सा ही जानते हैं।

टेलीफोन बज उठा। ईशानी ने रिसीवर को कान में लगाया। रमेन बाबू बोल रहे थे। कुछ देर तक उनकी बात सुनकर ईशानी बोली, नहीं-नहीं। मैं किसी पार्टी में नहीं जाऊँगी। नहीं, आप अनुरोध मत कीजिए, जाना मेरे लिए संभव नहीं है। ठीक तो है, नवम्बर में फिर पार्टी के साथ आया जायगा। हाँ, सुनिए। लिखा-पढ़ी वाली बात तो हो गई न ?—अच्छा। वे लोग क्या आज ही चले जा रहे हैं ? अच्छा। हाँ, मैं अभी तीन दिन ठहरूँगी। ठीक तो है, सबेरे आइए। सब काम-काज निबटा लेंगे।—हठात् ईशानी ने गले को धीमा करके कहा, हाँ, सब शांतनु के खाते में जमा कर दीजिए। हिसाब-किताब मैं कल देखूँगी। अच्छा, रखती हूँ।

विक्तर को लेकर शांतनु जा खड़ा हुआ। कमला उठ खड़ी हुई। बोली, साँझ हो गई। अब मैं चलती हूँ। आपको बहुत तंग कर गई, माफ कीजिएगा। शांतनु बाबू, विक्तर को लेकर हमारे यहाँ फिर कब आ रहे हैं ?

शांतनु ने हँस कर कहा, दूतगिरी में मैं प्रायः मँज गया हूँ। दोनों ओर का मिलन कराना ही मेरा काम है !

ईशानी ने कहा, अच्छा ! तनखा कितनी है ?

—तनखा तो मेरे खाते में जमा हो रही है, यह बहरहाल प्रेम की मजूरी है।

कमला ने मुस्कुराकर कहा, अच्छा तो है। एक दूतगिरी और कीजिए। सिलविया को फुसलाकर विक्तर को कुछ दिन हमारे यहाँ रहने दीजिए ! क्यों विक्तर, हमारे यहाँ रहना अच्छा लगेगा ?

विक्तर ने गरदन हिला कर सम्मति जाहिर की।

कमला बोली, मेरा विशेष अनुरोध रहा, एक बार कोशिश कर देखिएगा। अच्छा, तो मैं चलूँ। इतनी देर तक आपको इतने निकट पाया, यह मेरे लिए गौरव की बात है।

ईशानी ने कहा, हमारी गाड़ी आपको छोड़ आएगी।

—नहीं-नहीं, मैं उनकी गाड़ी में आई हूँ। बाहर खड़ी है। मैंने आज उन्हें टैक्सी से दफ्तर भेजा है।

नमस्कार करके कमला सीढ़ी से उतर गई।

शांतनु की तरफ से एकाएक मुँह फेर कर ईशानी सीधे हॉल में चली गई। अब तक एक बहुत ही दबी उत्तेजना को वह सहती रही। अब वह उस अवसाद का बोझ लिए गद्दीदार सोफे पर धप्प से बैठ गई। बदन की कुरती पसीने से भीग गई थी। सर के ऊपर पंखा घूम रहा था। उसने आँखें मूँद लीं।

शांतनु जानता था, यह आँधी के पहले का सन्नाटा है। इसीलिए नन्दू के साथ विक्तर को बाहर भेज कर वह धीरे-धीरे आकर ईशानी के करीब बैठा। बदन पर गंजी रखना भी मुहाल हो रहा था, ऐसी गरमी थी।

ईशानी ने आँखें खोलीं। वह रंजिश के साथ बोल उठी—मेरे पीछे-पीछे क्यों चला आया?

शांतनु का मिजाज भी कई दिनों से ठीक नहीं चल रहा था। वह भी झट बोल उठा, धरम का साँड़ पीछे-पीछे क्यों आता है, यह जाकर धरम से पूछ।

—तू जालसाज है, ठग है, धोखेबाज है।

शांतनु तुरत नर्म पड़ गया। बोला, बहुत खूब! बैंक में मेरे नाम से रुपया जमा करके तू सरकार को धोखा दे रही है और मुझको कहती है जालसाज! तू अपने पेट के बच्चे से अपने को छिपाए हुए है और मुझे ठग कह रही है! एक नारी के सतीत्व को बचाने के लिए मैं रात-दिन एँड़ी-चोटी का पसीना एक कर रहा हूँ और मुझको धोखेबाज कह रही है! तेरा दिमाग ठिकाने पर नहीं है।

ईशानी रुकी नहीं। बोली, तू कापुरुष नहीं है? मुझसे छिपाकर दत्त चौधरी से साजिश करके तू मुझे उन लोगों के मत्थे मढ़ देना चाहता है! इससे तूने मुझसे यह क्यों नहीं कहा कि मैं अब तुझे अच्छी नहीं लग रही हूँ?

शांतनु ऐसे संदेह पर सदा बिगड़ खड़ा होता है। उसने भभक कर कहा, इसीलिए कहा था कि मेरी मदद की तुझे जरूरत नहीं। अच्छा ही कब लगा था कि आज अरुचि हो गई? मैं कापुरुष हूँ, यह मैं माने लेता हूँ। लेकिन अरुण कापुरुष नहीं है—उस दिन कुतुब में बैठकर

उसने पूरा माधवी कथामृत मुझे सुनाया है।

—यानी ? कहाँ तक सुनाया ?—माधवी ने उलट कर देखा।

शांतनु ने कहा, अपने चरित्र को बचाकर प्रेम-कहानी जहाँ तक सुनाई जा सकती है। लेकिन उसने यह बताया कि साल भर के बाद वह साधु से ब्याह करने के लिए फूलकाठी गया था। उसने साधारण भले आदमी के आदर्श को बचाना ही चाहा था।

ईशानी कुछ देर तक चुप रही। फिर कहा, अच्छा, समझी। मगर तेरी इस दलाली का मतलब क्या है ?

—मतलब बड़ा आसान है ! आम का गूदा और दूध मिलकर सुखद बने—आम की गुठली अलग हो जाय।

लेकिन कमला जिस दिन ये जानेगी कि मैं उनकी सौत हूँ, उस दिन से उसका चेहरा क्या हो जायगा ?

यह सब अभी नहीं !—पहले आर्य-समाज में जाकर तेरी शादी करा लूँ, फिर सतीपने की सोचूँगा। ईश्वर की कृपा से तेरी माँग में भले-भले सिंदूर पड़ जाय, तो मैं जी जाऊँ ! देख लेना, कैसी धूमधाम करता हूँ। सारी दिल्ली को न्योता करके खिलाऊँगा, कह दूँगा। लाख हो, आखिर लड़की तो राज परिवार की है !

ईशानी का चेहरा विकृत हो उठा। बोली, तू शायद यही खेल सुषमा के साथ खेल रहा था ?

शांतनु ने कहा, कैसी नासमझ है तू ! यह जिंदगी ही तो खेल है। इस खेल में सुषमा को मोटी तनखा की नौकरी मिल गई ! और इस खेल ही में मैं भी एक मोटी रकम पा रहा हूँ।

ईशानी की आँखें जल रही थीं। फिर भी उसने अपने को संयत करके कहा, मुझे इस अपमान में डाल कर भाग जाने में तुझे जरा भी चोट नहीं लगेगी ?

—अपमान !—शांतनु हँस उठा, कुमारी रहते हुए जिसे अपने पति रूप में कल्पना की थी, आज उसी गौरव के साथ मिलन होगा, तो तू अपमान कह रही है ? तेरी मति ऐसी मारी क्यों गई है ?

असह्य उत्तेजना लिए ईशानी उठकर चली गई।

ग्यारह

बहुत-सा भारी-भारी सामान लेकर नन्दू सुबह की गाड़ी से कलकत्ता रवाना हो गया। कल सिलविया की चिट्ठी आई है—यदि जगह सुरक्षित समझो और विक्तर रहना चाहे, तो उसे कुछ दिनों के लिए वहाँ रहने दे सकती हो। शांतनु कुछ दिन दिल्ली में रहना चाहता है, सुनकर खुशी हुई। विक्तर उसे अपने आस-पास पाकर खुशी से रहेगा। तुम कब आ रही हो? मेरी हालत जैसी की तैसी है। यहाँ रहना अब संभव नहीं हो रहा है। शायद हो कि मुझे भारतवर्ष ही छोड़ कर चल देना पड़े। मगर तुमसे राय-मशविरा करके तब कुछ तै करूँगी।

सिलविया की अनुमति मिल जाने पर शांतनु ने कमला के यहाँ फोन किया था! कमला खुद आकर कल शाम विक्तर को ले गई। कुछ दिन विक्तर वहाँ रहेगा। दत्त चौधरी खुद भी बहुत खुश हुए। विक्तर से उनकी खूब पट गई है।

दिल्ली में खासी गरमी पड़ गई। दोपहर को निकलना कष्ट कर-सा लगता है। मई खत्म होने को एक हफ्ता रह गया।

सवेरे रमेन बाबू पधारे। जरा देर पहले हारमोनियम लेकर ईशानी ने बहुत दिनों के बाद एक गाना गाना शुरू किया था। और उसी गीत के सुर पर बगल वाले कमरे के बरामदे से बाँसुरी बज उठी थी! कई दिनों से शांतनु से ईशानी का बिगाड़ चल रहा था, चखचख कहिए। लेकिन इस वजह से गीत से बाँसुरी का विवाद नहीं चल सकता। वह हृदय से आता है, यह प्राण से—दोनों का मेल रसबोध में है। बाहर का विवाद लौकिक है, बहुत कुछ व्यक्तिगत। गाते-गाते ही ईशानी को हँसी आ रही थी, क्योंकि गीत का तत्त्व मिलन का था। बेहया शांतनु उसी पर मीड़ का खेल खेल रहा था। पुरुष की सारी कपटता अब खुल गई, शांतनु की सारी कारसाजी ईशानी की समझ में आ गई।

हँसी को दबाकर वह फिर से अंतरा पर आ रही थी कि तब तक रमेन बाबू कमरे में आ गए। बोले, वाह, मजे में तो गा रही हो। गाओ। कई दिनों से सिर्फ फोन पर ही बात चल रही है। तबीयत तो ठीक है न?

उधर एकाएक बाँसुरी भी चुप हो गई।

ईशानी ने कहा, तबीयत की न पूछिए। तबीयत खराब होने की कोई तरकीब मालूम हो, तो बता दीजिए—दो दिन बीमार पड़ कर किसी से सेवा कराने का सौभाग्य पा सकूं। कम से कम उससे ही कुछ नयापन आए।

रमेन बाबू ने कहा, बिलकुल सही कहो, अक्षर-अक्षर सत्य। हाथ में जब कुछ रकम आ जाती है, तो कोई बीमारी नहीं रहती। मन प्रफुल्ल रहता है तो यम भी डरता है। इतनी धूप में चक्कर काट रहा हूँ, जरा भी तबीयत नहीं खराब होती।

ईशानी ने मजाक से कहा, आपके हिस्से क्या रहा, बताइए न जरा?

—यही तो दुःख की बात है। अपने लिए कुछ रखने से रमेन घोष को चिंता किस बात की थी? कर्ज चुक जायगा, इसी की उमंग है। तुम्हारे रुपए सब दे दिए, शांतनु के भी चुक गए, संस्था के फंड में भी कुछ रहा, बस, यही बहुत है। अब जो असली बात है, वह सुनो। दो-चार पास भेज कर कुछ सरकारी आदमियों को मुट्ठी में किया है, यही कहने आया हूँ।

बगल के कमरे में खाँसी की आवाज सुनाई पड़ी। रमेन बाबू बोले, यही तो, शांतनु बाबू उस कमरे में हैं शायद। आज मैं खास करके उन्हीं के लिए आया हूँ ईशानी।

उधर से जरा ऊँचे गले की आवाज आई, मुझे बुला रहे हैं शायद? आया—

बिलकुल बेहया। किसी ने नहीं बुलाया, फिर भी आया। मान न मान मैं तेरा मेहमान। आते ही नजदीक बैठ कर शांतनु ने कहा, हाँ, तो? आपका कार-बार कैसा चल रहा है रमेन बाबू यह बताइए।

रमेन बाबू ने एक बार उसके मुंह की ओर देखा, फिर बोले—लेकिन अब यह फांकेबाजी नहीं चलने की भैया। एकबारगी सरकारी नौकरी करिए, दस-पांच हाथ में रहे। आपको नौकरी मिल गई है, यही खुशखबरी लेकर आया हूँ।

शांतनु ने कहा, सचमुच! अरे वाह, यह तो मेरी बड़ी खुशकिस्मती है। आप भीतर ही भीतर मेरी नौकरी की कोशिश कर रहे थे, यह कौन जानता था? चलिए खैर, इतने दिनों में एक बेकार व्यक्ति का कहीं ठिकाना तो लगा। आज से बाकी जीवन दिल्ली में ही न?—क्यों रमेन

वावू। एं ?

—जरूर। कलकत्ता छोड़ ही देना होगा। यहाँ बिलकुल साहबी टाइम—जरा भी इधर-उधर होने की गुँजाइश नहीं।

खबर सुनकर ईशानो का चेहरा बड़ा फक हो गया। उसकी ओर कटाक्ष से एक बार ताक कर शांतनु ने उत्साह के साथ कहा, कहीं एकांत में बगीचे वाला कोई बंगला लूँगा। नौकर-रसोईया रहेगा। मोटर और टेलीफोन। मजे में अकेले रहा जायगा। तनखा तो मोटी है न ?

रमेन बाबू ने कहा, मुझे कुछ कहने की जरूरत नहीं है। मैं जब अंदर ही अंदर कोशिश कर रहा हूँ तो फिक्र क्या है ? सुई होकर समाना और फाल बनकर निकलना पड़ेगा।

ईशानी से और नहीं रहा गया। बोली, ऐसी क्या सिफत है इसमें कि इसे इतनी तनखा मिलेगी ?

—अरे बाप रे ! गुण नहीं है ? यह तो गुणों की खान हैं। बी० ए० पास। लखपतियों जैसा रूप, रंग तीखा इतना मधुरभाषी, तिस पर बांसुरी बजाकर वंशीवादकों को भी मात करते हैं—इनमें सिफत की क्या कमी पड़ी है ?

सामने बैठकर अपनी तारीफ सुनने से शांतनु सदा ही विनय से सर झुकाए रहता है। उसकी तरफ कटु-कटाक्ष से एक बार ताक कर ईशानी ने कहा, आपकी सरकार को क्या हुआ है, कहिए तो ? नाचने से नौकरी; गाने से नौकरी, नाटक वालों को बुलाकर नौकरी, बांसुरी बजाने से नौकरी—सरकार को खा-पीकर और कोई काम नहीं है ? कैसी सरकार है आपकी ?

देखा न रमेन वावू—शांतनु बोल उठा, अच्छे काम की ओर ध्यान दीजिएगा तो एक श्रेणी के लोगों के मन में ऐसी ही ईर्ष्या हो आती है ! इन लोगों के मारे देश का कोई सही काम होना मुश्किल है !

रमेन बावू एक वार तो जोर से हँसे। उसके बाद जेब में हाथ डालकर दो लिफाफे निकाल कर ईशानी से बोले, यह लो, हवाई जहाज का टिकट। रात के लगभग साढ़े दस-ग्यारह बजे छूटेगा, रात का जहाज है न, इसलिए नागपुर होकर जायेगा। मगर एक मुसीबत है, मेरा आज जाना नहीं हो सकेगा—रीगल से रुपयों का हिसाब-पत्तर पूरा-पूरा हुआ नहीं है। तुम्हें विक्तर को साथ लेकर अकेले ही जाना होगा।

ईशानी ने कहा, विक्तर तो अभी जाएगा नहीं। वह हमारे एक मित्र

के यहाँ कुछ दिन रहेगा। स्कूल की अभी छुट्टी है।

रमेन बाबू ने कहा, तुम बेमतलब उस गोलमाल में पड़ी हो न। जाने किसका लड़का उसके माँ-बाप का ठीक-ठिकाना नहीं, कनवेंट में पला—उसे अपनी गरदन पर लादकर एक झमेला मोल ले लिया है।

रमेन बाबू के विकारयुक्त स्वर को सुन कर ईशानी बिलकुल चुप हो गई। शांतनु ने अपना मुंह गंभीर करके कहा, वह तो उसे लाना नहीं चाह रही थीं, मैं ही ले आया हूँ। यह जिम्मेदारी मेरी ही है रमेन बाबू!

—आपकी भी बलिहारी!—रमेन बाबू ने कहा, ठीक है, कहीं बांसुरी बजाइएगा, खाइए-पीजिएगा कुछ-न-कुछ करते हुए नाचते-कूदते जिन्दगी बिता ही दीजिएगा। जाने कहाँ के किसी अजात-कुजात लड़के को माथे पर उठाकर ले आए। फिरंगियों के यहाँ ऐसे बहुतेरे लड़के बाद में पलकर आते हैं। उनके जात-जनम का कोई ठिकाना है? अपने भविष्य पर तो ध्यान दीजिएगा। भाइयों से मुकदमा लड़ रहे हैं, उसका क्या हुआ? अभी भी हाईकोर्ट में चल ही रहा है क्या? अपनी नौकरी, संध्या, भजन-पूजन, मामला-मुकदमा—इन सब में रहिए, उससे काम होगा! मैं तो आपसे वादा करता हूँ, नौकरी में जुट तो जाइए, मैं ही सुंदर-सी लड़की देखकर आपका शादी-ब्याह करा दूँगा। आप ऊँची जात के ब्राह्मण हैं, उस बिना जात वाले लड़के के पीछे दिमाग न खपाइये। समाज में बदनामी हो जायगी।

सर झुकाकर दोनों ने रमेन बाबू का भाषण सुना। त्रेतायुग होता तो अब तक धरती फट जाती, ईशानी धरती के उस गड्ढे में उतर जाती। लेकिन इसके लिए शांतनु को धिक्कार सुनना पड़ा और बिना कोई विरोध किये शांतनु चुपचाप सब सहता गया। इसमें संदेह नहीं कि इस आघात और अपमान की जिम्मेदार ईशानी है। अचानक उसे लगा, वह अगर पल में सारे वितर्क भूलकर शांतनु के पैरों पर गिरकर जोर-जोर से रो पड़े, तो भी उसका प्रायश्चित्त पूरा नहीं होगा। मगर वह मानो सुन्न बन गई है। कुछ भी नहीं कर सकी, इसलिए काठ की मारी सी बैठी रही।

लेकिन इतने दिनों के दबे आक्रोश को जाहिर करने के लिए रमेन बाबू आज मानो बेताब बन गए। उन दोनों की [illegible] ने और भी उमड़ कर उन्होंने पहले मन की जलन ही जाहिर की—[illegible] न कीजिएगा शांतनु बाबू, शिलिगुड़ी के उस पहले परिचय के [illegible] से ही आपको [illegible] आ रहा हूँ। आप फोटो खींचना [illegible] [illegible] [illegible] है, ईशानी से आपका कोई नाता [illegible] [illegible] सब भांप गया। [illegible]

आपकी इस घनिष्ठता से इतनी बड़ी एक संस्था आज खतरे में पड़ गई है, इसे क्या आपने सोच देखा है ? मेरे पास ढँका-मुँदा कुछ नहीं है, मैं ईशानी के सामने ही आपसे कह रहा हूँ। आप गरीब गृहस्थ घर के लड़के हैं, आपको कमा कर खाना है, शादी-ब्याह करके दुनियादार बनना है—यह खानाबदोश की तरह घूमते रहने से तो काम नहीं चलेगा। एक इतनी बड़ी कलाकार से मिलने-जुलने का मौका मिला है आपको, किंतु चूंकि आपको सीमा का बोध नहीं है, इसलिए ईशानी की सारी कर्ममयता आपके हाथों चौपट होने को है। जैसे भी हो, मैं आपको एक नौकरी दिला देता हूँ अब आप इस स्त्री को रिहाई दीजिए—नहीं तो बंगाल की नृत्यकला का सत्यानाश हो जायगा। ईशानी मुँह खोलकर जो बात आपसे नहीं बोल पा रही है, मुँहफट बनकर मुझे ही वह कहने को मजबूर होना पड़ा। मुझे माफ कीजिएगा। हाँ, एक बात और चाहे जिस कारण से भी हो, ईशानी आपके खाते में बहुत रुपये जमा करने को मजबूर हुई है इससे आपकी जिम्मेदारी बहुत बढ़ गई है। क्योंकि यह विश्वास की बात है, ईमानदारी की बात है। मैं अवश्य यह नहीं कहना चाहता कि आपकी राय से ही ईशानी को मजबूरन ऐसा करना पड़ा है। लेकिन सावधान, धरम की कल हवा में भी हिलती है, इसे याद रखिएगा। दूसरी बात कि आप रहेंगे दिल्ली, ईशानी अपने काम में रहेगी कलकत्ते। लेकिन इतनी बड़ी एक कला-साधिका का मन फिजूल के कामों या खत-किताबत में परेशान रहे, आप बेशक यह नहीं चाहेंगे ? इसलिए यह मेरा एकांत अनुरोध है कि आप ईशानी की सोच-फिकर छोड़कर अपने ही काम में ध्यान लगाएँ। सच पूछिए तो मिहिजाम से ही इन सारे झमेलों की शुरूआत हुई। उसके पहले कौन कहाँ था ! नाता-रिश्ता हो या मिताई हो, यह मामला तो दो दिन का ही तो तोड़-जोड़ है।

रमेन बाबू ने एक बार दोनों की तरफ ताका और चुप हो गए। उनके अपनेपन की तारीफ किये बिना कोई उपाय नहीं। उनकी भाषा बड़ी साफ-सुथरी, बोलने का ढंग बड़ा कुशल, बात को कहने की शैली भी बड़ी निपुण, बंगाल की नृत्य कला के ऐसे शुभैषी या हितैषी भी कम ही नजर आते हैं।

वह उठ खड़े हुए। बोले, तो यही तय रहा। तुम्हारे पास एक या दो सूटकेस, यही तो सामान है। यदि कहो तो रात को मैं ही तुम्हें हवाई अड्डे तक पहुँचा आऊँ ? आखिर जतन से चढ़ा तो देना होगा न ?

ईशानी ने कहा, नहीं, मैं अकेली ही जाऊँगी।

—ठीक है। अकेली ही जाना। मैं ठीक एनक्लोजर के सामने ही खड़ा रहूँगा। तुम्हें सकुशल चढ़ा देने से मैं निश्चिन्त हो जाऊँगा। मैं चला शांतनु बाबू!

मुस्कुराकर शांतनु खड़ा हुआ। कहा, आज का सवेरा आपको पाकर बड़े आनन्द से कटा। आपने जितनी भी बातें कहीं, ईशानी ने उनका विरोध नहीं किया, यानी हर बात अक्षर-अक्षर सत्य है। वास्तव में जिन्दगी में यही पहली बार मैंने एक अनुभवी आदमी के उपदेश से ज्ञान लाभ किया। अच्छा, नमस्कार।

शांतनु की बातों में व्यंग्य का सुर है या नहीं, ठिठक कर रमेन बाबू ने जरा सोच लिया। लेकिन शांतनु तब तक कमरे से बाहर चला गया था। ईशानी चुपचाप बैठी थी।

—तो मैं चला, रात को मुलाकात होगी। कहते-कहते रमेन बाबू खासे गर्व का अनुभव करते हुए ही नीचे उतर गए। उन्होंने जरा देर के लिए भी यह नहीं सोचा कि किस तीखे जहर से ईशानी का गला तक भर आया।

शांतनु को भी चल देना होगा, क्योंकि इस घर की मीयाद खत्म हो आई। आज तक जो पहरेदार बाहर रखे गए थे, ईशानी के जाते ही वे भी चले जाएँगे। रसोइया शाम को रसोई बनाकर चला जायगा। वह हाल सूना है—जहाँ नीली रोशनी में ईशानी ने श्रीराधा का नृत्य किया था! सारी तसवीरें, आईने, असबाब वगैरह जो भी थे, सब उठा ले गए। शांतनु का अपना खास कुछ नहीं था। कुछ कपड़े और सूटकेस। ईशानी का भी वही। और सब सामान तो नन्दू के साथ जा चुके थे।

एक कमरे में ईशानी के बहुत सारे कीमती कपड़े इधर-उधर बिखरे पड़े थे। तेल की शीशी खुली, कुछ खुशबूदार साबुन यहाँ-वहाँ पड़े, उनके साथ टूटे बालों से लिपटी कंघी, पावडर का डब्बा उलटा पड़ा, बालों के फीते उलझे हुए। शांतनु गरीब घर का लड़का। उन चीजों का बाजार-मूल्य समझता है! भावों में कोई विकार आए तो आए, लेकिन उसकी वजह से रोज के काम में आने वाली चीजों को बरबाद नहीं किया जा सकता सो शांतनु ने एक-एक चीज को उठाकर सहेज लिया। साज-सिंगार किए बिना औरतों का रास्ते पर निकलना नहीं हो सकता, यह उनके प्राणों का दाय है। कपड़ों को एक-एक करके तह करके उसने देखा

पर रक्खा और सबसे ज्यादा खूबसूरत और कीमती जो ब्लाउज था, उसे ठीक सामने रख दिया। मालूम है, यह सब ईशानी को पसंद हैं। इनके सिवाय कुछ छोटी-मोटी चीजें भी थीं। नाच के लिए घुंघरुओं का जोड़ा, कुछ गहने, कुछ जरीदार मखमली कपड़े—ये सारी चीजें ईशानी के रोजगार के उपकरण हैं, लिहाजा इनकी कीमत है।

ईशानी किस समय बड़े हाल के एक कोने में जा बैठी थी, शांतनु ने देखा ही नहीं था। शांतनु इधर-उधर घूम कर जाने क्या खोज रहा था।

आहट पाकर ईशानी बोल उठी, यह सब क्या हो रहा है?

शांतनु ने पलट कर कहा, तेरी जरीदार चप्पल कहाँ है, नहीं मिल रही है।

—जो लोग बिना कहे-सुने औरों की चीजें छूते-छाते हैं, उनके ही सूटकेस में चली गई होगी।

बात शायद युक्ति की थी! शांतनु झट गया और उसने अपने सूटकेस को औंधा उलट दिया। कपड़ा-लत्ता समेत ठक् से कैमरा गिर पड़ा, लेकिन चप्पल नहीं मिली। ईशानी ने कहा, कैमरा तो मेरा खरीदा हुआ है!

सकुचाकर शांतनु ने कैमरे को ईशानी की टेबिल पर रख दिया। उसके बाद सूटकेस को सहेज कर नहाने गया। उसे ईशानी से पहले ही चला जाना होगा।

ईशानी कमरे से चली गई। सारा घर बड़ा सूना लग रहा था, जैसा सूना लग रहा था उसका मन। लेकिन उसका उसने ख्याल नहीं किया, उस जहर को वह कैसे उगले, जो उसके गले तक भर आया था, इसीलिए वह जहरीली नागिन की तरह फुफकारती हुई इधर-उधर घूम रही थी फैले हुए फन से चोट करनी है और उसी फन पर चोट खानी भी है।

अच्छी तरह से नहाकर शांतनु सूटकेस को उठाकर अपने कमरे में गया। सामने की एक मेज पर तरह-तरह के कागज-पत्तर, शर्तनामे आदि बिखरे पड़े थे। ज्यादातर ईशानी के ही थे। उनके सिवाय बैंक के कुछ फार्म, पास बुक, चेक बुक। इसका अपना रुपया-पैसा, कुछ भी नहीं था, पर एक औरत की ख्याल-खुशी से एक ही रात में उसे धनवान बनना पड़ा सारी जिन्दगी मिहनत-मशक्कत करने के बाद भी इतना पैसा कमा सकना उसके लिए संभव है या नहीं, संदेह है।

मेज के सामने बैठ कर शांतनु ने कुछ छपे फार्मों में बहुत-सी जगह पर कुछ लिख-लिखकर आखिर ठीक जगह पर अपनी सही बना दी। उसके

बाद बैंक का नाम देकर दिल्ली और कलकत्ता शाखा को दो बहुत जरूरी चिट्ठियाँ लिखीं। इन रुपयों का भार और उत्तरदायित्व बहुत है। उस पर कोई भार नहीं रह सकता, वह भारवाही नहीं है। उसके मन की बाँसुरी सूनी है; सूनी है, इसीलिए बजती है। रोगन में उसने ईशानी के नाम के साथ मन की खुशी से बाँसुरी बजाई थी, रुपए के लिए नहीं बजाई! लिहाजा उतने रुपयों पर भी उसका कोई हक नहीं। उसे हस्तांतरित कर देने की चिट्ठी लिख कर उसने दस्तखत कर दी।

कपड़ा-कुरता पहन कर, सब कुछ समेट कर शांतनु जाने के लिए तैयार हुआ। मोटर के सिवा वह एक दिन भी दिल्ली के रास्ते पर नहीं निकला। लेकिन आज जब वह हाथ में सूटकेस लिए दोपहर की तीखी धूप में रास्ते पर पाँव बढ़ाएगा तो गेट का दरबान तो कुछ पूछेगा! उसने मन ही मन दो-एक जवाब सोच लिया। बाँसुरी अब वह नहीं बजाएगा, लेकिन जितने दिन में भी हो सके, एक अच्छा-सा कैमरा उसे खरीदना ही होगा। यदि कलकत्ते की तरफ जाए तो ईशानी के नाच की कुछ नशीली तसवीरें और दिल्ली के कुछ खासे अच्छे चित्र वह बेच सकेगा। अबंगाली व्यवसायी प्रौढ़ होने पर बंगाल की चित्रकला के विशेष अनुरागी होते हैं, ये चित्र चुपचाप उनके पास ले जाने से उसे मोटी रकम मिल जाएगी!

दरवाजे के बाहर कदम बढ़ाकर इधर-उधर ताकते हुए शांतनु एक सुविधाजनक घड़ी की ताक में था कि ईशानी सामने खड़ी न मिले। लेकिन ठीक इसी समय रसोइए ने पीछे से पूछा, साब, खाना दूँ?

—नहीं।—शांतनु ने कहा, बहुत खाने से मेरे पेट में हाजमे की गड़बड़ी हो गई है, भूख नहीं है। अब मेरा पिंड छोड़ो भैया, मैं रास्ते-रास्ते की धूल फाकूँगा।

एक हाथ में सूटकेस और दूसरे में कागज का बंडल दबाकर शांतनु तेजी से बढ़ गया। रसोइया रसोई की ओर चला गया।

जाने के लिए हॉल से होकर जाना पड़ता है। वहाँ काठ के [illegible] पर हाथ रखे सामने ही ईशानी खड़ी थी। शांतनु ने सामने [illegible] कहा, इतने दिनों तक मेरे लिए नाहक ही बहुत खर्च हो गया। इसके लिए जाते समय मैं माफी माँग लेता हूँ।

कोई खास बात नहीं, प्रयोजन नहीं, क्या ही [illegible] ईशानी ने कहा, माफी माँगने से ही क्या खर्च निकल आता है?

पर रक्खा और सबसे ज्यादा खूबसूरत और कीमती जो ब्लाऊज था, उसे ठीक सामने रख दिया। मालूम है, यह सब ईशानी को पसंद हैं। इनके सिवाय कुछ छोटी-मोटी चीजें भी थीं। नाच के लिए घुंघरुओं का जोड़ा, कुछ गहने, कुछ जरीदार मखमली कपड़े—ये सारी चीजें ईशानी के रोजगार के उपकरण हैं, लिहाजा इनकी कीमत है।

ईशानी किस समय बड़े हाल के एक कोने में जा बैठी थी, शांतनु ने देखा ही नहीं था। शांतनु इधर-उधर घूम कर जाने क्या खोज रहा था।

आहट पाकर ईशानी बोल उठी, यह सब क्या हो रहा है ?

शांतनु ने पलट कर कहा, तेरी जरीदार चप्पल कहाँ है, नहीं मिल रही है।

—जो लोग बिना कहे-सुने औरों की चीजें छूते-छाते हैं, उनके ही सूटकेस में चली गई होगी।

बात शायद युक्ति की थी ! शांतनु झट गया और उसने अपने सूटकेस को औंधा उलट दिया। कपड़ा-लत्ता समेत ठक् से कैमरा गिर पड़ा, लेकिन चप्पल नहीं मिली। ईशानी ने कहा, कैमरा तो मेरा खरीदा हुआ है !

सकुचाकर शांतनु ने कैमरे को ईशानी की टेबिल पर रख दिया। उसके बाद सूटकेस को सहेज कर नहाने गया। उसे ईशानी से पहले ही चला जाना होगा।

ईशानी कमरे से चली गई। सारा घर बड़ा सूना लग रहा था, जैसा सूना लग रहा था उसका मन। लेकिन उसका उसने ख्याल नहीं किया, उस जहर को वह कैसे उगले, जो उसके गले तक भर आया था, इसीलिए वह जहरीली नागिन की तरह फुफकारती हुई इधर-उधर घूम रही थी। फैले हुए फन से चोट करनी है और उसी फन पर चोट खानी भी है।

अच्छी तरह से नहाकर शांतनु सूटकेस को उठाकर अपने कमरे में गया। सामने की एक मेज पर तरह-तरह के कागज-पत्तर, शर्तनामे आदि बिखरे पड़े थे। ज्यादातर ईशानी के ही थे। उनके सिवाय बैंक के कुछ फार्म, पास बुक, चेक बुक। इसका अपना रुपया-पैसा कुछ भी नहीं था, पर एक औरत की ख्याल-खुशी से एक ही रात में उसे धनवान बनना पड़ा। सारी जिन्दगी मिहनत-मशक्कत करने के बाद भी इतना पैसा कमा सकना उसके लिए संभव है या नहीं, संदेह है।

मेज के सामने बैठ कर शांतनु ने कुछ छपे फार्मों में बहुत-सी जगहों पर कुछ लिख-लिखकर आखिर ठीक जगह पर अपनी सही बना दी। उसके

शांत और नम्र हँसी से शांतनु का सुन्दर मुखड़ा जरा लाल हो आया। बोला, सो तो नहीं निकलता है, पर इसके सिवाय और किया क्या जा सकता है! हाँ, यह कागज-पत्तर सब ठीक से समझ लेने की जरूरत है। वास्तव में इतने-इतने रुपए मेरे जिम्मे रखना उचित नहीं है। आदमी का मन ठहरा, कब नीयत डांवाडोल हो जाय! रमेन बाबू ने कुछ गैर वाजिब नहीं कहा। मैंने सारी लिखा-पढ़ी कर दी। फिर भी इन कागजों को किसी से दिखा कर समझ लेना जरूरी है। यही भरोसा है कि दत्त चौधरी जिस दिन सब स्वीकार करके अपनी स्त्री को अपनाएँगे, उस दिन इन कागजों को वह समझ सकेंगे। मुझे और कुछ नहीं कहना है।

मेंटल पीस पर सारे कागजों को करीने से रख कर शांतनु एक बार दो डग बढ़ गया, उसके बाद फिर लौट कर बोला, हाँ, एक और छोटी-सी बात। मैं बिलकुल खाली हाथ ही चला जाना चाहता हूँ। अपनी मजूरी के वे कई सौ रुपए मैं बिवतर को दिए जा रहा हूँ। दूसरी बात, मैं जहाँ कहीं भी क्यों न जाऊँ, सारी बातें जताते हुए रमेन बाबू को एक चिट्ठी लिख दूँगा।

ईशानी ने फूलकर कहा, चिट्ठी किसलिए? जो आदमी उतने रुपए की नौकरी जुटा दे रहा है, गिरस्ती बसा दे रहा है, मन के लायक स्त्री ला दे रहा है, उसके पास जाकर एक बार आभार नहीं दिखाया जा सकता था?

शांतनु ने अब की मुँह उठा कर ताका। बोला, कहाँ की नौकरी और कहाँ की स्त्री? सब झूठ ही है। मुझे पास से हटाने के लिए रमेन बाबू ने दो-एक चकमा ही दिया हो, तो कुछ अन्याय नहीं किया है।

—चकमा?—ईशानी तनकर खड़ी हो गई।

—खैर! चकमा ही क्यों न हो, आदि से अन्त तक झूठा ही क्यों न हो! मैं तो खिसक ही रहा हूँ। जिसके गीत-नाच पर एक उतनी बड़ी संस्था खड़ी है, उसे अपनी मुट्ठी में पाए बिना रमेन बाबू का चल भी कैसे सकता है? स्वार्थ पर चोट भला कोई बरदाश्त कर सकता है?—कहते-कहते शांतनु सीढ़ी की तरफ बढ़ा।

ईशानी शांतनु के पीछे-पीछे दौड़ी आई। बोली, रमेन घोष इस तरह से धोखे का खेल खेल रहा है, तूने मुझे यह बताया क्यों नहीं?

शांतनु ने कहा, मैं बाहर का आदमी ठहरा। तेरे घर के झगड़े में मैं दखल देने क्यों जाऊँ? मैं कोई स्वार्थ लेकर तेरे पास नहीं आया, तूने

मदद माँगी थी, इसीलिए इतने दिनों तक था। ख्वाहिश थी, दत्त चौधरी किसी दिन तुझे खुशी-खुशी कबूल करेंगे, वह दृश्य देखकर अपनी आंतरिक शुभकामना जता कर चला जाऊँगा। लेकिन····

ईशानी इस बार हठात् चीख कर बोल उठी, छि-छि-छि, अब यहाँ मेरी मौत हो। बार-बार उस आदमी का नाम लेकर मेरा अपमान करना तुझे जरा भी नहीं खलता है? तू चला जायगा, लेकिन जाते वक्त मुझे लात मार कर इस तरह डुबा जाएगा?

शांतनु ने फिर आश्चर्य से ताका। ज्वालामुखी के शिखर-शिखर से पिघला हुआ लावा उबल-उबल कर निकल रहा था—इस अग्नि में सारी दिल्ली शायद अभी ही जलकर खाक हो जाए! ईशानी खड़ी-खड़ी धू-धू जल रही थी।

चीख उठी ईशानी,—जिस पर मेरे सारे जीवन की घृणा पहाड़-सी ऊँची होकर अड़ी खड़ी है, उसी के गंदे हाथों मुझे सौंपकर तू भागना चाहता है—इतना बड़ा कायर है तू? एक पाखंडी जालसाज के पास हाथ-पाँव बाँधकर तू मुझे छोड़ जाना चाहता है, इतना बड़ा विश्वास-घातक है तू? एक किशोरी कुमारी लड़की की नासमझी के आचरण को तू किसी भी तरह से क्षमा की नजरों से नहीं देख सका—इस युग में पैदा होकर भी इतना बड़ा बर्बर रह गया? धिक्कार है तुझे, धिक्कार! तुम सभी को धिक्कार! मैं आज सब तहस-नहस कर दूँगी।

ईशानी दौड़ती हुई हॉल में आई। मेंटल पीस से कागजों को उठाकर दांत पीसती हुई एक-एक करके सबके टुकड़े-टुकड़े करके फाड़ फेंकने लगी। कागज फाड़ने की आवाज सुनकर शांतनु ने दौड़ते हुए आकर बाधा देना चाहा, लेकिन वह पगली नर्तकी उस दिन कोई भी ख्याल नहीं करके शांतनु पर ही हमला कर बैठी। उसके कुरते को गरदन के पास पकड़ा और फाड़ डाला और दश-प्रहरण-धारिणी जिस दुर्गा ने एक दिन अपना नाम बदल कर ईशानी रक्खा था, उसी ईशानी ने अपने काल-कटाक्ष की निमीलित आँखों, अपने तेज नाखून से नोच कर शांतनु को क्षत-विक्षत कर दिया।

शांतनु बेहया की तरह हँस रहा था। कुरते के अन्दर की बनिआइन में देखते ही देखते लाल रंग निखर आया। चित्रांगदा का वह मैनीक्योर किया हुआ लाल तेज नाखून उसके लिए सुरक्षित था। इस बात को उसने पहले नहीं सोचा था कुरता फट गया—दाम कम से कम पन्द्रह रुपया

—जाने के दिन यह कैसी हरकत की, बताओ ?

ईशानी फिर चीख उठी, कौन जानवर यह कहता है कि मैंने सरकार की आँखों में धूल झोंकने के लिए तेरे नाम रुपये रक्खे हैं ? कौन झूठा आदमी यह कहता है कि मेरा सब कुछ तेरी वजह से बरबाद हो रहा है ? तूने इस बात की क्यों गाँठ बांध रक्खी है कि मैंने दत्त चौधरी को हासिल करने के लिए तेरा पल्ला पकड़ा है ? मैं विक्तर को विक्तर के बाप के हाथों सौंप कर छुट्टी लेना चाहती हूँ, यह बात तुझसे भी ज्यादा कोई जानता है ? मुझ पर संदेह करके तू मुझे कीचड़ में क्यों धँसा रहा है ? मुझ पर इतना बड़ा अन्याय अत्याचार क्यों ? क्यों ?

ईशानी फुक्का फाड़कर रो पड़ी थी, पर हाथ से उसने मुँह को दबा लिया। शांतनु ने कहा, रमेन घोष ने विक्तर को उस तरह से कलंकित किया, तू चुप क्यों रही ?

—इसका जिम्मेवार तू है। तूने मेरी सारी शक्ति छीन ली है।—काँपते हुए बेसब्र गले से ईशानी ने शिकायत की, तेरी बेवकूफी की वजह से सब कुछ चौपट होने को चला है। तू विक्तर को अपने साथ खींच लाया, इसलिए उसकी आँखों में आँसू अधिकारियों की नजरों में आ गए ! तेरी मंदबुद्धि के चलते विक्तर अपने जन्म कलंक का बोझ लेकर दर-दर की ठोकर खाने जा रहा है—तेरे बचपने के चलते एक दिन उस निरपराध कमला की दुनिया को भी आग लगाने वाली है। मैं यह भी कहे रखती हूँ और आज मैने तेरा विश्वास करके तेरे पैरों पर अपने मान, संम्मान, लाज, भले-बुरे सब कुछ की अंजलि चढ़ाई, इसलिए मुझे लात मार कर चला जा रहा है ? तू चाहता क्या है ? क्या पाने से तेरा मन खुश होगा, बताएगा मुझे ?

शांतनु स्तब्ध होकर खड़ा हो गया।

रुलाई से भर्राई हुई आवाज में ईशानी बोली, एक दूसरी लड़की ने भी तेरे मोह से मरीचिका की राह पकड़ी थी, तेरे पीछे घूम कर उसकी जिन्दगी भी चौपट हो जाती। मगर वह मेरी जैसी अभागिन नहीं है, इसीलिए समय रहते बच गई। तुझे लोभ नहीं है, आसक्ति नहीं है, दया-माया-स्नेह कुछ भी नहीं है—इसीलिए तेरी आँखों के सामने सब जल-जल कर मरती हैं तो तुझे खुशी होती है ? इतना स्वार्थी है तू ? अपने सिवाय और किसी भी तरफ तेरी नजर नहीं जाती ?

ईशानी दौड़कर अपने सोने के कमरे में चली गई।

डाइनिंग रूम में खाना ढककर रसोइया कब का जा चुका था। इसलिए बाहर चपरासी, दरवान और ड्राइवर के सिवाय घर के अंदर कोई कहीं नहीं था। कोई नहीं था इसीलिए इज्जत रह गई। शांतनु चुप रह कर देर तक जाने क्या सोचता रहा। उसके बाद बदन पर के दोनों कपड़ों को उतार कर बाथरूम के अन्दर चला गया। ढाई बज गये थे दिन की तीखी धूप से तपी हवा एवं धूल ने अन्दर घुसकर सारे घर को मरुभूमि बना दिया था।

फटे कपड़ों को छोड़कर शांतनु ने फिर एक बार स्नान कर लिया। नाखून की खरोंचें तब भी सारे बदन पर दग-दग कर रही थीं। पानी पड़ने से उनमें जलन हो रही थी। वह एक बार जरा ठिठका, फिर कमरे में जाकर दूसरे कपड़े पहने। दिमाग को जैसे-तैसे बदल कर वह हाल में गया। कागज के फटे टुकड़ों को एक-एक करके बीन कर जमा किया। इनके यों रहने के नहीं चलेगा, जलाकर इन्हें एक बारगी नष्ट कर देना होगा।

लौट कर देखा, ईशानी अपने बिस्तर पर चुपचाप पड़ी है। एकाएक जाने के दिन शांतनु के मन में जाने कैसी वेदना-सी हो आई, सच ही क्या उसके अनजाने उससे कोई अन्याय बन पड़ा है? सुषमा, सिलविया, विक्तर कमला और यह स्त्री—जिनके लिए उनके मन में अशेष कल्याण-कामना के सिवा और कुछ नहीं है,—कहाँ, उनके लिए अमंगल की आज तक कोई बात याद नहीं आयी? कहाँ भूल हुई? कहाँ पर अन्याय हुआ? बड़ी चाची, भैया, भाभी, रमेन बाबू—एक के बाद दूसरा—उसके प्रति ऐसा विरूप क्यों हुआ? उसने किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं, किसी के प्रति उसे घृणा नहीं है, फिर भी उसकी झोली में सारी दुनिया की इतनी लांछना क्यों भर गई, क्यों भर गया अपमान, उपेक्षा, घृणा? उसे लोक-समाज में दाना क्यों नहीं नसीब हुआ? उसे किसी हृदय की छाँव में ठाँव क्यों नहीं मिली? तो क्या उसके जीवन की ऐसी कोई परिणति है, जिसे साधारण से बाहर कहा जा सकता है। उसके भाग्य-विधाता ने कहीं कुछ ऐसा सजा रक्खा है क्या कि जिसके लिए उसे इतनी क्षय-क्षति स्वीकार करते जाना पड़ रहा है? ऐसा कोई प्यार है कहीं, जो उस पर चोट करके, उसे जला कर निर्मल कर दे? ऐसा दुःख, ऐसी पीड़ा कहीं है, जो उसके स्वभाव की सारी चटुलता और जटिलता को मिटा कर उसके सारे जीवन को आँसू-धुली पवित्रता में बदल दे? है क्या कोई परमार्थ? कहीं किसी अजाने परम माधुर्य का स्वाद?

शांतनु आगे बढ़ा। ईशानी के माथे पर हाथ फेर कर कहा, ईशानी मैं माफी माँगता हूँ। तू उठ।

ईशानी ने कोई जवाब नहीं दिया। कई डग पीछे हटकर शांतनु एक कुर्सी पर बैठा रहा। घड़ी में चार बज गए थे।

कुछ देर में ईशानी खुद ही उठ बैठी। उसकी दोनों आँखों को देखकर ही लगा, इतनी देर में आँखों से काफी लहू चुआ है। लेकिन तपी धूप की हवा से मुँह लाल हो उठा था। बालों की लटें चेहरे पर आ पड़ी थीं। उनको हटाकर ईशानी ने आँचल को वदन पर डाल लिया। शांतनु सिर झुका कर बैठा था।

कुछ देर पहले एक आंधी आकर निकल गई। अवसाद और क्लांति ने ईशानी को घेर लिया था। शांत गले से उसने पूछा, हवाई जहाज कब छूटेगा ? बता गया है ?

—रात के साढ़े दस बजे।

ईशानी को ढूंढे कोई बात नहीं मिली। निर्विकार कंठ से उसने फिर पूछा अभी दिल्ली में ही रहेगा या और कहीं जाएगा ?

शांतनु ने सर झुकाकर ही छोटा-सा जवाब दिया, कोई ठीक नहीं है।

—कलकत्ता लौटने को जी नहीं चाहता है ?

—क्या होगा लौटकर ?

बिछौने से उत्तर कर ईशानी एक बार सारे कमरे में घूम गई! इस-उस चीज को छुआ-छाया। एक बार बाहर से इधर-उधर घूम आई। उसके बाद शांतनु के पीछे जाकर उसके गले के पास हाथ रख कर बोली अच्छा, यह तो बता, तुझे छोड़ते हुए ऐसा क्यों लग रहा है कि मेरा सब समाप्त हो गया ? खैर, मुझे तो छोड़े ही जा रहा है; पर तू अकेला रह सकेगा ? कौन देखेगा तुझे ?

शांतनु चुप रहा।

ईशानी ने फिर कहा, आज याद आ रहा है, मैंने तो एक दिन भी तुझे जतन से नहीं खिलाया ! तेरे साथ हँसी-मजाक में दिन काटे, तेरे लिए रसोइए से खाना पकवाया, अपने गौरव की नकली सूरत तुझे दिखाई, झूठी बातों की बहार में शायद हो कि तेरे मन को भुलाने की भी कोशिश की, लेकिन क्यों लग रहा है, मेरा सब कुछ झूठा है, पोला। तुझसे सदा दावा ही करती रही, लेकिन अपनी कीमत कितनी है, इसे एक बार भी नहीं सोचा। तू मुझे माफ करता जा शांतनु। सिर्फ माफ ही नहीं, मेरी

सारी जिन्दगी को धिक्कारता जा। जिससे मैं आज जो घृणित उत्तेजना मुझमें प्रकट हुई, इसका किसी दिन प्रायश्चित्त कर पाऊँ।

ईशानी की सुघर और कोमल भुजा शांतनु के गले को घेर कर जरा-जरा काँप रही थी। फूलकाठी की उस नासमझ लड़की, के जीवन में, जिसने रोने के साथ ही जिन्दगी का सफर शुरू किया, आज दस साल के बाद इतनी धन-दौलत, मान-इज्जत, स्वच्छंदता के बावजूद भी रोना ही चल रहा है। लेकिन शांतनु कहीं इस रोने को शौकिया न समझे, इसलिए ईशानी उसे दिखाना नहीं चाहती। शांतनु के सिर का पिछला हिस्सा भी उसके बदन से छू रहा था, उसी से वह उसकी रुलाई के कंपन का अनुभव कर रहा था।

गले को साफ करके ईशानी ने फिर सहज गले से कहा, तुझे एक दुःख की बात बताऊँ। हजार-हजार स्त्रियों की तरह अचानक मैं भी नीचे गिर गई, लेकिन शक्ति रहते हुए भी तूने मुझे उठाया नहीं। इसका कारण मैं जानती हूँ शांतनु।—पेट के लड़के को किसी के सामने मैंने अपनी संतान कह कर स्वीकार नहीं किया, लेकिन उस लड़के को गोदी में उठाकर अगर दर-दर भीख माँगती फिरती, तब शायद तेरे मन में थोड़ी-सी सहानुभूति उपजती। मैं तो जानती हूँ, तेरे मन में यह संदेह बहुत बड़ा होकर रह गया कि जो लड़की एक बार पुरुष के पास मान गँवा चुकी है, वह कितनी ही नासमझ-नाबालिग ही क्यों न हो, उसमें कितनी ही नासमझी क्यों न हो—वह घूरे की जूठन के सिवाय और कुछ नहीं है! पुराण में, इतिहास में, काव्य में—वह लड़की बार-बार नाक मलकर भी तेरे संदेह के हाथ से बच नहीं सकी।

शांतनु इस बार शांत गले से कहने को मजबूर हुआ, यह बात सही नहीं है ईशानी।

ईशानी का गला फिर काँप उठा।—यह अगर सही नहीं है तो अपने कलेजे में भरे हुए अमृत को तूने किसके लिए दबा कर रक्खा है? क्यों तब तूने मुझे उससे वंचित किया?

शांतनु ने विनय के साथ कहा, मेरे प्रति तेरी इस आंतरिक श्रद्धा के लिए मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ ईशानी। प्यार अतिशयोक्ति करता है, यह मैं जानता हूँ। लेकिन एक बात निश्छल भाव से स्वीकार करता हूँ, मुझे क्षमा कर देना।

—क्या, बता?—उत्सुक होकर ईशानी सामने आ खड़ी हुई।

शांतनु ने कहा, तूने दत्त चौधरी पर अन्याय किया है। अभी भी कर रही है। तूने क्या कलेजे के अमृत का स्वाद उससे नहीं पाया ?

—नहीं ! नहीं पाया ! एक क्षण के लिए भी नहीं पाया। कौतुक और कौतूहल के खेल को कभी अमृत का स्वाद मत कहना। तू क्या इतना नादान है कि दुर्घटना को प्यार कहेगा ? तू उससे मेरे सामने ले आ। मैं ऊँचे गले से उसके मुँह पर कहूँगी कि मैं दस साल से उससे भी घृणा करती आई हूँ, अपने से भी। यह सच है कि उस दिन उस लड़के के चेहरे को देखकर जरा नशे में आ गई थी, लेकिन प्यार को कोई चेतना जगने के पहले ही वह गायब हो गया था। इसीलिए आज के दत्त चौधरी की कोई कीमत मेरे पास नहीं है—वह तुच्छ से भी तुच्छ है। मेरी इस बात का विश्वास करने से तेरी सारी भूल जाती रहती शांतनु।

बाहर पैरों की आहट हुई। गला खँखार कर रसोइया घर के बाहर आ खड़ा हुआ। हाथ में चाय की ट्रे। बगल में प्लेट में जलपान।

—भीतर आओ।

अन्दर आकर तिपाई खींचकर उसने उस पर ट्रे रक्खी। उसके बाद जानना चाहा, रात के लिए क्या-क्या भोजन बनेगा ?

ईशानी ने कहा, अब खाने को कुछ भी नहीं चाहिए। जो कुछ है, वही गरम करके रख दो। उसके बाद तुम्हारी छुट्टी। ठहरो—

अपने वैनिटी बैग से दस रुपए निकाल कर उसके हाथ में देते हुए ईशानी ने कहा, आज रात हम लोग चले जा रहे हैं—यह तुम्हारी बख्शीश।

बख्शीश लेकर नमस्कार कर के वह चला गया।

ईशानी ने कहा, अब मैं नहा लूँ। मेरे अंदर कहीं भी कोई लुका-छिपा नहीं है शांतनु। इसके लिए तू अनंत काल तक मुझसे तर्क करना, मैं वह तर्क चलाती रह सकूँगी।

कपड़े-लत्ते लेकर ईशानी नहाने गई। शांतनु चुपचाप एक ही तरह से बैठा रहा।

पन्द्रह मिनट में नहाकर ईशानी ने चाय और जल-पान शांतनु की ओर बढ़ा दिया। बोली, जाने के दिन मुझ पर नाराज होकर दिन भर बिना खाए रह गया, यह मैं याद रक्खूँगी। लेकिन यह कहे देती हूँ, मेरी अगर अपनी कोई शक्ति हो तो उस शक्ति के आकर्षण से ही एक दिन तू मेरी ओर मुँह फेरेगा। शांतनु, औरत होकर पैदा होता तो जानता, सतीत्व

स्त्रियों के प्राण की चीज है, वाहर की नहीं। सोने की चीज जल कर काली हो जाती है, लेकिन असली धातु नकली नहीं हो जाता।

देखते ही देखते दिल्ली में साँझ की रोशनी जल गई।

चाय पीकर शांतनु उठ खड़ा हुआ। वोला, अब मुझे जाना होगा।

मुँह की ओर देखकर ईशानी बोली, कहने का साहस तो नहीं होता—साथ में कुछ रुपए लेगा ?

—नहीं। रुपए की अव जरूरत नहीं होगी।

ईशानी उठकर गई। कैमरा लाकर बोली, इसे साथ रख ले। इसके विना तेरा नहीं चलेगा। सूटकेस में भर ले इसे।

शांतनु ने कैमरे को कंधे में झुलाकर कहा, रहने की जब जगह ही नहीं है, तो सूटकेस कहाँ रक्खूँगा ? उसे तू कलकत्ता ले जा। अच्छा, चला।—और कहते-कहते वह सचमुच ही निकल कर चला गया।

ईशानी वुत वनी-सी बैठी रही। न तो हिल सकी, न उसने उठने की कोशिश की। सूनी इमारत मसान-सी लग रही थी। ईशानी की दोनों आँखें लहर उठीं और बरबस आँसू की धारा वह निकली।

बारह

सुनसान चाँदनी रात में हवाई जहाज आकाश में उड़ता चला जा रहा था। सूने आसमान की सारी दिशाएँ अप्सरालोक-सी लग रही थीं। चारों ओर सौर-मंडल का अनंत विस्तार, ओर-छोरहीन व्यापकता; नीचे की धरती बड़ी छोटी-सी। नीचे की तरफ ताकने से कहीं भी कोई मानव-बिन्दु नहीं दिखाई देता। यह यंत्र-पंछी वर्षा के बादलों में रह-रहकर खो जाता, तेजी से दौड़ते हुए उन बादलों से बारिश के झोंकों की चोट, उसके धक्के से जहाज हिल-हिल उठता है—और फिर वही अखंड, शांत, सुनसान चाँदनी रात मानो आदि अन्तहीन काल के महाकाव्य की नाईं अपने को बिखेरे हुए है। अनोखा है सौरलोक। ईशानी की आँखों के आँसू सूख गए।

मशीन की तीखी आवाज कानों को सहा गई। अब आकर एयर-होस्टेस कानों में डालने के लिए रुई दे गई। ऊपर उठने और नीचे उतरने के समय कानों में थोड़ी पीड़ा होती है। रुई डालने से वह पीड़ा कुछ कम होती है। कलाई की घड़ी में देखा, तीन बज रहे थे। दो घंटा पहले नागपुर में उतर कर उसे दूसरे हवाई जहाज पर सवार होना पड़ा था।

नीचे मेघ-लोक, उससे भी कहीं नीचे चिड़िया उड़ती हैं। लेकिन जहाज अनंत ऊँचाई के व्योम-लोक पार करके उड़ रहा था। यहाँ चिड़िया नहीं पहुँचतीं, धरती की कोई आवाज इस सीमाहीन ऊँचाई को छू नहीं पाती। आदि-अन्तहीन इस निःशब्दता के अन्दर भय और भावना की चेतना खो गई है।

ईशानी सीट पर निढाल-सी पड़ी रही—आँखें बंद कर लीं। अजाने सौर-लोक के चाँदनी धुले गगन में राह भूला यह पंछी उड़ता चला जा रहा था। कहाँ जायगा, कोई पता नहीं। एक अपार धूसरता में सामने की सारी परिव्याप्ति ढँक गई थी।

ईशानी की आँखें निंदा आईं। छोटे-छोटे सुख-दुःख, छोटे-छोटे खुशी-गम—सब मानों उसके मन में चुप हो गये हैं। उनकी अब कोई भाषा सुनाई नहीं पड़ती।

सुबह के पाँच बजे वह धरती पर उतरी। दमदम के हवाई अड्डे पर वारिश हो रही थी। उस वारिश में एड़ी-चोटी भीग कर वह जैसे जी गई। यह दिल्ली नहीं है, यहाँ की हवा कोमल-सजल है, अपनी जन्मभूमि ने करुण स्नेह से जननी की तरह उसे गले लगा लिया। नंबर लगे हुए सूट-केस को छोड़कर सिर्फ छोटे से हैंडवैग और वैनिटी वैग को हाथ में लटकाए वह दौड़कर एनक्लोजर में आई।

दौड़ी कि नाची, यह कहना कठिन है। खूबसूरत एयर-होस्टेस ने पानी से भीगे रेशमी कपड़ों-जड़े उसके देह-लावण्य की ओर बार-बार ताका। उसकी प्रशंसा सनी हँसी में ईर्ष्या की जरा छूत-सी लगी। उसके पास अगर ईशानी जैसी मनोरम देहलता का वरदान होता तो तनखा पचास रुपये बढ़ जाती। इतना मक्खन खाने के बावजूद उसका 'फीगर' वैसा ही रह गया है ?

शेड में पहुँचते ही तिवारी सामने मिल गया। झुककर उसने कहा, नमस्ते मेम साहब ?

—नमस्ते ! गाड़ी कहाँ रक्खी है तिवारी ?

तिवारी ने उसके हाथ से हैंडवैग लेकर कहा, सामने ही खड़ी है।

ईशानी ने तिवारी को सूटकेस की रसीद दी। कहा, इसे ले आओ। मैं चाय पी लूं।

वह फिर धरती पर आ पहुँची। उसके जीवन की चंचलता का अंत नहीं। ग्रह-नक्षत्र, चाँद-सूरज, जीवन-मरण सब कुछ चंचल, सब की गति तेज। कलकत्ता, लेकिन कलकत्ता नहीं, ईशानी के अंग-अंग में अभी दिल्ली ही जड़ी थी। दिल्ली के मीठे आलिंगन-पाश से अभी उसकी नींद नहीं खुली। यहाँ देह हवा से भी द्रुतगामी हुई, पर मन दिल्ली में ही पीछे पड़ा रह गया ! दिल्ली, दिल्ली—दिल्ली चलो ! नाचते-नाचते ईशानी हवाई अड्डे के रेस्तराँ में गई।

वर्षा से भीगकर लथपथ हालत में एक प्याला चाय पीकर उसने उसका दाम एक रुपया दिया। वॉय ने सलाम बजाया। वह आदमी शायद हो कि पचीस रुपये से ज्यादा वेतन नहीं पाता, पर बख्शीश मिला कर पाँच सौ रुपये कमाता है। अंतर्राष्ट्रीय तौर-तरीकों के मुताबिक इस बख्शीश ने ही प्रधानता पाई है।

हैंडवैग निकाल कर तिवारी पोर्च के नीचे गाड़ी पर इंतजार कर रहा था। ईशानी आकर गाड़ी में कूद-सी पड़ी। नन्हें डैने वाली चुलबुली

रंगीन चिड़िया को लेकर तिवारी को गाड़ी हुस् करके हवाई अड्डे बाहर निकल गईं।

काफी दूर। उत्तर की शहरतली से दक्खिन की शहरतली। कम से कम बारह-चौदह मील, बल्कि ज्यादा, कम नहीं। गाड़ी में किसी तरह की आवाज हो रही थी। काफी दिनों से चल रही है, गैरेज में नहीं भेजी गई है। झर-झर बारिश हो रही थी, आसमान बादलों से ढँका था। चारों तरफ बेशुमार लता-पौधे उग आये थे। गाड़ी मुड़ी। यह रास्ता जैसे चीन्हा-चीन्हा-सा हो। उसे दस साल पहले की बात याद हो आई। साहब-बगान का रास्ता ऐसा ही एकांत और सुनसान था। उसी मैदान के किसी एक रास्ते के छोर पर औंधे मुँह वह यंत्रणा-जर्जर जीवन का बेबस रोना रोई थी।

—तिवारी, जोर से गाड़ी चलाओ।

गाड़ी को और भी तेज कर दिया गया।

सबसे पहले सिलविया से मिलना, उसके सभी दुःख-दुर्दिन की निश्छल मित्र! उसकी समस्या को सबसे पहले जानना जरूरी है। वह विलायत चली जाएगी, तो लौटेगी नहीं। विक्तर को बड़ा ही नुकसान होगा। ...न्ना दाई ही उदयसिंह की वास्तविक माँ थी। इतिहास कहेगा, यह ...टना सत्य नहीं है। लेकिन मनुष्य के चिरकाल का इतिहास कहेगा, ...ससे ज्यादा सत्य और कुछ भी नहीं।

मध्य कलकत्ते के किसी रास्ते से घूमते हुए गाड़ी कनवेंट का गेट पार ...रके बरामदे के नीचे जा लगी। कल शाम को तार आया है, रमेन बाबू ...भेजा है। सो मोटर की आवाज पाते ही सिलविया भर मुँह हँसकर ...र निकल आई। तीस के करीब की उम्र, लेकिन संयत कौमार्य की ...क से चेहरा खिला हुआ।

—डैम, बट....गालियाँ देती हुई ईशानी हँसकर उससे जा लिपटी। ...सिलविया ने मजाक करके कहा, तुम अपने बदन में प्रेमो की खुशबू ...ले आई हो। मैं तुम्हारी इस उमंग का रहस्य खूब समझ रही हूँ। ...ते कैसे गुजरे?

...ानी ने कहा, यकीन मानो, सिर्फ झगड़ा और कचकच करते बीते। ...सवाय कोई घटना नहीं।

...सच? शांतनु को तब तो मर्द कहना खटकता है जी? बड़ा स्वस्थ

आदमी है तो भी ? ईशानी ने कहा, बेहद। मैं तो बिलकुल बेहाल रही।

—अच्छा ! - सिलविया भी हँसी। फिर बोली, अच्छा नहीं लग रहा है। ग्रैन-माँ कहती थी, बहुतेरे मर्द शिकार करते हैं और बहुतेरे शिकार से खेल भी करते हैं। तुम्हारा कौन-सा रहा ?

दोनों हँसते-हँसते लोटपोट हो गईं।

दोनों जाकर दफ्तर वाले कमरे में बैठीं। सिलविया ने कहा, चाय मँगवा दूँ ?

—धन्यवाद !—ईशानी ने कहा, चाय पी आई। सुनो, काम की बात कहो। तुम्हारी परिस्थिति क्या है ?

सिलविया ने लमहे में आँखें दबाकर इधर-उधर देखा। बोली, वह सब फिर होगा। विक्तर को जहाँ रख आई, वह जगह तो अच्छी है न ? स्कूल खुलने में जरा देर है। पर वह आयेगा कब ? पढ़ाई चौपट हो रही है।

रेक्टर साहब गले में सोने का एक क्रूस लटकाए इस कमरे से होकर दूसरे कमरे में जा रहे थे। ठिठक गए। मुस्कुराकर ईशानी को सुप्रभात कहा। ईशानी ने वैसा ही किया। वह चले गए।

ईशानी ने अपने बैग से दस-दस के नोटों का एक बंडल निकाला। सिलविया बोली, इतनी जल्दी भी क्या ! आज न भी देने से चलेगा। फोन करके तुम्हें बताऊँगी।

दबे हुए गले से ईशानी बोली, अब मैं बिलकुल अकेली हूँ ? तुम मेरे यहाँ कब आ रही हो ?

सिलविया ने डर कर फिर से कनखी से उसे मना किया। मुँह से बोली, हाँ। बहुत-सा काम बाकी पड़ गया है। कुछ सामान खरीदना है। शनि-वार को एक बार न्यू मार्केट जाऊँगी। दोपहर को।

इशारा साफ था। शनिवार को वह ईशानी के यहाँ जाएगी। ईशानी बोली, रुपये तुम जमा ही कर लो सिलविया। मैं जरा खर्चीली हूँ। सब समय पास में रुपये नहीं रहते। खैर, तो अभी चलती हूँ। समझ ही रही हो, सीधे तुम्हारे यहाँ आई हूँ। अब घर चलूँ। तुम फिक्र न करो, विक्तर दिल्ली में मजे में है।

ईशानी गाड़ी में आ गई। सुबह के साढ़े आठ बज गए। गाड़ी घर की ओर दौड़ी।

गाड़ी में बैठे-बैठे ही महल के सारे कमरे मानो एक पीड़ादायक सूना-

पन लिए उसकी आँखों में नाच गये। बहरहाल एक-एक कमरे को शांतनु ने भर रक्खा था। सारे सरो-सामान छोटे और मामूली, हर अचल असबाब, सोने के कमरे के हर बिस्तर-सब मानों शांतनुमय। इतने दिनों में ईशानी ने अपने नारी-जीवन के बहुत अंश को देख लिया, इतने दिनों तक वह अपनी ही अभिव्यक्ति देखती आई लेकिन आज उसकी संपूर्ण सत्ता के मूल केंद्र में हाथ में बाँसुरी लिए शांतनु सिंहासन पर विराजमान है। उसकी सारी अभिव्यक्ति में शांतनु ने नए सिरे से विजय हासिल की है। ईशानी साथ में एक सबल प्राण ले आई थी—अधीर और अस्थिर एक चंचल जीवन, अपने को खिलाने की एक वासना विह्वलता—किंतु इतने दिनों में इनका परमार्थ उसकी नजर में नहीं आया। अपनी मेधा-शक्ति, प्रतिभा कार्यक्षमता, सर्वाङ्गीण योग्यता—इन सब ने कभी भी उसे स्थिर नहीं रहने दिया, ये सब उसे एक से दूसरी जगह भटकाते फिरे, ले जाते रहे एक से दूसरी घटना में, एक से दूसरी कामयाबी में। लेकिन वह सब आज ऐसी एक भावना में सार्थक होने जा रही थी, जो उसके जीवन में अभावनीय थी। इतने दिनों के बाद उसकी उम्र के खंड-क्षुद्र भग्नांशों ने एक संहति पाई, यह उसके जीवन का एक नया उद्दीपन है। इन सबने आज एक के बाद दूसरा अभिनव अर्थ ला दिया। आज तक पथ अंतहीन था, उस पथ पर चलते हुए आँधी, आघात, पीड़ा तथा विपदाओं से वह क्षत-विक्षत हुई है। अँधेरे में उसने ठोकरें खाई हैं। दोनों पाँवों को घसीटते हुए कितनी ही बार दुर्गम को पार करने में औंधे मुँह वह गिरी है कितनी ही बार आँसू और बारिश का पानी एकाकार हुआ है। उसकी आँखों के आगे बार-बार अमावस का अँधेरा घिरा है लेकिन आज गोया एक मंजिल मिल रही है, एक लक्ष्य पा रही है वह। रास्ते का अंतिम छोर शायद देखा हुआ भी है। विरह की शून्यता का चाहे कुछ न हो, लक्ष्य उसका साफ हो गया।

लेकिन उसके अनेक प्रकार के कल्पना-विलास में एक यह भी नया वैचित्र्य तो नहीं है? उसकी चिंता से शांतनु को क्या मिला? उसने स्वयं शांतनु को क्या दिया? सारा रास्ता मधुर लग रहा है, क्योंकि उसमें वह शांतनु को देख रही है। शांतनु ने अपने को उसी की सत्ता में प्रकाशित किया है, उसी के मर्म-मर्म में। उसकी धमनियों के लोहू के प्रवाह में बांसुरी की धुन गूंज रही है, उसके हृदय के हर छोर पर घनी वर्षा की तरंगों का उच्छ्वास उठ रहा है। लेकिन इस अनास्वादित-पूर्व हृदय के आवेग के

पहले उद्‌बोधन से बाहर काल्पनिक सत्य के बजाय वास्तविक सत्य कितना है—इस प्रश्न का उत्तर कहाँ है ? श्रीराधा के मिलन की आकुलता में बाँसुरी उसके अस्तित्व के मर्म तक को रुला सकती है, लेकिन वह तो सिर्फ केवल अभिसार की कल्पना है—? वास्तविक जगत् की गिरस्ती में दोनों का स्पष्ट परिचय कहाँ है ? उसके जीवन में नए रास्ते से नई गंगा लाई —लेकिन उसकी प्यास मिटी क्या ?

गाड़ी गेट के पास पहुँची। दरवाजा खोलकर उतरते ही उसकी नजर नीचे के पंजाबी किरायेदारों के घर की ओर गई। दो-तीन महिलाएँ बरामदे पर बहुत ही उदास मुँह लिए खड़ी थीं। उनमें से एक ओढ़नी के छोर से आँसू पोंछ रही थी।

बगल से ऊपर को जाते समय एक ने कहा, नमस्ते ईशानी जी। ईशानी रुक गई। कहा, नमस्ते बहन जी। बात क्या है ? रो क्यों रही है ?

ये सब पानीपत के हैं। कलकत्ते में कारबार है, देश में कारखाना। वहाँ राजरतन कौर नाम की स्त्री का पति बहुत बीमार पड़ गया है। यही समाचार सुनकर यह सब घबरा गई हैं। आज ही थोड़ी देर पहले इन लोगों ने द्रुतगामी तार भेजा है। उसी की चर्चा हो रही थी। ईशानी ने हमदर्दी दिखाई, भरोसा दिया और उधर चली गई।

रामतीरथ उसे नमस्कार करके खड़ा हो गया। पीछे-पीछे आकर तिवारी हैंडबैग दे गया। गिरस्ती उसकी उजड़ी हुई-सी नहीं थी। चारों ओर साफ-सुथरी सजी-सजाई। और कुछ हो चाहे नहीं, किन्तु वह एक ऐसा जीवन बिता रही है, जो आज की बहुतेरी स्त्रियों का आदर्श है। हर कमरे में अलग-अलग रुचि के असबाब, चारों ओर खुला, हवादार, प्रकाशमय वातावरण और दूसरी ओर बाधा-बंधनहीन स्वच्छंद स्वाधीनता। असंयत उच्छृंखल दिन बिताने का ऐसा मौका बहुत-सी औरतों को सहसा नसीब नहीं होता। और, संयम की रक्षा की ऐसी कठोर अग्नि-परीक्षा भी आमतौर से किसी स्त्री के जीवन में नहीं दिखाई देती। इसी वजह से शांतनु का पैना, तीखा परिहास छुरी की धार जैसा हर कमरे में आकर कौंध उठता था। यह बात सत्य है कि ऐसे एक तन्दुरुस्त, खूबसूरत और मजबूत पुरुष के ऐसे कठिन चरित्र का बन्धन इससे पहले ईशानी को देखने को नहीं मिला।

बहुत दिनों के बाद ईशानी अपने कसरत के कमरे में दाखिल

और, प्राय: आधे घण्टे के बाद पसीने से तर और इखरे-विखरे हाल में वह नहान घर में चली गई।

सामानों के साथ नंदू लगभग ग्यारह बजे पहुँचा। वह दिल्ली घूम आया था इसलिए नौकरों में उसकी इज्जत बढ़ गयी। बुढ़िया नौकरानी रसोई के आसपास काम कर रही थी, उसने भी दौड़ते हुए आकर नन्दू को दुआ-सलाम किया। नन्दू ने वीर के-से दर्प से सबसे कहा, बताऊँगा, एक-एक करके सब बताऊँगा। तुम लोगों के सात जनम के तप का फल है कि ऐसी मालकिन के यहाँ काम कर रहे हो। पन्द्रह दिनों में मैं तीन सौ रुपये ऊपर से कमा कर लौटा हूँ, हाँ।

—ऊपरी कमाई? यह फिर क्या? सबने नन्दू को घेरा।

तौलिया हिलाकर हवा खाते हुए नन्दू ने कहा, यह नहीं समझ सके? यह तो पानी जैसा साफ है। जितने भी लोग वहाँ दीदी जी से मिलने आए, सभी दो-चार, दस रुपये मुझे बख़्शीश देकर ही गये। अजी, कुल-कब्जा तो मेरे ही हाथों में था। पुरोहित जी के पाँवों में प्रणामी रख दो, ठाकुर के दर्शन करो।

नन्दू के दिल्ली में रहने की कहानी सुनकर सब मुग्ध हो गए। बाथ-रूम से निकल कर ईशानी ने गीताली संघ में फोन किया। दफ्तर में रमेन बाबू के सहायक एकाउंटेंट नानू बाबू मिले। ईशानी ने बताया, मैं आज सवेरे आई। रमेन बाबू दो-एक दिन में आ जाएँगे। आप लोगों का बही-खाता तो सब तैयार है न?

जवाब मिला, जी हाँ! जो थोड़ा-सा बाकी रह गया है, वह आज दोपहर को ही पूरा हो जायगा।

—ऑडिट हो गया है? बैलेंस शीट?

—सब कुछ तैयार है। सिर्फ आपकी सही बाकी है।

ईशानी ने बताया, मैं ठीक समय पर आ जाऊँगी। लेकिन कुछ हो-हल्ला न हो।—टेलीफोन रखकर वह चली आई।

रामतीरथ ने बरामदे की टेबिल पर बहुत सारा कागज-पत्तर रक्खा और चाय-जलपान लाकर रख दिया। चाय की घूंट लेती हुई ईशानी ने एक के बाद दूसरी चिट्ठी खोली। दिल्ली की कामयाबी को लहर कल-कत्ते तक पहुँची। कुछ पत्र उसी की प्रशंसा के थे। दो पत्र ग्रामोफोन कंपनी के थे। एक टेलीवीजन का अनुबंध पत्र था। बंबई की एक फिल्म कंपनी के स्थानीय दफ्तर से उसके नाच के लिए एक प्रस्ताव आया था।

सिनेमा में पृष्ठ-संगीत देने के लिए विशेष अनुरोध। दो-एक पत्रों में उसके दर्शन की अनुमति माँगी गई थी।

ईशानी जरा मुस्कुराई। अनुरागियों के प्रशंसा पत्र तो फिर भी बरदाश्त किए जा सकते हैं, पर भक्त लोग सामने बैठकर जब तारीफ के पुल बाँधने लगते हैं, तो वह कैसा कष्टकर होता है, यह प्रत्येक कलाकार जानता है। उपमा सुनने में जरा कैसी तो लगती है, फिर भी याद तो आती है। पूजा-मंडप की मूर्ति निर्जीव होती है, जभी खैरियत है! देवता के जान नहीं होती वह इसीलिए जी गए हैं!

उस ढेर में से कुछ चिट्ठियाँ निकाल कर ईशानी फिर जाकर टेलीफोन के लिए बैठी। चिट्ठियों के मुताबिक फोन करके सबको पत्रों के अनुरूप जवाब दिया। दो बैंकों को अंतिम तारीख पर रिटर्न भेजने के लिए कहा। इस तरह से आठ-नौ जगह फोन करके सारी बातें समाप्त करने में प्रायः एक घंटा लग गया। उसके बाद वह खाने के कमरे में आई। एक बज चुका था। रामतीरथ खाना ले आया।

एकाएक रमेन बाबू की बात याद हो आई। ईशानी के होठों पर मुस्कराहट आई। रमेन बाबू को उसकी यह अकेली की जिंदगी ही पसंद है। तमाम दिन वह उलझी रहे, परेशान रहे, हलचल में रहे, उन्हें इसी में खुशी है। धन, स्वच्छंदता, विलास, संभोग—किसी बात की कमी न रहे। उसे तमाम तारीफ मिले, सब जगह उसकी इज्जत हो, वह सबकी प्रिय हो, इससे रमेन बाबू को बेहद खुशी है! इनसे नाच-गान की संस्था की तरक्की होती रहेगी, इन्हीं से रमेन बाबू की तकदीर का राजपथ खुला रहेगा। ईशानी किसी खास व्यक्ति की प्रिय हो, इस पर रमेन बाबू को घनघोर आपत्ति है। पक्के दुनियादार हैं वह। प्यार, प्रेम—यह सब उनके अभिधान में नहीं है। वह सब गृहस्थ समाज के लिए है—कला की दुनिया में वह घातक है, बाधक है! शांतनु उन्हें शुरू से ही बरदाश्त नहीं था। सामाजिक सौजन्य के नाते बहुत दिनों तक उन्होंने भलमनसाहत के मुखौटे को किसी तरह से रखा था, उसके बाद उस मुखौटे को उन्होंने खुद ही उतार फेंका। उन्हें मालूम है कि रास्ते के काँटे को हटाया नहीं गया तो हर कदम पर ईशानी के बदन में चुभेगा। ईशानी ने पिछले कई महीने कोई काम नहीं किया, किसी विषय में ध्यान देने का समय उसे नहीं मिला। किसी समस्या को सुलझाने में उसने दिलचस्पी नहीं ली। लेकिन इस बार सहसा रमेन बाबू ने शायद आप ही अपनी दक्ष

भोजन की थाली से सिर उठाकर ईशानी ने एक बार दूसरी ओर ताका।

इस बार उन्होंने खुलकर जिस गंदी मनोवृत्ति का परिचय दिया, ईशानी उसे भूली नहीं। उन्होंने विक्तर के प्रति बड़ा गंदा मनोभाव दिखाया—लेकिन उसकी चूंकि उन्हें जानकारी नहीं है, इसलिए वह क्षम्य है। उनका अक्षम्य अपराध बन पड़ा है शांतनु के प्रति। उनकी उस सोची हुई चाल और कुटिल क्रूरता का जवाब ईशानी जरूर देगी। अब रमेन बाबू को यह दिखाने की जरूरत है कि ईशानी ने अर्थशास्त्र में एम० ए० पास किया था। उन्हें यह जता देना जरूरी है कि ईशानी चूंकि भली थी, इसीलिए वह उनकी स्वार्थपरता के छल-कपट को बरदाश्त करती रही। याद आया, उसकी एक बात में रमेन बाबू की ओर जरा कटाक्ष-सा था, इसके लिए शांतनु ने उसे किसी भी तरह से क्षमा नहीं किया। शांतनु इतना भला है। शांतनु का मन रसग्राही है, दृष्टि निरपेक्ष। न्याय-विचार में शांतनु में जरा भी कहीं पक्षपात नहीं था, इसके लिए ईशानी ने उसे बहुत बार चिकोटी काटी है। बहुत बार शांतनु ने बड़े कटु मजाक से ईशानी की आंतरिकता पर चोट की है, बहुत बार बातों की चतुराई से ईशानी के चरित्र की सतता को संदेह से कुंठित किया है—लेकिन उसका कोई भी काम कभी भी किसी स्वार्थ या आसक्ति से अनुप्राणित नहीं था। अपने आचरण की निर्मलता, निरासक्ति के प्रति अटूट निष्ठा और दृढ़ संयम से सब प्रकार के भोग और लोभ से निर्विकार भाव—इन सबने शांतनु को पहेली-सा कर दिया है। रमेन बाबू को इसकी कितनी जानकारी है!

अपनी निष्क्रियता और सौजन्य के कारण ईशानी इस बार रमेन बाबू को माफ करने को हरगिज तैयार नहीं है, क्योंकि इसमें उसका भी मानव-धर्म निहित है। ईशानी ने अपने मन में ही एक निश्चित निर्णय कर लिया।

खा-पीकर ईशानी बिस्तर पर जाकर, लुढ़क गई। नन्दू आया। कमरे की खिड़कियाँ बन्द कर दीं, सामने एक ग्लास पानी रख दिया और पंखे को हलके-से चला कर किवाड़ भिड़का कर चला गया।

ठीक तीसरे दिन तीसरे पहर टेलीफोन बजा नन्दू ने आकर बताया, रमेन बाबू बुला रहे हैं। ईशानी दो-एक चिट्ठियाँ लिख रही थी। सुनकर कलम को रोक करके एक मिनट कुछ सोचा, उसके बाद फोन पर गई।

रमेन वावू ने कुशल-क्षेम पूछा, उसके वाद उमग कर वोले, एक खुशखवरी है। एक चोज लेकर मैं आज सवेरे आया हूँ, लेकिन वह तुम्हें देकर मैं वख्शीश चाहूँगा।

ईशानी में कोई उत्साह नहीं दिखाई दिया। शायद हो कि कोई उपहार हो। मगर रमेन वावू का दिया कोई उपहार वह नहीं लेगी, यह तो तै है!

रमेन वाबू वोले, तुम घर हो रहोगी न? मैं अभी आया।

ईशानी ने कहा, नहीं। आपके आने की जरूरत नहीं। मैं खुद ही वहाँ आ रही हूँ। वहाँ ढेरों काम इकट्ठा हो गया है।

ईशानी का कंठ स्वर कुछ विचित्र और अनपहचाना-सा लगा। रमेन वावू ने कहा, नानू से मुझे मालूम हुआ, तुम एक वार वही-खाता देखना चाहती हो। पर नानू तुम्हें एक वात ठीक वता नहीं पाया। तुमने जो कुछ दिन पहले इस आशय की एक चिट्ठी लिखी थी कि तुम्हारी सही-वही के लिए कोई काम पड़ा न रह जाय, नानू को इसका पता नहीं था। इस लिए चेक तक पर मैं ही सही करता रहा। और, हैलो…हैलो…

ईशानी की तरफ से कोई जवाव नहीं पाकर रिसीवर रख करके रमेन वावू अपनी कुर्सी पर आ वैठे। दफ्तर के दूसरी ओर नानू वावू वैठे थे। रमेन वावू ने खीज के साथ एक वार नानू की ओर ताका। वोले, इतने दिनों से तुम लोग काम-काज कर रहे हो, मगर कभी-कभी ऐसी वात कह देते हो कि उसका धक्का सम्हालने में मेरी जान पर आ वनती है। और फिर कारवार ठहरा औरत को लेकर—उनके दिमाग में कभी अगर कोई कीड़ा घुस जाता है, तो वह फिर निकलना नहीं चाहता। अव इस धक्के को सम्हालूं कैसे, सो कहो? लो, इस आर्म चेयर को उधर वढ़ा दो, टेविल को झाड़-पोंछ दो, यह सव करीने से रख दो, अभी ही आ पहुँचेगी शायद।

आधे ही घंटे के अन्दर ईशानी आ पहुँची। वहुत दिनों के वाद आई। नौकर-नौकरानी, दरवान सव जहाँ-तहाँ। पहले से आने की वात [illegible] को मालूम नहीं थी, इसलिए दवा हुआ कलरव नहीं सुनाई पड़ रहा [illegible] ऊपर गीत का रिहर्सल चल रहा था। ईशानी जल्दी से सीढ़ियाँ [illegible] ऊपर चली गई। सीधे दफ्तर वाले कमरे में गई। नानू वावू ने [illegible] कर नमस्कार किया।

रमेन वावू ने मुस्कुराकर अगवानी की। वोले, मैं भी [illegible]

जहाज से आया हूँ। पहली ही बार हवाई जहाज पर चढ़ा था। मारे डर के जान जा रही थी। उन लोगों के झमेले से हो दो दिन की देर हो गई। हाँ, भलमनसाहत से उन लोगों ने मेरी वापसी का टिकट खरीद दिया।

ईशानी आराम कुर्सी पर नहीं बैठी। कुर्सी खींच कर टेबिल के सामने बैठकर बोली, मैं भी कई दिनों तक बड़ी व्यस्त रही, दूसरी तरफ ध्यान नहीं दे सकी।

उसके चेहरे की गम्भीरता देखकर रमेन बाबू चिंतित से होकर बोले, तबीयत तो ठीक है न ?

ईशानी उनकी अकुलाहट का रहस्य जानती है। मुस्कुराकर बोली, मेरी तबीयत कभी खराब नहीं होती, यह तो आप जानते हैं।

—हाँ। बंगाल की कितनी स्त्रियाँ सेहत को बचा कर रख सकती हैं ?—

रमेन बाबू बोले, जरा-सा सुख मिला कि बंगाली स्त्रियों के तोंद निकल आती है। तुम्हारी तरह क़सरत कै जनी करती हैं ? लेकिन एक चीज अगर अभी तुम्हें दूँ, तो तुम फौरन खुशी से उछल पड़ोगी। यह मैं बाजी रख कर कह सकता हूँ।

ईशानी ने नजर उठाई। पूछा, कौन-सी चीज ?

रमेन बाबू ने जरा ऊँची आवाज से कहा, ऐ नानू, जरा बाहर जाओ तो। परदा गिराते जाना। कोई अन्दर न आए।

नानू बाबू परदा गिराकर अन्दर से चले गए।—रमेन बाबू जरा सम्हल कर बैठ करके बोले, तुम सरल हो, भली हो, सुसंस्कृत हो—इसीलिए धोखा और ठगी देखकर भी तुम्हारी जबान नहीं खुलती। लेकिन इतना तुम जान लो ईशानी, जवान छोकरों की खाँसी-छींक, सब मैं समझता हूँ। अपना-सगा ही हुआ तो क्या, वही लोग तो दिवाला पिटवाते हैं ! तुम्हें मीठी बातों में रखकर शांतनु ने तुम्हें रास्ते की ठोकरें खिलाने का मनसूबा गाँठा था, यह जालसाजी तुमने नहीं समझी, मगर मैं ताड़ गया था ! उस दिन देख लिया न, जब मैंने उसके मुँह पर ही उसका अपमान किया, तो वह चूँ भी नहीं कर सका ? और, मैंने उसे तुम्हारी ही मन की बात सुना दी ! कम्बख्त जायगा कहाँ ? यह लो—

मेज की दराज से एक पार्सल निकाल कर रमेन बाबू बड़े उत्साह के साथ बोले, इसमें सब कुछ है। बैंक की पास बुक, कागज-पत्तर, चेक बुक, भरा हुआ फार्म, मुहर लगाया हुआ शर्तनामा—एक-एक करके कान पकड़

कर मैंने सब लिखवा लिया। नाव बिलकुल डूबने को थी, मैंने भँवर से उसे निकाल लिया।—यह कह कर उस बंडल को खोलकर वह ईशानी को समझाने लगे।

आने के दिन ईशानी ने जो सारे कागज फाड़ फेंके थे, शांतनु ने फिर से उन सबको तैयार कर दिया था। गर्ज कि नया कुछ नहीं था। लेकिन मन की बात दबी ही रहे। ईशानी ने एक-एक कागज, खाता और दस्तावेज को समझ लिया। फिर बोली, आपने उसके लिए एक नौकरी ठीक कर देने की कही थी, उसका कहाँ तक क्या हुआ ?

रमेन बाबू खुशी से ठठाकर हँसते हुए बोले, देखता हूँ, मेरे चकमे को तुमने भी नहीं समझा। लोभ दिखाए बिना भला ऐसे धूर्तों से कुछ कराया जा सकता है ? नौकरी ? वहाँ नौकरी देता कौन है ? ऐसे ग्रेजुएट कितने ही मारे चल रहे हैं, कौन किसे पूछता है ईशानी ?

—लेकिन उसका काम कैसे चलेगा ?—दबी आग से कैसे तो एक चिनगी छिटक आई।

रमेन बाबू बोले, और कैसे ? गरीब घर के लड़कों का जैसे चलता है, वैसे ही चलेगा। वह सब जाल फाड़ने वाले छोकरे हैं—पराए खर्च पर दिल्ली गया, अब अपनी तकदीर लेकर निकल पड़े ! समझती हो ईशानी, भाइयों से उसके मामले मुकदमे वाली बात सफेद झूठ है। तुमको सहारा बनाकर उसने अपना भाग्य बनाना चाहा था ! अपना आदमी समझ कर तुम भी उसे दुत्कार नहीं सकी। इसी के साथ वह तुम्हें एक खत भी दे रहा था। मैंने कहा, खत ? तुम्हारी यह सब बुद्धि चातुरी पढ़ने का वक्त ईशानी के पास नहीं है।

बोलते हुए रमेन बाबू को एक बार के लिए भी यह ख्याल नहीं हुआ कि लोहा जितना ही तप रहा है, उतना ही इस्पात होता जा रहा है। बंडल को हाथ में लेकर ईशानी ने कहा, जब जरा बही-खाता सब निकालिए, मैं एक नजर देख लूं !

—हाँ। लो ना सब ठीक-ठाक करके रखा है। बैंक से रिटर्न भेज दिया है। यह रही हमारी बैलेंस शीट ! और, यह रहा पक्का जमा-खर्च खाता।—रमेन बाबू एक-एक करके खाता-पत्तर, कागज, बिल-वाउचर, रसीद...निकालते गए। छिपकर उन्होंने एक बार ईशानी को ओर गौर कर लिया। आज इसका मिजाज ठीक नहीं है ! स्वाभाविक ही है।

ईशानी उठी। वैनिटी बैग से एक मोटी-सी कुंजी निकाल कर साम

की स्टील-आलमारी को खोला और अपनी एक निजी फाईल ले आई। रमेन बाबू के आँख-मुँह में घबराहट झलकी। झट बोल पड़े, ऑडिट हो गया है ! लेकिन एक बात है, सारे डेबिट-वाउचर अभी मिला नहीं पाया हूँ। जबानी-ही कहता गया हूँ न !

ईशानी ने तुरत कहा, तो फिर वही-खाता रखने की जरूरत क्या है रमेन बाबू ?

रमेन बाबू बोले, तुम आते ही सब जाँच करने लगोगी, मैं यह क्या जानता था ?

ईशानी ने कहा, छै महीने या साल भर पहले जो रुपए आपके हाथ से खर्च हुए हैं, उसका हिसाब नहीं मिले, तो संस्था के आय-व्यय का क्या पता चलेगा ?

रमेन बाबू ने यह महसूस किया कि उनके चेहरे पर कैसी तो एक बदरंग छाप पड़ रही है। उन्होंने धीमे से कहा, तुम क्या इतने दिनों के बाद मुझ पर संदेह कर रही हो ईशानी ?

—नहीं।—ईशानी ने कहा, मैं अगर अपने काम में ध्यान दूँ तो आप उसे संदेह क्यों समझते हैं ?—यह कह कर वह खाता-पत्तर से बिल-वाउचर और चेक बुक को मिलाने लगी।

रमेन बाबू ने आवाज दी, नानू ?

नानू बाबू आस ही पास थे। अन्दर आ गए। रमेन बाबू ने कहा, एक ग्लास पानी तो मँगवाओ।

नानू बाबू ने बाहर जाकर पानी भिजवा दिया। लेकिन पानी मेज की एक तरफ रक्खा ही रह गया, रमेन बाबू भूल गए।

कोई आधे घंटे तक शुरू से आखीर तक सब कुछ जाँच कर ईशानी स्तंभित होकर रमेन बाबू की ओर ताकने लगी। उसके बाद आवाज दी, नानू बाबू ?

परदा हटा कर नानू बाबू फिर अन्दर आ गए। वह आकर खड़े हुए कि ईशानी ने कहा, उनसे भूल-चूल तो हो सकती है न ? मेरी बात का आप जवाब दीजिए। वही-खाता देखकर कहिए।

—जी।—नानू बाबू टेबिल के उसी किनारे आकर बैठे।

ईशानी ने पूछा, साढ़े तीन वर्षों में सदस्यों से चंदे के रूप में कितने रुपए मिले ?

नानू बाबू ने कहा, इन साढ़े तीन वर्षों में बयासी से तीन सौ सात

सदस्य हुए। प्रति सदस्य सात रुपया चंदा। आज तक कुल छप्पन हजार से ज्यादा रुपए हुए।

ईशानी ने कहा, हाँ, ठीक है। कुल मिला कर 'शो' कितने हुए ? नानू वाबू ने कहा, मुफस्सिल और बंगाल के वाहर कुल तैंतालीस। सिर्फ दिल्ली को छोड़कर। उससे कुल एक लाख तिरसठ हजार आठ सौ वयालीस रुपए।

—डोनेशन कितना मिला ?

—इकतालीस हजार रुपए। इसके सिवा बैंक से सूद आठ सौ। प्रचार-पुस्तिका बेंच कर ग्यारह सौ का मुनाफा हुआ।

रमेन वावू कभी चेयर में पीछे झुक जाते थे, कभी सीधे होकर बैठ जाते थे। वोले, तुम्हें तो सब मुखस्थ ही है नानू ! पहले जनम में शायद तोता थे !

वीच में हिसाव को जरा सुधार कर नानू वावू ने कहा, एक गलती हो गई। प्रवेश-शुल्क की वावत साढ़े इक्कीस सौ रुपए नहीं जोड़े गए।—इस तरह साढ़े तीन साल के आमद-खर्च की एक रूप रेखा उन्होंने ईशानी के सामने पेश कर दी।

ईशानी को सब जवानी याद था। शांत गले से वह वोली, ठीक है। अब इस अरसे का खरचा वताइए।

नानू वावू ने कहा, मैंने सिर्फ छिहत्तर हजार रुपए का डेविट वाउचर पाया है।

ईशानी ने पूछा, बैंक में अभी कुल कितने रुपए रहने चाहिए ? नानू वावू वोले, एक लाख अट्ठासी हजार रुपए !

—मगर है कितना ?

—एक लाख तीन हजार एक सौ वावन रुपए !

ईशानी मीठी-सी हँसी हँस कर वोली, शुक्रिया। अब आपको फुर्सत है। आप से मेरा मोटा-मोटा हिसाव मिल गया।

इशारा समझ कर नानू वावू वाहर चले गए। भले आदमी का पाँव काँप रहा था। ईशानी ने अचानक मुँह घुमा कर कहा, अरे ! आपने पानी नहीं पिया रमेन वावू ?

रमेन वावू हिल-डुल कर बैठे। वोले, तुम्हारा मर्जी-मिजाज देखकर तो लग रहा है, ग्लास का ही नहीं, मुझे सात घाट का पानी पीना पड़ेगा !—यह कह कर उन्होंने ग्लास को उठा लिया।

ईशानी ने कहा, कुल मिला कर आपका खर्च हुआ है, छिहत्तर हजार रुपया, मगर आपने बैंक से एक लाख पैंसठ हजार रुपया निकाला है। बाकी नब्बे हजार रुपए का हिसाब कहाँ है? इन रुपयों का हिसाब तो मुझे चाहिए ही।

उत्तेजित होकर रमेन बाबू ने कहा, तुम शायद मुझे नौकरी से हटाना चाहती हो? मेरा विश्वास है, यह मंतर तुम्हारे कान में शांतनु ने फूंका है! ठीक है, मैं अभी इस्तीफा दिए देता हूँ!

ईशानी हँसी। बोली, मेरा विश्वास है, इस संस्था में आप जैसा योग्य आदमी दूसरा नहीं है। इसकी सारी तरक्की आप ही की वजह से हुई। लेकिन इन नब्बे हजार रुपयों का हिसाब दिए बिना नौकरी छोड़ने से लोग आपको क्या कहेंगे?

—चोर कहेंगे। हर बात में बंगाली जो कहा करते हैं।

ईशानी फिर हँसी। उसके बाद बोली, दिल्ली में एक सप्ताह में आपने प्रायः पन्द्रह हजार रुपया पाया है। वह हिसाब भी नहीं समझा है।

—अभी ही ले लो। मैं तैयार हूँ। पाई-पाई सब समझा दूँगा।— रमेन बाबू ने उत्तेजित होकर कहा, मैं बहुत दिन से ही सोच रहा था कि मेरे काम-काज को तुम अब नेक नजर से नहीं देख रही हो। ठीक है, मेरे नसीब में यही था। अब मुझे छुट्टी दो।

ईशानी ने कहा, नब्बे और पन्द्रह—यह एक लाख पाँच हजार का हिसाब समझाए बिना आप छुट्टी कैसे लेंगे?

—तो क्या तुम मुझे पुलिस में देना चाहती हो?

—बिलकुल नहीं। आप मेरी परम श्रद्धा के पात्र हैं। मैं उस रकम की पाई-पाई लेना चाहूँगी, क्योंकि वह रकम संस्था की है। आपको तो मालूम है, अपनी छह साल की कमाई का अधिकांश मैंने इस संस्था को दे रक्खा है।

अधीर होकर रमेन बाबू ने कहा, तुम व्यापार करने बैठी थीं कि नृत्य-संगीत की उन्नति चाहती थीं?

ईशानी जरा हँसी। फिर बोली, ये बड़ी-बड़ी बातें छोड़िए। आपसे क्या यह तै था कि रुपए-पैसे का हिसाब माँगते ही आप इस्तीफा देने की धमकी देंगे? क्या यह शर्त थी कि इस संस्था के पैसे से आप अपने पचहत्तर साल के गरीब ससुर की बेनामी से छत्तीस हजार रुपए की जायदाद खरीदेंगे? यह शर्त थी कि आप इस संस्था के रुपए से अपनी स्त्री

और लड़के के नाम से बैंक में जमा बढ़ाएंगे ?

डरी हुई आवाज से रमेन बाबू बोले, यह सब तुमने कहाँ से जाना ?

—आपने अपने व्यवहार से ही बताया है। सुनिए रमेन बाबू, महीने भर के अन्दर ये सारे रुपए आप फिर से बैंक में जमा कर दीजिए, आपके लिए वही भला होगा।—ईशानी उठ खड़ी हुई।

—इसे क्या मैं तुम्हारा अल्टीमेटम मानूँ ?

पलटकर खड़ी होकर ईशानी ने कहा, बेशक। कल मैं अपने बैंक को सूचना भेज दूँगी, अब से सारा कुछ मैं अपने हाथों में ले लूँगी। लेकिन आपके नाम में पुलिस में एक इस आशय की डायरी लिखा देना चाहती हूँ कि आपकी स्त्री और बच्चे के एकाउंट को सीज कर ले और आपके ससुर की जायदाद भी जिसमें कुछ इधर-उधर न हो। तो अब मैं चलती हूँ। हाँ, कल दिल्ली वाले रुपए बैंक में मेरे एकाउंट में जमा कर दें।

बेबस-से रमेन बाबू बोले, नब्बे हजार क्या पूरा का पूरा ही मुझे समझा देना होगा ?

ईशानी फिर उलटकर खड़ी हो गई। बोली, जरूर।

—तुम क्या कहना चाहती हो, बाल-बच्चों को लेकर मैं राह पर बैठूं ?

आप तो रास्ते पर ही पड़े थे रमेन बाबू, मैं ही तो आपको घर में ले आई। और फिर रास्ते में खड़े होने की क्या बात, साढ़े तीन सौ रुपए की नौकरी तो आपकी रही ही !

स्टील वाली आलमारी में सारे कागज-पत्तर को जतन से बन्द करके ईशानी ने कुंजी वैनिटी बैग में रख ली। उसके बाद शांतनु के बंडल को लेकर वह दरवाजे की ओर बढ़ी।

रमेन बाबू ने करुण और काँपते गले से कहा, तुम मुझे इतनी बड़ी सजा मत देती जाओ ईशानी। यह मुझसे सहा नहीं जायगा।

ईशानी ठिठक गई। बोली, निस्वार्थ-निरपराध आदमी को लोगों के सामने आप कलंकित करेंगे, अपमान और दोष से बिना कसूर उनके कलेजे को चोट पहुँचाएंगे। और, खुद इतना बड़ा अपराध करेंगे, इतना बड़ा धोखा देंगे—मैं ही यह कैसे सह सकती हूँ, कहिए ?

—तुम मुझे माफ करो ईशानी। तुम माँ की तरह हो।

—माँ की तरह हूँ, तभी क्षमा करना चाहती हूँ। नौकरी आपकी बरकरार रहेगी। मगर मैं नारी-जाति की भी हूँ—सारे नुकसानों को मैं पूरा कर लेना चाहती हूँ।—ईशानी कमरे से बाहर निकल गई।

तेरह

शांतनु कहा करता था, मेरे संस्कार को यह खलता है, उस संस्कार को मैं जीत नहीं पाता हूँ। मेरे पीछे प्राचीन ब्राह्मण्य चेतना की एक छाया है, हमारे पुरखों की विश्वास-परम्परा है। वही विश्वास और वही नैतिक चेतना मेरे वर्तमान और भविष्य को सदा नियंत्रित करती रहती है। मेरा चिंतन, बुद्धि, उपलब्धि, मेरी ध्यान-धारणा, मेरे दैनंदिन जीवन की सारी गति-विधि और छोटी-मोटी सारी बातें—ये सब मानो मेरे अन्दर बैठकर विचार करती हैं—इस भौतिक विश्वास से छुटकारा पाए बिना अपने को मैं नए युग का आदमी नहीं बना सकूँगा। निहार कर देखता हूँ, सब टूट रहा है, लेकिन जो क्षण-भंगुर है, वही टूट रहा है। सुप्राचीन संस्कार की जो नीति युग-युग से अपने को सुधारती हुई चली आ रही है, वह आज भी वैसी ही बनी है, उसे सोचता कौन है? हम संस्कार की चली आती हुई इस परम्परा को मानते हैं, इसीलिए तो बहुतों को पिता नहीं कहते, या बहुतेरे पुरुषों को एक ही साथ स्वामी नहीं कहते। व्यभिचार से घृणा क्यों करते हैं? माँ अगर संतान का पालन न करके उसे यों ही छोड़ देती है, तो मन में विद्रोह क्यों होता है? धोखा देने में विवेक को खटकता क्यों है? इन बातों का जवाब आज के युग में नहीं मिलता। एक की स्त्री को दूसरा कोई खींच लाया, इससे अगर सिर्फ एक ही घर टूटता तो ऐसा कोई खास नुकसान नहीं होता; मगर एक की स्त्री दूसरे के पति को ले भागे तो उससे कम से कम दो परिवार पर संकट तो आया ही है। साथ ही इस करतूत से बहुत बड़े समाज की नैतिक चेतना को भी चोट लगती है—इस चोट का जवाब यह आधुनिक सभ्यता का समाज-दर्शन दे पाया है क्या? इस आचरण से चोट खाती है मनुष्य की सतता और शांति, मनुष्य का मंगल और महत् विचार और इस आचरण से मनुष्य का पारिवारिक जीवन जहरीली भाप से अपवित्र हो गया है। आज विक्तर को छोड़कर शांतनु ईशानी को लेकर किस अधिकार से खड़ा होगा? विक्तर ही भविष्य है। फिर वर्तमान का संयमहीन - दुःस्वप्न भविष्य को क्यों मलिन करे? दत्त चौधरी के सकुशल जिंदा रहते वे इस सारे मामले को वंचकता

से क्यों भर दें ? दत्त चौधरी के आचरण में कहीं दगावाजी नहीं थी, इस वात को शांतनु तो जानता ही है। शांतनु की राय यह है कि बीच में कमला यदि रहे तो रहे, मगर इसके लिए अपने वेटे की माँ को क्या दत्त चौधरी वंचित कर देंगे ? उस आदमी ने तो कभी विश्वासघात नहीं करना चाहा। किस अधिकार से ईशानी विक्तर को पिता के स्नेह के आश्रय से अलग रखेगी ? किस अधिकार से ईशानी अपने पेट की संतान से मातृ-परिचय को छिपाए रखेगी ? संस्कार को वेशक खलता है। शांतनु का कहना है, प्यार बहुत बड़ी चीज है, पर उसमें यदि पारिपार्श्विक के प्रति कल्याण-बुद्धि का समावेश नहीं होता, तो वह प्यार गुफा में रहने वाले जानवर की नाईं एकांत में जाकर अपनी ही लार लगी जीभ से उसे चाटता रहता, सभ्य समाज में उसकी जगह नहीं होती।

विछौने पर करवट बदलती हुई ईशानी अपने तईं ही शांतनु की बात पर हँस रही थी। दो बज गए थे। इतने में नन्दू ने आकर बताया, सिलविया आई है।

ईशानी झट उठकर सीधे बरामदे की ओर आई। सिलविया ने सीढ़ी पर से आकर नमस्ते किया। उसके बाद बोली, समय विलकुल नहीं है ! अब तक जहाँ खड़ी थी, उसके नीचे की जमीन लड़खड़ा रही है, मुझे तीन ही दिन के अन्दर चला जाना होगा।

ईशानी ने उसे पकड़कर बाहर वाले कमरे की गद्दीदार कुर्सी पर बिठाकर पंखा खोल दिया। बोली, मुझे भी बहुत कुछ कहना है। इतनी जल्दी करने से कैसे काम चलेगा ?

ओह !—सिलविया ने आराम की उसाँस लेकर कहा, मैं सच कह रही हूँ, तुम्हारे पास आने से मुझे विलायत जाने को भी जी नहीं चाहता। कनवेंट में तो मैंने खूब बड़े आदमी जैसा ठाठ किया है। विलायत जाकर नौकरानी के सिवाय और कौन-सा काम नसीब होगा ?

ईशानी ने कहा, तुम्हें जाने को मजबूर कौन कर रहा है ?

'वही लोग !'—सिलविया बोली, तुम्हें तो पता है, मेरा 'डेडिकेशन' नहीं है, सब कुछ छोड़कर मैंने अपने आपको सौंपा नहीं है, विलायत से पिता जी ने भी मनाकर भेजा है। लेकिन अब तक विक्तर को लेकर मैं दुविधा में पड़ी थी।

—तो अब क्या विक्तर की माया को तोड़ना चाह रही हो ?

सिलविया हँसी। बोली, तोड़ पाती तो अच्छा था, तुमको सबक

मिलता। लेकिन अब मुझे जाना ही पड़ रहा है, कोई चारा नहीं है।

ईशानी कुछ देर तक चुप हो रही। बीच में रामतीरथ ने आकर सिलविया को सलाम किया और दो प्याला गरम कॉफी रख गया। प्याले में घूंट लेकर सिलविया ने मुरझाई हँसी हँसकर कहा, यह शायद अच्छा ही हुआ। इस समय विक्तर मेरे सामने नहीं है। इस समय जाने में सुविधा है। विक्तर का खिंचाव बड़ा जबर्दस्त है ईशानी!

ईशानी ने प्याले को उठा लिया। बोली, तुम्हें छोड़कर विक्तर और किसी को प्यार नहीं कर सका, तुम्हारे चले जाने से उसे जो चोट लगेगी, उससे क्या वह आदमी बन सकेगा, तुम ऐसा समझती हो?

सिलविया ने कहा, उसे अगर तुम विलायत भेजो, तो वहाँ उसका भार मैं ही लूंगी।

—लेकिन तुम अगर शादी करो? तुम्हें अगर बाल-बच्चे हों?

सिलविया फिर हँसी। बोली, वह तुम लोगों का देश नहीं है ईशानी विक्तर वहाँ मेरी पहली संतान होकर ही रहेगा। मगर तुमसे यह बताऊँ विलायत की स्त्रियाँ आजकल ब्याह करके सुख की गिरस्ती बसाने की वह सुविधा नहीं पातीं। उन्हें तकलीफ भी उठानी पड़ती है और कमाने में बहुत बार मान भी गँवाना पड़ता है। भारतवर्ष का सुख विलायत की साधारण स्त्रियाँ अब सोच भी नहीं सकतीं!

वैनिटी बैग खोलकर सिलविया ने एक चिट्ठी निकाल कर ईशानी के हाथ में दी। चिट्ठी विक्तर ने लिखी थी। सिलविया के लिए अब उसका मन वहाँ टिक नहीं रहा है। लेकिन कमला और दत्त चौधरी बड़े अच्छे हैं। उनकी गाड़ी में विक्तर खूब घूमता है। लिखा है, मेरी एक बहन है नाम है मुन्नी। 'वेरी लवली।' पाँच साल की है। मैंने उसे तसवीर वाली वह किताब दे दी है।

चिट्ठी के अन्त में ईशानी शांतनु की बात पर आई। विक्तर ने लिखा है, मिस्टर चौधरी हर तीसरे दिन मेरे पास आते हैं। जिस दिन आते हैं उस दिन मेरा 'गाला डे'। वह मिल जाते हैं, तो मैं और कुछ नहीं चाहता लेकिन वह कहाँ रहते हैं, मुझे नहीं मालूम। वह भी नहीं बताते हैं। एक दिन 'रीगल' में बाँसुरी बजा कर उन्हें काफी रुपए मिले हैं। किन्तु वह जल्द ही कोई नौकरी लेकर जाने कहाँ किस देश को जा रहे हैं। वह बड़े जिद्दी हैं, समझी मम्मी। मैं कब आऊँ लिख भेजो।

ईशानी चुप होकर कुछ सोचने लगी। सिलविया ने कहा, यह तुम्हार

बड़ा अन्याय है ईशानी। तुमने पतवार ठीक से नहीं पकड़ी इसीलिए नाव मनमाना बहती जा रही है। मुझे बड़ी उम्मीद थी कि मैं तुम दोनों का 'हनीमून' देखकर जाऊँगी। लेकिन तुम्हारी ही वजह से मेरी वह साध पूरी न हो सकी।

शांतनु के मन की बात कुछ धुँधली नहीं है। वह स्नेह के प्रत्येक क्षेत्र से प्रशांत मन से विदा लेकर जा रहा है और जा रहा है दूर, और दूर। ईशानी को उसने नहीं जाना, इसलिए कि वह नर्तकी है—जनता की तालियों की तरंग में उसकी जिन्दगी बह जायेगी।

ईशानी ने छलछलाई आँखों से सिलविया की ओर ताका। उसके बाद अपने दिल्ली-प्रवास की कहानी शुरू से अन्त तक कहने लगी। आदि से अन्त तक दत्त चौधरी और कमला की बात, रमेन बाबू की बात। शांतनु के मन के सूक्ष्म से सूक्ष्म रहस्य को भी वह निष्कपट भाव से कहती गई। वह कहती गई, बाधा बाहर कहीं नहीं है, बाधा है मन में। दोनों का संपर्क यहाँ सत्य है, लेकिन उस संपर्क पर विचार-बुद्धि खड़ी है। सुख के प्रलोभन को यहाँ बड़ा होने नहीं दिया जा रहा है। यहाँ त्याग से महत् प्यार को जीता जा रहा है। यहाँ दो जीवन दुस्सह वियोग की अग्निछटा में पास-पास सूने हो रहें और वह सूनापन ज्योतिर्मय हो।

सिलविया डबडबाई आँखों से ईशानी की तरफ ताकती रही। फिर बोली, तुम्हें क्या यह लगता है कि दत्त चौधरी, तुम्हें स्वीकार लें तो शांतनु खुश होगा ?

ईशानी ने तुरत जवाब दिया, मेरे लिए यह चर्चा भी घृणा की है सिलविया, इसी बात पर शांतनु से मेरा तर्क हुआ। शांतनु बच्चा-सा है। वह यह नहीं समझता कि स्त्रियों के लिए समाज-नीति से प्राणों की नीति कहीं बड़ी होती है। यह बात शांतनु को समझाई नहीं जा सकती कि प्रेम के लिए स्त्री संसार की सारी ही अच्छी चीजों को बड़ी आसानी से त्याग देती है।

सिलविया ने कहा, हमारे देश में इस तरह की कोई समस्या ही नहीं है, लिहाजा हमारे मन में यह बात भी नहीं आती। लेकिन तुम अब क्या करने की सोच रही हो ?

ईशानी ने कहा, मेरे चारों ओर समस्याओं की भीड़ है। नहीं जानती इससे मेरी किधर को मुक्ति होगी। इसके ऊपर से यह कि तुम अपने बच्चे को लेकर मुझे छोड़ जा रही हो। फिर भी जो दो दिन तुम हो, मैं अपने

समस्याओं से तुम्हें बोझिल नहीं बनाना चाहती हूँ सिलविया ! तुम सि
एक बात मुझे बताओ, भारतवर्ष को छोड़ कर न जाओ तो क्या तुम्हार
नहीं चल सकता ?

सिलविया ने कहा, अट्ठारह साल से ज्यादा हुए, कलकत्ते में हूँ। माँ
चल बसीं, देश पर से कितना आँधी-तूफान गुजरा, पिता जी विलायत
चले गए, मगर मैं फिर भी नहीं हिली। इस देश को प्यार करती हूँ,
इसीलिए हूँ। लेकिन वे लोग अब मुझे नहीं रहने देंगे। पहला कारण तो
यह कि मैंने 'आत्मोत्सर्ग' नहीं किया, दूसरा—तुम्हें बताने में मुझे झिझक
नहीं, विक्तर के प्रति मेरे पक्षपात को उन लोगों ने पसंद नहीं किया। वे
लोग दया को समझते हैं, स्नेह को, प्रेम को नहीं समझते। इसीलिए मुझे
जाना पड़ रहा है।

उसकी अंतिम बात को ईशानी ने चमत्कृत होकर सुना। काफी के
प्याले को खत्म करके बोली, तुम अगर विक्तर की सारी जिम्मेदारी लेकर
यहाँ की नागरिक होकर रह जाओ तो कोई एतराज है तुम्हें ?

सिलविया ने कहा, किस सहारे पर रहूँगी। यह निश्चित जानो कि
मैं तुम्हारे कंधे पर नहीं लद सकती।

—बेशक जानती हूँ सिलविया, तुम अपना ही गौरव लिए रहोगी।
तुम यह भी जानती हो, मुझ पर तुम्हारा जो ऋण है, वह मैं अपना सारा
जीवन देकर भी नहीं चुका सकती। उस दिन साहब बगान के उस मकान
में तुमसे भेंट नहीं हुई होती, तो मेरी जिन्दगी खत्म नहीं हो जाती क्या ?
सुनो, मेरा एक अनुरोध मानो, तुम कहीं मत जाओ। कनवेंट छोड़कर
तुम दिल्ली चली जाओ। वहाँ विक्तर को लेकर रहने का कोई इन्तजाम
करो। मेरा विश्वास है, तुम वहाँ जाओगी, तो शांतनु तुम लोगों का सब
बन्दोबस्त कर देगा। वहाँ विक्तर किसी बहुत अच्छे स्कूल में पढ़ेगा और
तुम उसका भार लोगी ! रही खर्च की बात, वह मैं कनवेंट को रुपए न
देकर तुम्हें ही दूँगी।

सिलविया ने कहा, और तुम क्या करोगी ?

मैं !—ईशानी बोली, मेरा बहता हुआ जीवन बहता ही रहेगा !
लेकिन मुझे लग रहा है, हमारे नाच-गान का स्कूल जैसे चल रहा है, अब
ज्यादा दिन चलने का नहीं ! लगता है, उसके साथ मेरे जीवन में भी
बहुत बड़ा हेर-फेर आएगा।

सिलविया ने पूछा, वह कैसा ?

—ठीक-ठीक कहना मुश्किल है। अन्त तक रमेन बाबू कैसा क्या करेंगे, यह जाने बिना नहीं बता सकती।

सिलविया कुछ देर तक चुप रही। उसके बाद जरा हँसी। बोली, दत्त चौधरी की सोच कर बड़ा मजा आता है। वह आदमी तुम्हें बिलकुल पहचान नहीं सका, कहती क्या हो?

ईशानी ने कहा, पहचान भी नहीं सका और सन्देह भी नहीं कर सका। मेरे चेहरे पर पेंटिंग थी, माथे पर मुकुट, पहनावे में घाघरा! लेकिन उसमें शांतनु की शरारत थी। वह चालाकी से उस आदमी को मेरे सामने लाया, मेरे भाव-परिवर्तन को देखने के लिए। लेकिन उतनी शरारत के बाद असम्भव उत्तेजना से मैं बेहोश हो गई। शांतनु ने बाँसुरी बजाकर दिखा दिया, वही शायद मेरे प्रेम का लक्षण है। ऐसा शैतान है शांतनु।

सिलविया ने पूछा, कमला या विक्तर कुछ जानता है?

—गन्ध भी नहीं।

—दत्त चौधरी?

ईशानी खूब हँसी। बोली, वह सपने में भी सन्देह नहीं करता। तुम, मैं और शांतनु—इसके सिवाय दुनिया में और कोई नहीं जानता।

—तुम क्या सोच रही हो, किसी दिन सारी बातें जाहिर कर दोगी?

—मुझे कोई स्वार्थ होता तो जरूर करती!—ईशानी ने कहा, मगर इसके लिए मुझमें कोई बेताबी नहीं। उस आदमी को देख कर मैं दंग रह गई, जैसे नया एक आविष्कार हो। दस साल पहले उस आदमी ने मुझे उस टूटे मकान के खंडहर में करीब खींच लिया था।—वह जैसे सपने की कहानी हो, उसमें मानो जरा भी सत्य नहीं।

सिलविया ने कहा, तुममें ऐसा भाव क्यों आया? शांतनु मिल गया, इसलिए?

ईशानी ने कहा, नहीं सिलविया, इसमें प्रेम ही तो नहीं था, इसीलिए देह की खरोंच याद आने से बदन घिन-घिन करने लगता है। और फिर तुम सोच देखो, उस दिन आँधी ने मेरा सारा कुछ चौपट कर दिया! पिता जी का खून हुआ, फूफी पानी में डूब मरी, घर में आग लगाई गई। चारों ओर अकाल और अराजकता। इस बगावत में पड़ कर दसवें दरजे की एक लड़की का सारा कुछ तितर-बितर हो गया!

सिलविया बोली, लेकिन लोग जो कहते हैं कि जिंदगी का ——

रोमांस कोई नहीं भूलता ?

—वह तो रोमांस नहीं था सिलविया। वह तो एक दुर्घटना थी।
अँधेरे में दौड़ते हुए खंदक में गिर पड़ना। मन में किसी चेतना के जग
के पहले किसी बच्चे की माँ मर जाती है, तो उस बच्चे को शोक नह
होता। अभाव के लिए वह रोता है, अभाव मिट जाने से सब भूल जाता
है। दत्त चौधरी उस दिन कोई रोमांस नहीं रख गया। वह सिर्फ मुझमें
एड़ी-चोटी नफरत ही रख गया! अनजान में की गई उस घिनौनी गंदगी
में मेरा नया जन्म हुआ। मैं जब तुम लोगों के यहाँ पहुँची, तो मुझे किसी
तरह से सिर्फ जीने की ही बात याद थी। उसके बाद काफी पढ़ा-लिखा,
नाच-गाना सीख कर दस जने की मदद से एक संस्था भी कायम की,
हालत भी बहुत सुधर गई, अभाव भी कुछ नहीं है। लेकिन आज जब
मेरे सामने शांतनु आकर खड़ा हुआ, तो मुझे लगता है, जीवन का और
भी एक अर्थ है, और भी एक आनन्द है और मैं उसी से वंचित हूँ। मेरा
ख्याल है, जीवन में मैंने पुरुष को यहीं पहली बार देखा। यह तुम जानती
हो कि जिसके जीवन का आरम्भ असंयम से हुआ हो, संयम की श्री देखने
से वह सहज ही मुग्ध होती है। शांतनु के लोभहीन संयम में मैंने प्राणों
की किरण का उत्ताप देखा : जो तुषार मुझमें जम-जम कर बर्फ हो गया
था, वह गल कर धारा बन कर उतरने लगा। यहाँ मिलन की बात बड़ी
नहीं है सिलविया, लेकिन शांतनु को पाने के लिए बाकी जिंदगी अगर
मुझे रोकर ही बितानी पड़े, तो भी मुझे आनन्द है!

ईशानी की दोनों आँखें फिर भर आईं। बेला झुक आई थी।
लविया ने अब छुट्टी चाही। ईशानी ने घंटी बजा कर नन्दू को बुलाया
र कहा, तिवारी से कहो, गाड़ी निकाले।

दोनों उठ कर बाहर आईं। विदा लेकर सिलविया नीचे उतर गई।
र सिलविया की गाड़ी बाहर निकली और इधर टेलीफोन बज उठा।
वर को उठाते ही रमेन बाबू की आवाज मिली। ईशानी ने कहा,
! मैं हूँ।

मेन बाबू बोले, अगर मुझे तुम्हारा दावा मिटाना हो तो मुझे तबाह
ना पड़ेगा ईशानी!

ानी ने कहा, यह सब मेरे विचार करने की बात नहीं है रमेन

तुमने क्या मेरे बारे में पुलिस में डायरी लिखाई है?

—यह चर्चा भी इस समय रहने दीजिए।

—तुम मुझे कितने दिनों का समय दे सकती हो?

—मेरा ख्याल है, पुलिस वालों को मैं एक महीना रोक सकती हूँ।

रमेन बाबू ने कहा, मेरे ससुर, सास और मेरी स्त्री तुमसे एक बार मिलना चाहती हैं ईशानी।

ईशानी ने कहा, यह तो खुशी की बात है। लेकिन आप पहले पाई-पाई चुका दें तो उन लोगों से बात करने में मुझे सुविधा होगी। उससे पहले नहीं।

रमेन बाबू ने कहा, तुम अगर इजाजत दो तो मैं दिल्ली जाकर शांतनु बाबू को बुलाकर तुम्हारे यहाँ ला सकता हूँ।

—क्यों? इस मामले में शांतनु बाबू का क्या वास्ता?

रमेन बाबू ठीक-ठीक जवाब नहीं दे सके। ईशानी बोली, मेरा आग्रह है आपसे, आप किसी गन्दी चाल में न पड़ें। बल्कि समय न गँवा कर आप इस विपत्ति से बचने का उपाय करें। तो फोन रखती हूँ। नमस्कार।

रिसीवर रख कर ईशानी कुछ देर बैठी रही। उसके बाद थाने में फोन किया—मित्रा साहब हैं। मैं ईशानी राय बोल रही हूँ।

मित्रा साहब ने फोन पकड़ा। ईशानी ने नमस्कार करके कहा, बैंक-उकाउंट सीज कर लिया?

—जी, हाँ।

—भले आदमी को अभी परेशान मत कीजिएगा। उन्होंने एक महीने का समय माँगा है। मुझे पता चला है, एक बुढ़िया से उन्होंने सस्ते में जायदाद खरीदी है। उसे बेचने से पचास-साठ हजार रुपए मिल जाएंगे। मेरा विश्वास है, आप लोग अगर जरा घुड़की दिखाएँ तो वह सारे ही रुपए लौटा देंगे।

मित्रा साहब ने कहा, मगर एक इतने बड़े जालसाज को आप छोड़ देना चाहती हैं?

ईशानी ने कहा, आखिर पुलिस वाले भी तो घूस लेते हैं मित्रा साहब! लोभ से ही तो असाधुता आती है।

टेलीफोन पर दोनों तरफ की हँसी सुनाई पड़ी।

दूसरे दिन ठीक समय पर सिलविया ने फोन किया। बोली, ईशानी, तुम्हारे प्रस्ताव को पूरी तरह मानने में अभी मुझे असुविधा हो रही है! कोई वायदा नहीं कर रही हूँ, क्योंकि वायदा करने से ही उसका पालन

करना पड़ेगा। लेकिन तुम्हारे प्रस्ताव के अनुसार मैं दिल्ली जाने को तैयार हो रही हूँ। कुछ दिन विक्तर की देख-भाल करूँगी।

ईशानी ने कहा, मैंने तुम्हारे इरादे के खिलाफ कभी कोई बात नहीं कही है सिलविया। विक्तर तुम्हारा लड़का है, मेरा नहीं! तुम उसको अभिभाविक हो, उसका भला-बुरा सब तुम पर है। सो, तुम दिल्ली जाना चाह रही हो, यह खुशी की बात है। मैं तुम्हारे मानसिक संग्राम को समझती हूँ! तुम जिसे छोड़ कर भागना चाहती हो, वह तुम्हारे सारे रास्तों को रोक रहा है। यों तुम्हारे सारे ही रास्ते खुले हैं, पर मन में छुटकारा नहीं है। खैर, जाने के लिए तैयार होकर उसके पहले दिन मेरे यहाँ आना। मैं गाड़ी भेज दूँगी। रुपए भी मौजूद रहेंगे।

अच्छा!—कह कर सिलविया ने फोन रख दिया।

सिलविया हवाई जहाज से जाने को राजी नहीं हुई। जल्दी भी क्या है, धीरे-धीरे आराम से जाया जायगा। और फिर विक्तर के बहुत सारे सामान हैं, उसके खेलने की चीजें, उसकी लाइब्रेरी, उसके कपड़े-लत्ते—उसके सब संग्रह। सिलविया शायद सात जन्म में भी किसी की माँ नहीं बनी, इस जन्म में वह विक्तर को पा गई है। जहाँ तक समझ में आता है, पराया बोझ ढोने के लिए ही उसका जन्म हुआ है। सिलविया ने अंगरेज जाति की पत रक्खी है। ईशानी ने उसका सब कुछ सहेज कर गाड़ी में बर्थ रिजर्व करा दिया। कनवेंट की पोशाक सिलविया को उतारनी पड़ी। ईशानी ने उसे एक जोड़ा बहुत सुन्दर गाउन भेंट में दिया, एक जोड़ा जूता, नर्म चमड़े का एक सूटकेस और टायलेट वक्स दिया। अपनी उँगली से हीरे की अँगूठी उतार कर सिलविया को पहना दी। सिलविया ने मुस्कुरा कर कहा, तुम्हारा मतलब मैं समझ रही हूँ। यह सब घटकगिरी करने की वख्शीश है।

उसका गाल दबाकर लाड़ करती हुई ईशानी बोली, री जलमुँहीं, तू अगर मेरी सौत होती। तो भी मुझे कोई गम नहीं होता।

विक्तर को चिट्ठी और तार पहले ही चला गया था। इसलिए उधर से निश्चिंत थी। ईशानी ने सिलविया के साथ शांतनु का सूटकेस दे दिया, सूटकेस में एक चिट्ठी रख दी। उसके बाद गाड़ी से हबड़ा ले जाकर वह सिलविया को रेल में चढ़ा आई।

लेकिन उसकी मुक्ति का रास्ता कहाँ? अपने को प्रतिष्ठित करने के लिए उसने बहुत बड़ा जाल फैलाया था—उससे बाहर निकलने की राह

नहीं। फ्लैट भरे उसके असवाव, अपनी मोटरगाड़ी, उतनी बड़ी एक संस्था—दुनियादारी के अनगिनती बंधन इतने-इतने लोगों के भरण-पोषण का भार। और इन सबके बाद शांतनु, विक्तर, सिलविया! और, उसके बाद भी अपने प्राण की समस्या।

बंधन से जर्जर ईशानी का मन जाने कितने दिन तक बेचैन होकर तमाम घूमता रहा। आँखों से सावन की बरसात निकल गई। धीरे-धीरे आसमान में घनी नीलिमा निखरी, मेघों के बिखरे टुकड़े सफेद चादर उढ़ा कर मानसरोवर की ओर उड़ चले। शरत् आ पहुँचा।

सिलविया की चिट्ठी दिल्ली से ठीक समय पर आई। होटल से वह एक फ्लैट में चली गई। विक्तर अच्छे स्कूल में भर्ती हो गया। दत्त चौधरी और कमला इस बीच दो-एक बार आए। लाख आग्रह करने के बावजूद शांतनु यहाँ रहा नहीं, पर वह विक्तर से मिलने के लिए अवसर आता है। सिलविया ने लिखा है, कलकत्ता लौटने की खास कोई उत्सुकता शांतनु को नहीं है। मुसीबत यह है कि मेरी किसी बात का जवाब देने में वह शर्माता है। उस दिन हमारे यहाँ बैठकर मधुमाछी और तशर के कीड़े पालने के बारे में एक लंबा भाषण दे गया। मैंने समझा, उसका मन अब जंगल-झाड़ी की ओर है—किसी आदमी की ओर नहीं। अपने अमायिक और मधुर व्यवहार से शांतनु मुझे मुग्ध कर गया है। तुम्हारे बारे में बात करने से ही वह खूब हँसता है। कहता है, वह तो नाच-गीत में ही अपनी जिंदगी बिताएँगी, वह है जन-साधारण की हीरोइन! तशर के कीड़े और मधुमाछी के लिए वह दिमाग क्यों खपाए भला? शांतनु को यही आंतरिक कामना है कि तुम्हारा भविष्य और भी उन्नत हो। वह सूटकेस और चिट्ठी ले गया है। लेकिन अपना पता मुझे बताने को वह तैयार नहीं होता। विक्तर तक को भी नहीं मालूम है।

तशर का कीड़ा कैसा!—मैदान के किनारे गाड़ी रखकर ईशानी दूर जाते-जाते सोचने लगी। तशर के कीड़े के मुँह से फेन जैसा लार निकलता है। उसी के सहारे वह अपने चारों ओर अपनी ही रोक तैयार करता है। उसी रोक की सीमा में उसके सारे जीवन का सफर सीमित हो जाता है, उसी के अंदर उसकी निश्चित मृत्यु होती है। अपनी मौत से वह आखिर अपना ऐश्वर्य तैयार कर जाता है।

ईशानी दूर-दूर तक टहलती रही। आखिरकार थक-थकाकर पैरें

को खींचती हुई वह गाड़ी पर आ वैठी और खुद ही चलाने लगी। इसमें कोई शक नहीं; अपने चारों ओर उसने स्वयं मृत्यु-रचना की है। इससे मधुमाछी बेशक अच्छी है। वह सब अपने लिए शहद सँजोती हैं। मक्खी-रानी ठीक बीच में रहती है। उसी के चारों ओर मधु का संचय। उसके बाद कब जाने उजाले पाख की पूनम आएगी। सारे मधु को पीकर अपने मद में माती मधुमाछियाँ उड़ जाएँगी! कौन-सा अच्छा है, ईशानी नहीं समझती। गाड़ी लिए वह इस रास्ते से उस रास्ते, इस इलाके से उस इलाके में घूमती रही। लेकिन अपने ही पास उसकी यह गुलामी कितने दिनों तक चलेगी? चीजों के ढेरों से उसका दम जो घुटता आ रहा है। अपने ही हाथों वह आज तक जो रचती रही, वह सब क्या उसकी एकांत इच्छित थी? उसमें जो अधीर प्राण, जो आकुल प्रतिभा सृजन की चंचलता के नशे में आज तक एक के बाद दूसरी वस्तु की रचना करती आई है, उसका यह भारी बोझा वह कैसे ढोएगी? रूप, स्वास्थ्य, अर्थ, प्रतिष्ठा; नाम—जो भी उसे चाहिए था, वह सब कुछ पाने के बाद भी उसे ऐसा भयानक सूनापन क्यों लग रहा है? कामना की सारी चीजों को पाने के बाद भी उसमें यह प्रश्न क्यों उठता है कि कामना की इन चीजों के परे भी एक जीवन है—एक कुछ महत्—जिसका परम आस्वाद वह आज तक भी न पा सकी।

गाड़ी को घुमाकर वह घर लौट आई। दोनों आँखों में आँसू लहरा आये थे उन्हें आँचल से पोंछकर वह ऊपर आई। बरामदा पार करके अंदर आते हुए उसने देखा, एक चपरासी उसका इंतजार कर रहा है। उसे देखकर सलाम करके चपरासी ने एक चिट्ठी दी। चिट्ठी एटर्नी के यहाँ की थी। ईशानी ने खुश होकर कहा, अच्छा, तुम जाओ।

वह आदमी चला गया तो, ईशानी ने कमरे में आकर शांतनु के भेजे हुए बंडल को खोल कर देर तक देखा। उसके बाद आलमारी को खोला, दो-तीन दराजें खोलीं। उनके अंदर से उसने बहुत सारे दस्तावेज और शर्तनामे निकाले। बड़े ध्यान से जब वह उन सबों को सहेजने लगी, तो बाहर के कमरे में टेलीफोन बज उठा। रामतीरथ ने आकर बताया, रमेन बाबू हैं!

ईशानी ने जाकर रिसीवर को उठाया। रमेन बाबू ने फोन पर कहा, मैंने लगभग एक महीना कोशिश करके रुपयों का इंतजाम किया। लेकिन वे रुपये मैं आकर अपने हाथों तुम्हें देना चाहता हूँ।

ईशानी जरा संदेह में पड़ी। बोली, मेरे ही हाथों देने का आग्रह आपको क्यों है ? आप सीधे बैंक में जाकर जमा कर दीजिये।

रमेन बाबू ने मिन्नत करके कहा, पुलिस आज तीन हफ्ते से मुझे परेशान कर रही है। तुम्हारे रुपये तुम्हारे ही हाथों देने से उन लोगों के आगे मेरी इज्जत बचे।

—ठीक है। आप रुकिये, मैं तुरन्त आ रही हूँ। लेकिन रुपये आप संस्था के नाम बैंक में जमा कीजिएगा, मैं मौजूद रहूँगी।

रिसीवर रखकर ईशानी इस कमरे में आई। मिनट भर में उसने सारे कागजात और पुलिंदों को समेटा और निकल पड़ी। फाटक के पास गाड़ी लिये तिवारी खड़ा था।

दो बज रहे थे। ऐसे समय उसकी संस्था के नौकर-चाकरों के सिवाय खास कोई नहीं रहता। सिर्फ नानू बाबू और रमेन बाबू दफ्तर में रहते हैं। ईशानी सीढ़ियों से ऊपर सीधे दफ्तर के कमरे में गई कि रमेन बाबू ने शांत भाव से कहा, मैं तुम्हारे सामने निश्छल भाव से सारा कसूर कबूल करता हूँ ईशानी ! लेकिन, लेकिन यकीन मानो, जी-जान से कोशिश करने के बाद भी मैं तुम्हारे रुपयों का एक काफी बड़ा अंश नहीं जुटा पाया।

ईशानी ने मुँह घुमाकर देखा। रमेन बाबू की आँखें सुर्ख हो रही थीं, देखने से ही समझ में आ रहा था कि बहुतेरी रातें उन्हें उनींदी बितानी पड़ी हैं।

उन्होंने कहा, लोभ में पड़कर मैंने तीनों लड़कों के नाम से बर्दवान के पास पचीसेक हजार में एक जायदाद खरीदी थी—घर, बगीचा, पोखर, और थोड़ा-सा धान का खेत। लेकिन उसके पीछे दो-तीन मुकदमे झूल रहे हैं, जल्दीबाजी में मैंने यह नहीं जाना। तुम उस जायदाद का सारा कागज-पत्तर लेकर मुझे रिहाई दो। यही मेरी प्रार्थना है। मैं जानता हूँ, इस प्रार्थना से पुलिस मेरी जान नहीं छोड़ेगी, लेकिन तुमसे मेरी यही आखिरी विनती है।

रमेन बाबू की आँखों में आँसू आ गया। वह फिर बोले, कल मैंने अपने खाते में पैंसठ हजार रुपये जमा किए हैं, उसी हिसाब पर मैं तुम्हें पैंसठ हजार का चेक देता हूँ, तुम मुझे छुटकारा दो।

ईशानी ने चुप होकर सब बात पर गौर किया। उसके बाद बोली, मामला जब पुलिस और एटर्नी के यहाँ तक पहुँच गया है, तो

अपने हाथों नहीं लूँगी। आप मेरे साथ चलिये।

वह चेक लेकर पाले हुए जंतु की नाईं रमेन बाबू ईशानी के पीछे-पीछे चले। सीढ़ी से उतरते हुए वह फिर बोले, ईशानी तुम्हें तो पता है, मैं बिलकुल बेबस आदमी हूँ, यदि किसी बहाने पुलिस मुझे हाजत में डाल दे, तो सारी गिरस्ती मेरी चौपट हो जायगी।

ईशानी सिर्फ इतना ही बोली, आप चलिए मैं साथ हूँ न।

—तुम मुझे भरोसा दे रही हो?

—हाँ। चलिए।

वे दोनों गाड़ी पर बैठे। तिवारी के पास और एक आदमी बैठा था। ईशानी ने कहा, वह थाना से आए हैं। पुलिस के आदमी हैं। आपसे जो तर्सफिया हो, उसे देखकर वह रिपोर्ट लेना चाहते हैं। केस तो बहुत वाहियात-सा है न!

रमेन बाबू काठ होकर बैठे रहे।

इसके बाद की सारी बातें बड़ी टेढ़ी-सी थीं। सब कुछ मेटमाट होने में तीन घंटे लगे। इसी के साथ-साथ ईशानी ने अपने कागजों का भी मेटमाट कर लिया। कागज सब एटर्नी के ही यहाँ था। वह संस्था ट्रस्ट हो गई। लाभ की एक चौथाई हर साल शांतनु चौधरी को मिलेगी—सो वह जहाँ भी रहे। ईशानी ने अपने सारे रुपये और संस्था का अपना सब स्वत्व स्वेच्छा से शांतनु को दान कर दिया। शांतनु के खाते में बहुत रुपये जमा हो गए।

रमेन बाबू सिहर उठे! एटर्नी ने ईशानी की ओर ताका। यह औरत दरअसल कलाकार है न, इसलिए ऐसी ख्याली है! प्रतिभा कभी बँधी-बँधाई लीक पर नहीं चलती। रमेन बाबू की तरफ एक बार टेढ़ी निगाह से देखकर एटर्नी मिस्टर बसु ने कहा, आपको भी पचीसेक हजार की संपत्ति मिली जरूर, लेकिन उसे पाने में पचासेक हजार रुपये लगेंगे।

रमेन बाबू का गला सूख गया था।

संस्था के ट्रस्टियों में ये एटर्नी भी रहे और रमेन बाबू भी अपनी अभिशप्त नौकरी में बहाल रहे। उनके सामने ही आज अशरीरी शांतनु लखपती हो गया। एटर्नी ने खुद ईशानी से सब कुछ पर सही-वही करा ली। कल सबेरे रजिस्ट्री होगी और शांतनु जहाँ भी हो, कल सबेरे वह अतुल संपत्ति का मालिक हो जायगा। शांतनु के आश्रित रहे तीन प्राणी—ईशानी, विक्तर और सिलविया। उसी दफ्तर में बैठ कर ईशानी ने

शांतनु के उन कागजों को फिर एक बार फाड़कर टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दिया। आज वह जी गई। बिलकुल रिक्त होने की खुशी में ईशानी का मन मानो नाच रहा था।

दफ्तर के भीतर एक कोने में बैठकर एक आदमी मानो उकुस-पुकुस कर रहा था। अब उठकर उसने हँसकर ईशानी को नमस्कार किया—मुझे आपने पहचाना ? वही मिहिजाम में—

ईशानी ने कहा, बेशक पहचाना। आप शांतनु के भैया हैं ! खैर, आपको देखकर बड़ी खुशी हुई। भाभी जी से कह दीजियेगा, शांतनु अब बहुत बड़े आदमी हैं। अभी वह दिल्ली में रह रहे हैं।

—आपने इतने-इतने रुपये उसे दिये ?

ईशानी हँसी। बोली, बिलकुल नहीं ये सारे रुपये उन्हीं के थे, मेरे पास जमा थे। खैर। आप यहाँ ?

गला साफ करके भले आदमी ने कहा, मैं इसी दफ्तर में काम करता हूँ।

—फिर तो बड़ा अच्छा हुआ। छोटे भाई की फाईल को जरा जतन से रखियेगा, यही अनुरोध रहा। भाई के प्रति भाई के कर्त्तव्य का पालन कीजियेगा।

भैया को तो काठ मार गया। ईशानी ने विदाई ली। पुलिस के सज्जन वहीं से रुखसत हुए। गाड़ी पर सवार होने से पहले रमेन बाबू ने कहा, तुमने तो अपना सर्वस्व शांतनु को दे दिया। आज से तुम्हारा कैसे चलेगा ईशानी ?

ईशानी ने कहा, मुट्ठी भर अन्न क्या शांतनु मुझे नहीं देगा ?

चौदह

ईशानी को रुलाई आ रही थी। लेकिन वह जानती है, आँखों के
जो बेताब आँसू हैं, यह सुख के हैं। गहरा सुख वेदना-सा ही लगता है
फर्क बड़ा सूक्ष्म है। संन्यासी लोग संसार छोड़ कर ईश्वर को पाने वे
लिए विरागी होकर आँखों में आँसू लिए निकल पड़ते हैं। अनुराग का
आनन्द और वियोग की वेदना—दोनों मिल कर होता है आँसू। ईशानी
ने सब कुछ अपनी प्रतिभा के बल पर पाया था, लेकिन तो भी उसे बैठे-
बैठे हाथ-पाँव पटक कर रोना पड़ा। जो पाया है, वह थोड़ा है। थोड़े में
सुख नहीं है। बच्चे को खिलौने से फुसलाया गया था—लेकिन बच्चा
जब जिद पकड़ता है, तो आनन्द के उन्हीं खिलौनों को लात मार कर
हटा देता है।

ईशानी ने अपने बड़े शौक के असबाबों को नीलाम वाले के हाथ
बेच दिया। कोई दुख नहीं, क्योंकि हर सामान की आड़ से एक प्रश्न
उझक रहा था—क्यों! यह आडम्बर क्यों? क्यों यह विलास? चारों
ओर इतना जंजाल बटोरना क्या! ये बाहरी अलंकार हैं, ये प्रसाधन हैं,
ये अंग के आवरण हैं—लेकिन शरीर में प्राण कहाँ है? तुमने गगनचुम्बी
मंदिर बनवाया, उसके शिखर पर हजारों हीरा-मोती जड़ा—मगर अन्दर
नारायण कहाँ? ईशानी का सारा कुछ दैहिक था, उसका सब कुछ
यौवन-विलास था—लेकिन उसका अन्तर्यामी सदा उपवासी रह गया।
अहंकार था, इसीलिए अलंकार था, आत्माभिमान था, इसीलिए घर में
असबाब भरा था, वस्तु की कमी थी, इसीलिए वास्तव की ऐसी बहुलता
थी—आज उसका अपना स्वरूप पूर्णतया निरावरण हो। आज निःस्व
हुए बिना अपने को पहचाना नहीं जा सकेगा। अपने को पहचानना, अपने
को पहचनवाना भी। मैं प्रकट करती हूँ या प्रकट होती हूँ—कौन-सा?
शानी ने एक-एक आवरण चढ़ाया, मगर वह खुद कहाँ रही? कहाँ खो
ई वह? आज सब कुछ पाने के बावजूद वह रो क्यों रही है? ऐसी
बंध स्वाधीनता के बाद भी उसका मन बंधन से जर्जर क्यों? वनस्पति
तरह उसने चारों तरफ शाखा-प्रशाखाएँ फैलाई हैं, लेकिन उसके मर्म

के मूल में प्राणों का रस कहाँ है ? सुख के असंख्य उपकरणों में दस घुट कर आनन्द मर गया है—इसकी खोज उसने ली थी क्या ?

एक आश्चर्य लेकिन बराबर ही रह गया। ईशानी के पारिवारिक जीवन में कहीं कोई नहीं है। अपना कहने को कोई नहीं था, स्वजन-कुटुम्ब का जीवन में कभी साक्षात्कार नहीं हुआ। फूलकाठी की पुरानी हवेली, जमीदारी का कहीं कोई तृण-फलक भी खड़ा नहीं है। लिहाजा एक सिलविया के सिवाय मित्र कहने को उसे कहीं कोई नहीं मिली। वह अपने आपको ही लिए रही, अपने ही लिए सोचा, और अपने ही ऊपर खड़ी हुई। इसलिए आज जब ईशानी अपनी गिरस्ती उठा रही है। तो कहीं उसे खिचाव नहीं हो रहा है, कहीं से उसका कोई विरोध नहीं हो रहा है, कोई बाधा नहीं दे रहा है। स्वेच्छा से ही वह अकेली खड़ी है।

बढ़ती चोजों को जब वह नन्दू, रामतीरथ, बुढ़िया दाई और तिवारी को बाँटने लगी तो उसी समय किसी दिन तोसरे पहर नन्दू ने आकर कहा, कोई भले आदमी एक महिला के साथ उससे मिलने आए हैं। जैसी-तैसी एक साड़ी लपेटे ईशानी रसोई में बैठी थी। किसी भी तरह की साज-पोशाक का ध्यान न देकर उत्सुकता से वह बाहर निकल आई।

एक तरुणी ने नमस्कार करके कहा, मुझे पहचान रही हैं ?

ईशानी ने कहा, क्यों नहीं पहचानूँगी। सुषमा हो। आओ बहन।

सुषमा ने कहा, ये मेरे पति—धीरेन सेन।

पति सुन कर ही ईशानी ने एक बार ताका। नमस्कार का आदान-प्रदान हुआ।

तीनों एक लकड़ी की बेंच पर जाकर बैठे। सुषमा ने इधर-उधर ताक कर कहा, आप क्या यह मकान छोड़ रही हैं ?

ईशानी हँसी। बोली, हाँ बहन। यह घरौंदा मैंने उठा दिया। मैं बड़ी खुश हुई सुषमा, तुमने शादी कर ली। नौकरी तो है न ?

सुषमा ने हँस कर कहा, हाँ, है। यह नौकरी तो आपकी ही कृपा से है। बड़े दिनों से आपके दर्शन की इच्छा थी। आपके प्रति ही मेरी सबसे बड़ी कृतज्ञता है !

धीरेन ने कहा, आपसे मेरा परिचय नहीं हुआ। मगर इनसे सदा आपकी प्रशंसा सुनता रहा हूँ। हम दोनों एक ही दफ्तर में काम करते हैं।

सुषमा ने पूछा, यह घर छोड़ कर आप किस पते पर जा रही हैं

ईशानी-दी ?

ईशानी ने कहा, माल-असबाब तो सब हटा दिया, पर यह मकान कब छोड़ूंगी, उसका अभी कुछ ठीक नहीं है। बस, चला जा रहा है। खैर, अपनी कहो। अब तो मजे में हो न ?

सुषमा ने कहा, मजे में हूँ, वह भी आप ही की बदौलत। उस दुर्दिन में आपकी मदद नहीं मिली होती, तो मेरे खड़े होने का उपाय नहीं था।

ईशानी बोली, मदद तो कोई न कोई करता ही है, पर तुम खड़ी हुई हो अपनी योग्यता के बल पर। तुम्हारा कृतित्व वहीं पर है।

धीरेन ने कहा, इनकी तनखा भी कुछ बढ़ गई है।

—बड़ी खुशी की बात है। मुझे क्या लगता है, जानती हो सुषमा ? —ईशानी ने कहा, सबसे कम पाकर जो आदमी सबसे ज्यादा आनन्द में रहता है, वही सुखी है।

पति-पत्नी दोनों चुप रह गए। जरा देर में सुषमा बोली, कहाँ, शांतनु-दा को तो यहाँ नहीं देख रही हूँ ?

शांतनु की चर्चा सुषमा नहीं छेड़ेगी, ईशानी को यही ख्याल था। लेकिन उसका जिक्र आ जाने पर बोली, वह तो यहाँ के आदमी नहीं हैं, उन्हें कैसे देखोगी ?

—कहाँ है वह ? क्या कर रहे हैं आजकल ?

—क्या कर रहे हैं, यह तो ठीक नहीं जानती, मगर दिल्ली में हैं।

सुषमा बोली, कभी उनसे आपकी मुलाकात हो, तो हम लोगों का नमस्कार उन्हें कहेंगी। अच्छा, तो हम चलें।

ईशानी ने कहा, बस, अभी ही चल दिए ?

धीरेन ने कहा, आज छुट्टी का दिन है, इसलिए और कई जगह जाने की सोच रक्खी है।

सुषमा ने कहा, सबसे पहले आपके यहाँ आई हूँ।

मीठी हँस-हँस कर ईशानी बोली, बहुत-बहुत धन्यवाद। अच्छा—

धीरेन के साथ सुषमा उठी। ईशानी सीढ़ी तक साथ गई। उन लोगों ने फिर से नमस्कार किया और चले गए। रास्ते में चलते हुए पति-पत्नी आपस में बोलने लगे—देखने में तो बड़ी खूबसूरत हैं ! सुषमा बोल उठी, तुम्हें शांतनु चौधरी को नहीं दिखा पाई। वह भी देखने में बहुत ही सुन्दर है ! लेकिन वैसा निर्विकार आदमी ढूंढ़े नहीं मिलता।

मन की बातें मन में ही दबी रह गईं !

उन दोनों को विदा करके आकर ईशानी एक बार ठिठक कर खड़ी हो गई। और कुछ नहीं, यह लड़की बच गई, शांतनु के हाथों नहीं पड़ी। सुषमा ब्याह करने के लिए पैदा हुई थी, लेकिन शांतनु गिरस्ती बसाने के लिए नहीं पैदा हुआ। रोजमर्रे की छोटी-मोटी बातें शांतनु के लिए अजानी हैं। इसके सारे बिखरे इतिहास के बीच सहसा कोई स्त्री माँग में सिंदूर भर कर आ बैठती तो कैद की वह हालत वह झेल नहीं सकता। बंधन की बू मिलते ही शांतनु में विद्रोह जगता है। वह वशता समझता है, दासता नहीं समझता। जाने-आने की राहें खुली न रहें तो वह प्यार की भी परवा नहीं करता। उसे बुलाने से पा सकते हो, लेकिन खींच कर पकड़ रखना चाहो, तो वह भागेगा। स्वच्छन्द खुली आजादी के सिवा और कोई बात उसके मन को नहीं खींचती।

इसीलिए ईशानी इतने दिनों तक उसके योग्य नहीं हो सकी। अपने निकट सत्य होने के लिए ईशानी को चुपचाप जूझना पड़ा है। ईशानी को बहुत है, फिर भी असली चीज से वह वंचित है। लेकिन ऋतुराज आकर खड़ा होता है, जब तुम बिलकुल रिक्त हो। तुम्हारी निःशेष नग्नता पर वह अपने वासंती वसन का आवरण डाल देता है। सब कुछ खोने का डर जिसके मन में न रहे, क्योंकि वह परिपूर्णता की प्रतिश्रुति लेकर आता है। ईशानी के मन में आज कोई खेद नहीं है, किसी विषाद से वह घिरी नहीं है। एक-एक सूने कमरे में वह पूरे आनन्द के साथ घूमने लगी। कोई नहीं समझेगा कि वह रिक्त क्यों हो रही है! उसे अपना सहज सत्य रूप लेकर खड़ा होना पड़ेगा। आगे-पीछे उसका परिचय नहीं रहेगा, वह एक परिपूर्ण अभिव्यक्ति की तरह खड़ी होगी। जीवन की डाल पर ऊपर को मुँह किए एक शतदल फूला है, उसकी प्रार्थना सूर्य के प्रति है। उसकी यही एक आगमयी वासना है—हे सूर्य, तुम मुझमें प्रतिभात होओ। मुझमें ताप लाओ, तेज लाओ, प्राण लाओ। मुझमें तुम प्रकाशित होओ, मैं तुममें विलीन हो जाऊँ!

रातों को ईशानी अपनी विह्वल वासना लिए झरझर रोती रही। उसकी इस रुलाई का कोई गवाह नहीं। वह जन-साधारण, जिसकी सुलभ प्रशंसा के रस-तरंग में वह बहती रही, उनमें से किसी ने यह रुलाई नहीं देखी। साजघर में बैठ कर जिन लोगों ने उसके चन्द्रवदन पर रंग मल कर परिपाटी के साथ सजा-सँवार कर लोभ सने संकेत चढ़ा कर उसे नाच के मंच पर भेजा था, आज इस सूनी रात के एकांत रोदन के पास उनमें

से कोई नहीं है। उसके उस आँसू की अकुलाहट में परम वेदना का माधुर्य मिल गया है, निबिड़ दुःख का असहनीय रोमांच मिल गया है। वह एक प्रबल पीड़ा चाहती है—जो उसे विदीर्ण कर दे, जिसके महत् विस्फोट से उसकी सारी सत्ता चूर-चूर होकर चिनगी की तरह चारों ओर छिटक पड़े। उसी चरम सर्वनाश में वह आत्मविलोप चाह रही है।

सूने कमरे की गरीब-सेज पर पड़ी ईशानी फफक कर रोने लगी।

कुछ दिनों के बाद सिलविया की अंतिम चिट्ठी आई। रुपये पाकर धन्यवाद देते हुए उसने लिखा था, तुमने मेरी तरफ स्नेह के साथ जो विचार किया है, उसके लिए धन्यवाद। कुछ दिनों के लिये विलायत गये बिना मेरे लिये उपाय नहीं। यदि भारतवर्ष में मुझे स्थायी रूप से रहना हो तो डैडी की सम्मति लेकर आऊँगी। विक्तर मेरे साथ जा रहा है, इसके लिए तुम घबराना मत। मैं उसे एक दिन के लिये भी अपने पास से अलग नहीं करूँगी। मेरे साथ जाने की सूचना. से विक्तर मारे खुशी के नाच रहा है। बंबई से जहाज सत्रह तारीख को खुलेगा। लेकिन हम लोग यहाँ से दस तारीख को बंबई के लिए रवाना हो जाएँगे। विक्तर विलायत जा रहा है, यह सुनकर शांतनु बहुत मायूस है। उस दिन वह ढेरों कपड़े-लत्ते विक्तर को देकर उसे बहुत दुलार गया। माता-पिता का परिचय नहीं है, ऐसे बालक के प्रति पिता जैसा व्यवहार देखने से कोई भी आदमी अभिभूत होगा। लगता है, तुम अपने काम में बहुत व्यस्त हो। विलायत जाने से पहले तुमसे भेंट होने से बड़ी खुशी होती। हम लोग चारेक दिन बंबई के ताजमहल होटल में ठहरेंगे। शांतनु बीच में अपनी नई नौकरी के सिलसिले में कुछ दिनों के लिए नैनीताल की ओर गया था। वह यहीं रहेगा। हम लोगों के बंबई रवाना हो जाने के बाद शांतनु फिर चला जायगा।

उस दिन रामतीरथ, बूढ़ी दाई और तिवारी विदा हुआ। उन लोगों को काफी कपड़े-लत्ते और बर्तन-बासन मिल गये। ऊपर से सबको छह महीने का वेतन बख्शीश में मिला। उन लोगों को आशा से कहीं अधिक मिला, इसलिए कृतज्ञता से उनकी आँखें डबडबा आईं। बड़ा ही भारी मन लिए वे विदा हुए। बाकी रह गया नंदू। वह सबसे अंत में जायगा। इस घर का सुख शायद नंदू को भी नहीं सहा।

दीदी जी का खान-पान देखकर नंदू की आँखों में आँसू आ जाता बाजार से उसे केले का पत्ता खरीद कर लाना पड़ा है। जमीन पर बैठकर

दीदी जी केले के पत्ते पर यह-वह लेकर भात खाती हैं। कंपनी के लोग टेलीफोन उठाकर ले गये, दीदी जी से अब कोई बात नहीं करता। ऊपर के महल के सारे कमरे सूने पड़े हैं, सिर्फ कपड़े-लत्ते और कागज-पत्तर सहित एक बक्सा है। दीदी जी यह घर छोड़कर जल्दी ही चली जाएँगी, लेकिन कहाँ जाएँगी, इसका पता नंदू को नहीं है। नंदू ने कभी रसोई करना नहीं सीखा, लेकिन वह जो भी कच्चा-पक्का बना देता है, दीदी जी वही खुशी-खुशी खाती हैं। रुचि-अरुचि नाम की कोई बला ही नहीं।

ईशानी उस दिन गाड़ी लेकर सवेरे ही निकली। लौटी तो दोपहरी ढल चुकी थी! अपनी गाड़ी के बदले वह टैक्सी पर लौटी। भाड़ा देकर जब वह अन्दर आ रही थी, तो देखा उस बूढ़े पंजाबी सज्जन को घेर कर दो-तीन पंजाबी महिला ओढ़नी से आँखें पोंछ रही हैं। सीढ़ी पर चढ़ने से पहले ईशानी एक बार ठिठक कर खड़ी हो गई। एक स्त्री की ओर देखकर हाथ उठाकर उसने कहा, नमस्ते! राजरतन जी, फिर कोई खबर मिली?

—जी।—कहकर वह आगे बढ़ आई। आँसू-विगलित आँखें बोलीं—आपको तो पता है, मेरे पति कई महीनों से सख्त बीमार थे, उन्हें अस्पताल में रक्खा गया था। मेरे माता-पिता उनकी देखभाल कर रहे थे। जरा देर पहले तार आया है, उनके बचने की उम्मीद कम है। ईशानी ने कहा, आप आज ही चली जाइये।

—जी। आज के ही मेल से जाऊँगी, फिर भी परसों सवेरे से पहले नहीं पहुँच सकूँगी। उन्हें देखने की उम्मीद नहीं रही बहन जी।

ईशानी ने कहा, आप तो हवाई-जहाज से जा सकती हैं राजरतन! राजरतन बोली, कोशिश की गई थी, मगर टिकट नहीं मिला। उन्हें देखना मेरे नसीब में बदा नहीं है।

वह फफक-फफक कर रोने लगी।

ईशानी जरा देर चुप खड़ी रही। फिर बोली, अच्छा जरा सब्र कीजिए मैं आई।

ऊपर के बरामदे पर नंदू सामने ही खड़ा था। ईशानी लपकती हुई आई, बोली, नंदू सब सामान सहेज दे। मैं जरा देर के बाद ही चली जाऊँगी। मैंने अपनी गाड़ी बेंच दी है। मकान मालिक को खबर दे दी है, मैं आज ही फ्लैट छोड़े दे रही हूँ। तूने मेरे लिए बहुत किया नन्दू। तेरी बात मैं कभी नहीं भूलूंगी।

नन्दू रो पड़ा। उसके बाद ईशानी के पैरों के पास बैठकर बोला। आप

सब छोड़-छाड़कर वहाँ जा रही हैं, नहीं मानता। मगर मैं आपके पैरों पड़ता हूँ, मुझे अपने साथ लीजिये ! मेरे और कोई नहीं है।

ईशानी ने कहा, चुप-चुप ! आखिर तू मर्द है न। ऐसे भी रोता है ! मैं दिल्ली जा रही हूँ, लेकिन तेरी तो मुझे जरूरत नहीं पड़ेगी नन्दू !

नन्दू का रोना नहीं थमा। बोला, आप मेरे माँ-बाप हैं। मैं तनखा नहीं माँगता, कुछ भी नहीं माँगता। सिर्फ आपके पैरों के पास रहना चाहता हूँ। मैं छह साल से आपके साथ हूँ, मुझे आप दूर न भगाएँ। ईशानी ने चिंतित होकर कहा, मैंने तो सोचा था, रात मैं हवाई जहाज पर सवार होकर तुझे दमदम से छुटकारा दे दूँगी, मगर तू जो इस तरह रोए-पीटेगा यह नहीं जानती थी।

ईशानी एक बार चुप खड़ी हो गयी। साँझ होने में देर नहीं थी। बोली तो सब सहेज ले। तुरन्त निकलना पड़ेगा। मैं आती हूँ—

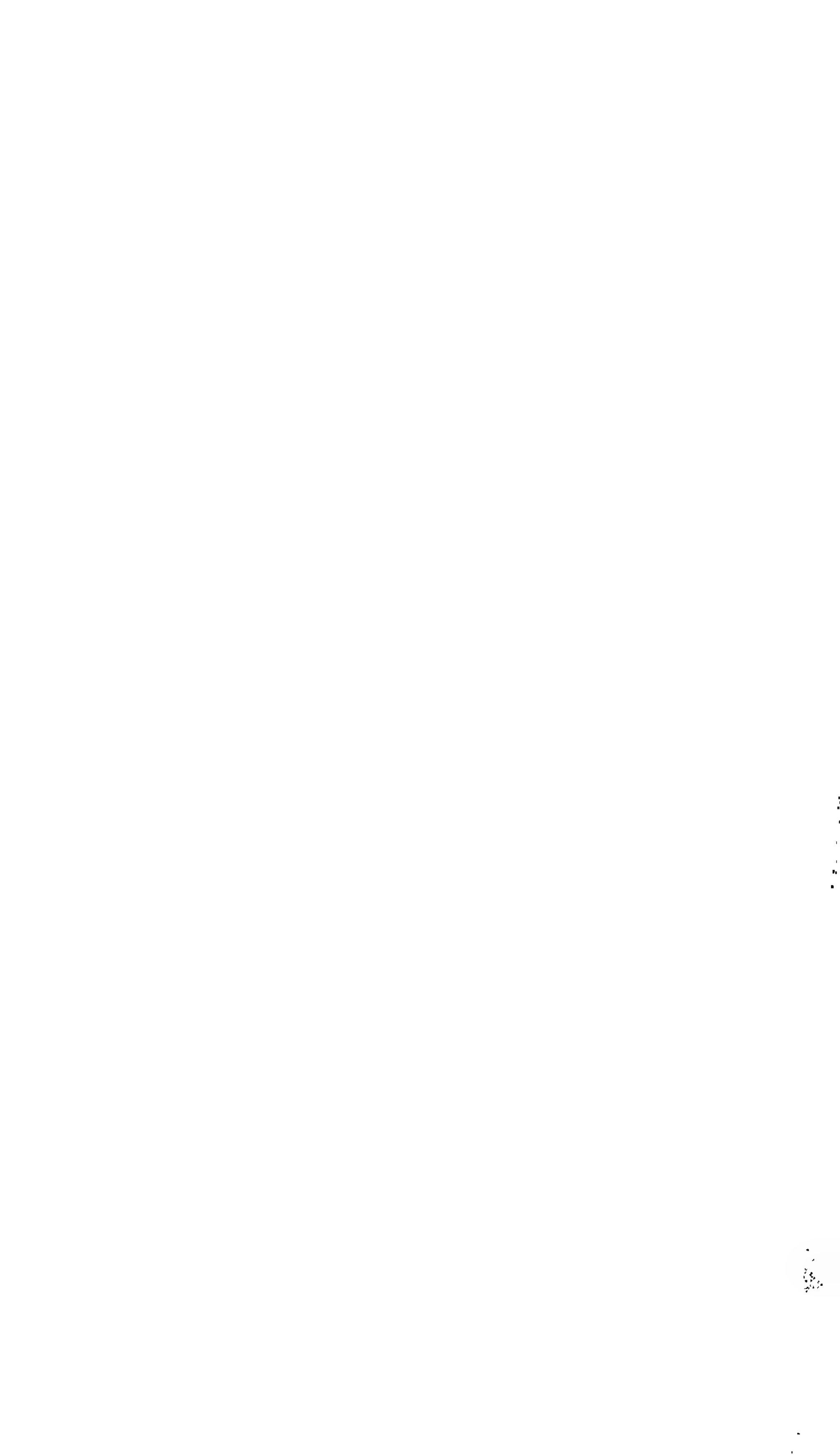
दिल्ली जाने की सुनकर नन्दू आँखें पोंछकर उत्साहित हो उठा। छोटे बाबू से फिर भेंट होगी, इसकी खुशी उसे कम नहीं थी।

ईशानी नीचे उतर कर राजरतन के कमरे में गई। उस बूढ़े ने और महिलाओं ने उसे आदर से बरामदे में बिठाया। ईशानी ने कहा आप लोग तो जानते हैं, आज से मैं यह फ्लैट छोड़कर जा रही हूँ। आज ही रात के हवाई जहाज से दिल्ली जाने की बात है, वहाँ तीन-चार दिन में काम निपटा कर दूसरी जगह चली जाऊंगी। दोपहर को मैंने दिल्ली जरूरी तार भेजा है, वे लोग हवाई अड्डे पर शायद मुझे लेने के लिए भी आएँ। लेकिन आप लोग अगर सुविधा समझें तो मेरा टिकट लेकर राजरतन आज हवाई जहाज से दिल्ली जा सकती हैं। मैं न होगा, तो रेल से ही चली जाऊँगी।

बुढ़िया अचानक अधीर होकर बोल उठी, बिटिया तुम्हारे इस उपकार के लिए हमारे गुरु तुम्हें आशीर्वाद देंगे। मुझे दूसरा कोई उपाय नहीं है।

ईशानी ने कहा, सरदार जी, राजरतन को लेकिन बेनामी और गैर-कानूनी ढंग से जाना होगा। सीट मेरे नाम से है। आजकल ऐसा बहुत लोग करते हैं सुना है—

बूढ़े ने कहा मुसीबत की घड़ी में ऐसा किये बिना उपाय नहीं है बिटिया ! हम लोग किसी को ठग नहीं रहे हैं सिर्फ नाम की अदला-बदली हो रही है। तुम्हारा यह उपकार मेरा परिवार सदा याद रक्खेगा। राजरतन मेरी पतोहू है और ये लोग मेरे मुल्क के हैं। हम लोग कारबार के



विक्तर को उसकी चिन्ता नहीं। बोला, किया हो तो क्या !

सिलविया उत्तेजित होकर बोली, ह्वाइ कांट यू इमेजिन शी इज योर रीयल मदर ?

विक्तर हँस पड़ा। बोला, इट मैटर्स वेरो लिट्ल मम्मी।

विक्तर की निश्चिन्त उदासीनता पर सिलविया भी हँस पड़ी। सिर्फ बोली, इंपासिबुल बॉथ यू आर। तुम्हें मालूम है, हमारा सारा खर्च मम्मी दे रही है।

—वाह, देगी क्यों नहीं ? बहुत रुपए तो हैं।

सिलविया ने ठिठक कर विक्तर के स्वभाव की सरलता की ओर ताका, उसके बाद कमरे से निकल गई।

दूसरे दिन सवेरे एक टैक्सी लेकर सिलविया हवाई अड्डे पर पहुँची। शरत् काल ने दिल्ली के आकाश-वातास में अपना माधुर्य बिखेर दिया है। सुबह की ठंढी हवा बदन पर रोंगटे खड़े कर रही थी।

टैक्सी को रुकने को कहकर सिविया एनक्लोजर में गई। देखा, सभी तरफ अजीव-सी एक घबराहट और बेचैनी-सी है। कोई-कोई स्त्री रोने लग गई थी। कहीं-कहीं भीड़-सी लगी थी। सिलविया ने डरी-हुई-सी जाकर एक अफसर से पूछा, बात क्या हुई है ?

उन्होंने कहा, नागपुर से उड़ते वक्त नाईट प्लेन गिर पड़ा ! वह दिल्ली की ओर आ रहा था।

घबराकर सिलविया ने पूछा, तो ?

अफसर ने खोजकर कहा, कोई नहीं बचा। पेट्रोल की टंकी में आग लग गई थी। लाशों की यह हालत कि शिनाख्त तक नहीं हो सकी।

सिलविया दौड़कर गई और सुबह के पहले अखबार पर टूट पड़ी। खबर इसी बीच छप चुकी थी। दुर्घटना रात के प्रायः तीन बजे हुई थी। मरे हुए लोगों में बाजाब्ता ईशानी राय का नाम छपा था !

बड़ी देर तक बदहवास-सी अखबार पर आँखें गड़ाए रखकर आखिर सिलविया ने बाहर की ओर ताका। यों ही उसने गरदन हिलाई। नः, विलायत से अब वह नहीं लौटेगी। भारतवर्ष का आकाश बड़ा विश्वास-घातक है !

हर तरफ रुलाई। मेम-साहब रो रहे थे, मारवाड़ी, भाटिया, दक्षिणी-पंजाबी—सभी रो रहे थे ! लेकिन एक जीव के लिए यहाँ रोने वाला कोई नहीं था। एक भी बंगाली नहीं था, जो बंगाली के लिए रोए।

ईशानी के बदनसीब जीवन की यवनिका किसी एक अंधेरे वन की छाया तले गिरी। वह जलकर खाक हो गई।

इधर-उधर नाहक ही जा-आकर आखिर सिलविया एक कोने में बैठकर चुपचाप आँसू बहाने लगी। लेकिन कोई यदि उससे रोने का कारण पूछता तो उसके लिए जवाब देना कठिन होता। बहुतेरे विदेशी स्त्री-पुरुष यहाँ-वहाँ दौड़ रहे थे। कहीं कोई आकर उससे कुछ पूछ बैठे, इसलिए सिलविया उठकर टैक्सी स्टैंड की ओर बढ़ी।

घर लौटने में सिलविया को कुछ देर हुई। पत्थर का एक ढोका जैसे लुढ़कते-लुढ़कते आकर एक जगह रुक गया। क्या करे, क्या सोचे, किससे कहे, कुछ समझ नहीं पाकर वह काठ की मारी-सी एक जगह पर बैठ गई। ईशानी से पहली मुलाकात के बाद से एक-एक कर सारी तसवीरें उसकी आँखों से गुजरने लग गईं।

विक्तर आकर सामने खड़ा हो गया। सिलविया के हाथ के पास अखबार खुला पड़ा था और उसकी आँखों से आँसू बह रहा था।

—मम्मी !

सिलविया ने सर उठाया। फूल-फूल कर रोते हुए उसने विक्तर को ईशानी की खबर बताई। विक्तर गुम हो गया। लेकिन सिलविया की आँखों से यही पहली बार झर-झर आँसू बहते देख उसकी आँखें डबडबा आईं। दो डग बढ़कर वह सिलविया के पीछे जा खड़ा हुआ। और, रूमाल निकाल कर सिलविया की आँखें पोंछने की कोशिश में वह खुद ही सिल-विया की पीठ के पास रुलाई से टूट पड़ा।

ग्यारह बजे के करीब शांतनु आकर सिलविया के पास खड़ा हुआ। लेकिन मुँह उठाकर उसने शांतनु की सुर्ख आँखें जो देखीं, तो वह अपने को सम्हाल नहीं सकी। दौड़कर कमरे में गई और बिस्तर पर औंधे पड़ कर फूल-फूल कर रोने लगी।

दीवाल पकड़ कर शांतनु कुछ देर तक चुप खड़ा रहा। उसके बाद धीरे से अखबार को उठाकर वह एक जगह जाकर चुपचाप बैठ रहा। खबर उसे सवेरे ही मालूम हो गई थी। गाड़ी लेकर वह हवाई अड्डे तक भागा-भागा गया था। वहाँ अंतिम समाचार यही मिला कि सभी मुसाफिरों का शरीर इस बुरी तरह जल गया है कि यह भी नहीं पहचाना जा सका कि यह पुरुष है या स्त्री। दिल्ली में ईशानी ने नाम लिखाया था, इसलिए किसी-किसी अखबार में नामतः हुई ईशानी

छपी थी ! इसके बाद बड़ी-बड़ी मुश्किल से शांतनु ने ट्रंक काल पर रमेन बाबू से बात की। बड़ी खीज के साथ वह बोले, मरने की खबर सही है। लेकिन कुछ दिन पहले अगर यह दुर्घटना घटी होती, तो मुझे अपने परिवार को लेकर रास्ते पर नहीं बैठना पड़ता ! जो भी हो, ईशानी अपना सब कुछ बेंच-खोंच कर, यहाँ तक कि मोटर भी—अपने सारे जीवन की कमाई तुम्हारे नाम बैंक में रख गई है। तुमने राजकुमारी को नहीं पाया, मगर जब राज्य ही नसीब में टपक पड़ा, तो दूसरी अच्छी राजकुमारी बेशक जुट जाएगी। मगर और चाहे जो करो भैया, किसी ऐसी-वैसी औरत को लेकर कारबार मत करना अब वह तो हम लोगों के कंधे पर भूत का नाच नाच गई !

छह मिनट के अन्दर रमेन बाबू ने रिसीवर के अन्दर गल-गल करके गरल भरा उद्‌गार भर दिया। फिर भी उसी हालत में शांतनु ने सारी बात जानने के लिए एक बार शांत स्वर में कहा, वह मुझे तो बोझ से लाद दे गई, मगर आपको क्या कुछ भी नहीं दे जा सकी ?

टेलीफोन की घड़घड़ाहट में इतना सुनने में आया, हाँ, मुझे भी पचीसेक हजार की सम्पत्ति दे गई है, लेकिन उसे पाने के लिए मुकदमे में पचास हजार रुपए खर्च करने पड़ेंगे ! उतना वह अवश्य दे जाने का समय नहीं पा सकी ! तुम जब ट्रस्ट के एक सदस्य हो, और उस नाते जब कलकत्ते आओगे, तो वह संपत्ति तुम्हारे हाथों सौंपकर मैं गंगा नहा लूँगा।

टेलिफोन रखकर शांतनु सीधे सिलविया के यहाँ आया था। अपना इतिहास आप ही पोंछ कर ईशानी चली गई।

शांतनु की निगाहें अंतिम घड़ियों की तसवीरों पर गड़ी थीं। मानो कोई अँधेरा जंगल हो। वहाँ आग की लपलपाती लपटें उठ रही हों। एक धातु के सन्दूक में बन्द ईशानी आग की जलन से तड़प रही है। आग की आँच से साँस रुँध रही है, वह देह-वल्लरी अंगार होती जा रही है और देखते ही देखते सारी पीड़ाएँ आग में शांत हो गईं ! मौत ने सब समेट लिया।

कुछ देर के बाद शांतनु ने सिर उठा कर देखा। सिलविया जानें कब आकर कुर्सी पर बैठ गई थी। अन्यमनस्कता में उसने कोई ख्याल ही नहीं किया। चिंता पुरुष की है, रुलाई स्त्री की। पुरुष अपने हृदय में रोता है, उसके उस रोने का कोई गवाह नहीं होता।

सिलविया ही पहले बोली, मैं कुछ समझ नहीं पा रही हूँ, चौधरी ! जहाज का टिकट लौटाना क्या मुमकिन होगा ?

गले को साफ करके शांतनु ने कहा, तुम क्या नहीं जाने की सोच रही हो ? सिलविया ने गम्भीर गले से कहा, ऐसी स्थिति में विक्तर को ले जाना क्या उचित होगा ?

—लेकिन विक्तर की तो अंतिम अवलंब तुम्हीं हो। तुम्हें छोड़ कर वह रहेगा भी क्यों ?

—मैं अब भारत लौटना नहीं चाहती चौधरी।—सिलविया की बेसब्र आँखों में फिर आँसू आ गया।

शांतनु बड़ी देर तक सिर झुकाए बैठा रहा। फिर वह सर झुकाए ही बोला, विक्तर का सारा भार तुम्हीं लो सिलविया। वह लड़का तुम्हारा ही है, उसकी असली माँ तुम्हीं हो। मगर अपना एक अनुरोध मैं तुमसे कह रक्खूँ—

शांतनु को बार-बार गला साफ करना पड़ रहा था। वह फिर बोला, बच्ची की तरह ईशानी मेरे कंधे पर रुपयों का जो बोझ लाद गई है। वह बोझ मेरा नहीं, विक्तर का है। जाने के पहले तुम लोग मेरे कंधे से वह बोझ उतार जाओ सिलविया।

सिलविया ने कहा, तुम उसकी अंतिम अभिलाषा को पूरी नहीं करोगे, यह कैसे हो सकता है चौधरी ? मैं उसे पहचानती थी। वह अपना नाम, परिचय, आत्माभिमान—सब कुछ धो-पोंछ कर तुम्हारे ही पास दौड़ी आ रही थी, तुम्हारे निकट सत्य होने के लिए वह जी-जान से जूझ रही थी—तुमसे उसकी अंतिम आरजू की बात मेरे सिवाय और कोई नहीं जानता है चौधरी ! जीते-जी वह तुम्हारी बहुत उपेक्षा सह गई, लेकिन उसके मरने के बाद तुम यह अन्याय क्यों करोगे ?

शांतनु ने अपने कलेजे की आर्त्त पुकार को जब्त किया। लेकिन उत्तप्त और काँपती आवाज उसके होंठों को चीर कर निकल आई—इसी लिए उस प्रेतनी के अभिशाप को मैं सदा ढोता फिरूँगा सिलविया ? वह मेरे अंतिम प्रश्न का जवाब देगी, मैं इसी का इन्तजार कर रहा था—लेकिन वह जो आ नहीं पाई, यह क्या मेरा अपराध है ?

उसकी आवाज भर्रा गई, इसलिए सिलविया का जवाब वह सुन नहीं सका। शांतनु उठ खड़ा हुआ। उसके बाद संयत स्वर में [illegible], मेरी उत्तेजना को माफ करो सिलविया। मैं और किसी समय आकर [illegible]ना

अंतिम निर्णय बता जाऊँगा। अभी मैं चलता हूँ।

सिलविया ने पूछा, अपनी नई नौकरी की जगह पर तुम कब तक जाओगे ?

शांतनु उलट कर खड़ा हो गया। बोला, जल्दी ही जाने की बात है। क्योंकि वहाँ क्वार्टर बनकर तैयार हो गया है। लेकिन अब इसके बाद मेरी गति-विधि के बारे में कुछ कह सकना कठिन है। लेकिन तुम लोगों को गाड़ी पर चढ़ा देने तक मैं रहूँगा। और इस बीच अगर मेरी कोई जरूरत आ पड़े तो मुझे खबर देना। यह है मेरा पता।

पहाड़गंज की एक भीड़ भरी जगह का ठिकाना लिख कर शांतनु नमस्कार करके उस समय के लिए विदा हुआ।

आकस्मिक अपमृत्यु अपने पैरों की कहीं भी निशानी नहीं रख गई इसलिए सब इन्द्रजाल-सा लग रहा था। जो मौत बिलकुल प्रत्यक्ष होती है, उसका शोक-संताप भी स्पष्ट होता है। महानगरी के रास्तों के इस रूढ़ वास्तव कोलाहल के बीच यह मृत्यु ही अवास्तव लग रही थी। या कि मृत्यु के सिवा जीवन की आख्या में और कोई सत्य नहीं है, इसका कारण यह हो सकता है कि यह वास्तव ही एक अर्थहीन अप्राकृत सपना है। तीसरे पहर के बाद से साँझ के बाद तक शांतनु दिल्ली की सड़कों का चक्कर काटता रहा; चाय पी और यहाँ-वहाँ घूमा, आराम से रामलीला मैदान में घूमता रहा—लेकिन वह जटिलता उसके मन से नहीं गई। वह डाकिनी हर पल कानों में पुकार रही थी, शांतनु के अणु-परमाणु से लिपट गई थी ईशानी। उधर साँझ के आसमान में घटाएँ घिर आईं और मूसलाधार बारिश शुरू हो गई। शांतनु स्थिर होकर बुद्ध की मूर्ति जैसा बैठा रह गया!

पन्द्रह

गाड़ी एक घंटा लेट थी। दिल्ली स्टेशन पर जब पहुँची, तो सवा दस बज रहे थे। पंजाबिन की पोशाक में थकी मारी-सी ईशानी उतरी। संभव है, राजरतन के लिए वह बहुत रोई थी, आँखों के कोने में थकावट और अवसाद की छाया थी। इलाहाबाद के आस-पास पहुँच कर उसे दुर्घटना की खबर मिली। राजरतन अपने पति के पास किसी भी तरह से नहीं पहुँच सकी। मौत की सेज पर पड़ा पति जहाँ जा रहा है, वह पहले से ही वहाँ पहुँच कर उसकी प्रतीक्षा में रही।

नन्दू ने आकर झटपट पोर्टमेंट को उठा लिया। कुली की जरूरत नहीं हुई। वेटिंग रूम में जाकर कपड़े बदल लिए जा सकते थे। लेकिन छोड़ो, कोई संदेह की नजर अगर पीछा करे! कोई जरूरत नहीं। नन्दू को पहले से ही बहुत कुछ जाना-सुना है। इसलिए बाहर निकल कर स्टेशन के सामने उन्होंने एक टैक्सी ली। वैनिटी बैग से सिलविया का ठिकाना निकाल कर ईशानी ने ड्राइवर को दिखाया। टैक्सी चल पड़ी।

ठंढी हवा में अवसाद मानो और भी बढ़ गया। थकावट से ईशानी की आँखें निंदा रही थीं। नई दिल्ली की सारी दूकानें बन्द हो चुकी थीं। कनाट प्लेस में सन्नाटा था। कोई-कोई इलाका चीन्हा-जाना-सा लग रहा था। ईशानी इधर बहुत बार घूम चुकी थी। आज सारा दिन गाड़ी में बड़े कष्ट से बीता। कहीं किसी को कोई उत्सुकता हो, कहीं कोई संदेह से पूछ बैठे, कहीं उसकी यह बनावटी पोशाक अचानक पकड़ में आ जाय! लेकिन तकदीर के जोर से उसका रास्ता निष्कंटक ही हो गया।

नींद से ईशानी की आँखें मुँदती जा रही थीं। आज वह बहुत दिनों के बाद मानों सो पड़ी है। दुर्गम पथ का तीर्थयात्री आज तक बड़े ही अध्यवसाय के साथ, अदम्य उत्साह लिए आगे बढ़ रहा था—आज मानों दूर से मन्दिर का शिखर दिखाई दे रहा है—अपार आश्वास से अनिर्वाण अवसाद ने मानों उसकी आँखों की पलकों को जकड़ लिया।

आखिर ठीक जगह पर आकर टैक्सी रुकी। यह मुहल्ला मानों ज्यादा घनी आबादी का ही। पास ही टैक्सी स्टैंड, उसी के पास कई तांगे खड़े।

शायद कोई उत्सव चल रहा था, पास की कुछ दूकानें खुली थीं। बहुतेरे लोग जाते आते दिखाई पड़ रहे थे।

पोर्टमेंट उतार कर नन्दू ने अपनी जेब से पैसे निकाल कर किराया चुका दिया। टैक्सी वाले ने ही फ्लैट दिखा दिया।

वे दुतल्ले के पाँच नम्बर फ्लैट में रहते हैं। सीढ़ी से ऊपर जाने पर कारीडोर। वहाँ एक बत्ती जल रही थी। ईशानी अचानक ठिठककर खड़ी हो गई। वैनिटी वैग से कलम और कागज निकाल कर जाने क्या तो लिखा और नन्दू के हाथ में देकर बोली, वे लोग मुझे देखकर बहुत अकचका उठेंगे रे। तू वल्कि पहले जा। सिलविया को बुलाकर यह चिट्ठी दे। उसके बाद मैं जाती हूँ।

—जी।—पोर्टमेंट और अपनी गठरी उतार कर नन्दू चिट्ठी लेकर आगे बढ़ा। पाँच नम्बर का यही एक कॉरीडोर था। उधर और कोई नहीं। ईशानी बरामदे की दीवाल के सहारे टिककर खड़ी हुई।

नन्दू दाईं ओर कई डग बढ़ने के बाद ही एक दरवाजे के सामने पहुँचा। दो-तीन बार बटन दबाते ही एक नौकर बाहर निकला। नन्दू ने उसे समझा कर कहा, कलकत्ते से माँ जी आई हैं। तुम जाकर मेम साहब से कहो।

—वह तो सो रही हैं।

—तो क्या हुआ ? जगा दो। यह चिट्ठी देना। दौड़ी आएँगी।

वह नौकर अन्दर गया। और तीनेक मिनट में ही निंदाई आँखों सिलविया पागल की तरह दौड़ी-दौड़ी आई। नन्दू अंगरेजी नहीं जानता, लेकिन दीदी जी के यहाँ आने की बात बताते ही सिलविया दौड़ी आ रही थी और रोशनी में ईशानी को खड़ी देखकर इस कच्ची नींद की खुमारी में अपने को सम्हाल नहीं पाकर वह गिर पड़ी। हाँ-हाँ करके नन्दू और वह नौकर दौड़ा, मगर तब तक ईशानी ने उसे अपनी गोदी में उठा लिया था।

× × ×

घंटे भर बाद ईशानी सिलविया के नौकर दीवानचंद को लेकर बाहर निकली। नौकर के पास शांतनु का ठिकाना था। उसने अब सलवार-कुरता की जगह साड़ी पहनी। सिलविया ने नहा लेने को कहा, मगर मन्दिर के सामने आकर धूल लगे पाँवों दर्शन किए बिना यात्रा सार्थक नहीं होती। उसका हृदय बहुत ही अधीर और चंचल हो उठा था।

ईशानी प्रायः दौड़ती हुई-सी नीचे उतरी।

रात के बारह बज रहे थे। टैक्सी आखिर नहीं मिली। दीवानचंद ने कहा, एक ताँगा कर लूँ माँ-जी!

—यहाँ से है कितनी दूर दीवानचंद?

—जी, ज्यादा दूर नहीं। करीब ही है।

—तो फिर पैदल ही चलो। ताँगा बहुत धीमे चलता है—

ईशानी दौड़ती हुई-सी चली। लगभग तीन घंटे से वह चली नहीं। आधी रात को तेज कदम चलाना अच्छा लग रहा था। काफी दूर निकल गई। धीरे-धीरे बाजार का रास्ता सुनसान हो आया। लेकिन ईशानी के पैरों में चंचलता आई थी, गति में पग ले ज्वार की हवा लगी थी। फिर भी कलेजे में एक आर्त पुकार डैने फड़फड़ा रही थी।

काफी दूर निकल जाने के बाद एक बार वह भय और झिझक से ठिठक गई। ऐसी उद्दाम उत्तेजना लेकर शांतनु के सामने जाकर वह अगर अपने को सम्हाल कर नहीं रख पाए? कहीं उसकी अवसन्न विह्वलता इस आधी रात को शांतनु के यहाँ पहुँच कर इतने दिनों के बंधन को तोड़ कर लुट जाए?

—चलिए, माँ जी—

मुँह उठा कर ईशानी बोली, सुनो, दीवानचंद?

दीवानचंद उसके करीब आया। ईशानी ने धीरे से कहा, मेरी तबीयत ठीक नहीं लग रही है, मैं लौट जाती हूँ। तुम जाकर बाबू से कहो, अगर वही आवें। नहीं, यह कहने की भी जरूरत नहीं। तुम जाकर सिर्फ यह खबर दे आओ।

खोलकर एकाएक दीवानचंद को देखकर बोल उठा, क्या बात है दीवान-चंद ?

दीवानचंद ने सलाम किया। बोला, बहुत ज़रूरी काम है साब, एक नई मेम साहब नौकर के साथ कलकत्ते से आई हैं, वह आपसे मिलना चाहती हैं।

—मेम साहब ?—शांतनु जरा चौंका। लेकिन एकाएक उसे सुषमा की याद आ गई। उसने उत्तेजित होकर कहा, कौन हैं वह ? क्या नाम है उनका ? मुझसे क्या जरूरत है ? इतनी रात को मैं कहीं नहीं जा सकता दीवानचंद !

दीवानचंद ने जरा उलझन में पड़कर कहा, वह मेरे साथ इतनी दूर तक आई थीं, लेकिन फिर आप ही लौट गईं।

भँवें सिकोड़ कर शांतनु ने पूछा, नई मेम साहब ? गोरी है कि साँवली ? दाँत क्या जरा ऊँचा है ?

—नहीं साब', बहुत गोरी हैं। हमारी मेम साहब की दोस्त हैं। मेम-साहब उन्हें देखकर रोती हुई बेहोश हो गईं।

सिलविया बेहोश हो गई थी ? अजीब है ! लेकिन सिलविया से सुषमा का कभी परिचय नहीं हुआ ! तो ?

—अच्छा, तुम जाओ दीवानचंद, मैं तब तक देखता हूँ—

दीवानचंद के चले जाने के बाद शांतनु फिर कागज-पत्तर लेकर बैठा। शाम को वह रामलीला मैदान में भीगता रहा था, इससे थोड़ा बुखार-सा हो आया था। सिर भारी-भारी लग रहा था। लेकिन वह कागज-पत्तर में ध्यान नहीं दे सका। आकर बिस्तर पर लेट गया, तकिए के नीचे सुबह से मोड़े हुए अखबार को निकाल कर देखने लगा। लेकिन बहुत जरूरी कुछ नहीं होता तो सिलविया इतनी रात को आदमी नहीं भेजती लिहाजा आखिर कर शांतनु को उठना ही पड़ा। कुरता पहना, बत्ती बुझाई और दरवाजे की जंजीर चढ़ाकर वह सड़क पर उतर आया।

सीढ़ी के पास पैरों को हल्की-सी आहट हुई। धीरे-धीरे छायामूर्ति की नाईं शांतनु सिलविया के पास जाकर खड़ा हुआ। सिलविया ने आँखें फेरीं, उसकी दोनों आँखें आँसुओं में डूबी हुई थीं। इस अंगरेज युवती ने आज तक जो कभी नहीं किया था, वही कर बैठी। एकाएक शांतनु का हाथ पकड़ कर वह जोरों से रो पड़ी, चौधरी !

—क्या बात है सिलविया ?

—तुम क्या यह यकीन करते हो कि महत् प्रेम की कभी मृत्यु नहीं होती ?

शांतनु अनुभव कर रहा था, सिलविया की ठण्डी सख्त मुट्ठी थर-थर कांप रही है। संयत स्वर में शांतनु ने कहा, हाँ, यकीन करता हूँ सिलविया।

—तो फिर उस कमरे में जाओ!—कहकर सिलविया उधर से कहाँ जाने गायब हो गई।

शांतनु ने कमरे की तरफ ताका। अंदर रोशनी जल रही थी। भीतर कोई हिल-डोल रहा था। शांतनु कुछ समझ नहीं सका। वह परदा हटाकर अंदर गया। ईशानी ने शांतनु की ओर ताका।

उधर वाले कमरे में अश्रु-विगलित आँखों सिलविया विस्तर के सिरहाने उत्कर्ण होकर खड़ी थी। उसके कानों में आर्त्तस्वर-सा सुनाई पड़ा। हृदय के असह्य आवेग को नहीं सह पाकर कठिन संयत प्रकृति का पुरुष आज मानो टूटकर चूर-चूर हो गया। लेकिन पाँचेक मिनट की चुप्पी के बाद उस विदेशिनी के कानों में ईशानी के दबे गले की जो आँसू से वकुलाई भाषा आई, उस दुर्बोध्य भारतीय भाषा की मिठास से वह वंचित रही। किसी तरह की रोक आज ईशानी की वेदना के प्रलाप में नहीं रह गई थी। आज उसे कोई डर नहीं था। खोने,का डर नहीं, पाने का डर नहीं, दुःख और विपदाओं का भी कोई डर नहीं। लेकिन उसकी लाज के संकोच में जो अनिर्वचनीय अमृत आज तक यक्ष के धन की तरह छिपा हुआ था, शांतनु ने आज मानो उसका परम स्वाद पाया।

पन्द्रह मिनट के बाद एक ट्रे में तीन प्याला गरम कॉफी लेकर सिलविया कमरे में आई। बोली, मैं लेकिन आज तुम्हें वापस नहीं जाने दूँगी शांतनु। सारी रात बैठकर हम लोग ईशानी की बात सुनेंगे।

आँखों का आँसू पोंछ कर भर्राए गले से ईशानी बोली, ईशानी हवाई दुर्घटना में मर गई सिलविया। मैं माधवी हूँ। ईशानी का सारा परिचय ही मिट जाय।

ईशानी विस्तर ,के कमरे में जाकर खड़ी हुई—फूलों का गुलदस्ता मानों विस्तर के सामने लिटाया हुआ हो। ईशानी धीरे-धीरे आगे बढ़ी और सोए विक्तर के गले से लिपटकर उसके ललाट को एक बार बड़े स्नेह से चूमा।

बाकी रात उन लोगों ने दक्षिण के बरामदे में बैठकर बिता दी। सवेरे छह बजे दीवानचंद चाय ले आया और सवेरे सात बजे...

कर विक्तर को स्नेह-जतन करने लगे तो नंदू ने आकर बताया, एक सज्जन सिलविया से मिलने के लिए आए हैं। इसी मौके से ईशानी नहाने चली गई। विक्तर को स्कूल भेजकर उसे जल्दी से शांतनु के साथ बाहर जाना होगा।

सिलविया दरवाजे के बाहर जाकर खड़ी हुई। बड़े ही उदास और शोक से मुरझाए मुँह से दत्त चौधरी मिलने के लिए आए थे। उनसे हाथ मिलाकर सिलविया ने उन्हें बाहर के कमरे में ले जाकर बिठाया। उन्होंने समवेदना दिखाते हुए कहा, ईशानी राय के मरने की खबर से दिल्ली में सभी शोकाकुल हुए हैं। सभी अखबारों में उनकी तसवीर छपी है। लेकिन हमें इसका बहुत ज्यादा सदमा है, इसलिए कि हम लोग उन्हें व्यक्तिगत तौर पर जानते थे।

सिलविया ने पूछा आपकी स्त्री कैसी हैं ?

—उन्हीं को लेकर कल सारा दिन अस्पताल में रहना पड़ा था, इसी लिए मैं आप लोगों से मिलने के लिए नहीं आ पाया। रात के कोई एक बजे उन्होंने एक लड़के को जन्म दिया। लेकिन आप लोगों के इस गहरे शोक के आगे हमारी खुशखबरी दब गई।

सिलविया सिर झुकाए चुप रही। जरा देर में बोली, आपने ईशानी राय को कब देखा है ?

दत्त चौधरी ने कहा, मैंने उन्हें रीगल सिनेमा के मंच पर देखा था। उस समय चित्रांगदा के वेश में थी।

—आपसे बातचीत नहीं हुई ?

—बहुत थोड़ी-सी ही बातचीत हुई। मगर मेरी स्त्री बाद में जाकर उनसे काफी बातचीत कर आई थीं। मुझे जीवन में यही एक दुःख रह गया कि उनकी जैसी प्रतिभा से घनिष्ठ परिचय नहीं हो सका।

दीवानचंद एक प्याला चाय ले आया। दत्त चौधरी ने फिर पूछा, बंबई जाने की तारीख क्या आप लोगों की तै ही है ?

सिलविया बोली, जी हाँ। हम लोग उसी दिन रवाना होंगे।

समवेदना के स्वर में दत्त चौधरी कहने लगे विक्तर हमें बड़ा अच्छा लगा था। माँ-बाप विहीन वैसे सुन्दर लड़के को हम कोई भी नहीं भूल सकेंगे ! विलायत से बीच-बीच में उसका समाचार पाने से हमें बड़ी खुशी होगी। आज ईशानी राय जिंदा नहीं हैं, मगर मेरी स्त्री की कैसी तो एक धारणा है कि विक्तर ईशानी राय का ही लड़का है। शायद हो कि अपने

जीते जी इस बात को जाहिर करने का उन्हें कोई उपाय नहीं था। दुनिया में ऐसी अनोखी घटना होती तो है!

नहाकर ईशानी जैसे ही निकली, शांतनु ने मुस्कराकर कहा, उस कमरे में दत्त चौधरी बैठे हैं भेंट करेगी उनसे?

ईशानी ने शांतनु के हँसते हुए प्रशांत चेहरे की ओर एक बार ताका। बोली, भेंट करने में क्या हर्ज है। तू जाकर बैठ, मैं आती हूँ।

शांतनु बाहर गया। विक्तर बगल के कमरे में पढ़ रहा था। उसने मुँह घुमाकर परदे की फाँक से तुरत ही नहाई हुई ईशानी की ओर एक बार ताका। उसके बाद दौड़कर अपनी अनजानी जननी से लिपट कर उसने कहा, मम्मी, मुझे एक वचन दोगी?

विक्तर का गाल चूमकर ईशानी ने मुस्कराकर कहा, क्या, कहो!

—तुम लेकिन अब मरने नहीं पाओगी।—इतना ही कहकर विक्तर फिर दौड़कर अपनी पढ़ाई में जा बैठा। उसका मतलब था कि उसकी यह लुकाछिपी कोई देख न ले।

ईशानी के सारे शरीर पर कहीं कोई शृंगार नहीं। गीले बालों को उसने पलट लिया था। बहुत ही मामूली साड़ी और सादा-सा ब्लाउज दोनों कलाई में दो-दो चूड़ियाँ। गले या कान में, कहीं कुछ नहीं। पैरों में चप्पल डालकर वह दत्त चौधरी के पीछे से होकर उस कमरे में आई। सिलविया और शांतनु सामने बैठे थे।

सिलविया ने कहा, अपनी दोस्त से आपका परिचय कराऊँ। यह कल कलकत्ते से आई हैं।

दत्त चौधरी एकाएक चौंककर अवाक् रह गए। नमस्कार करना भूल गये। लेकिन उस सन्नाटे में केवल उन्हीं की बेचैनी जाहिर हो रही थी। उन्होंने शांतनु से कहा, लगता है, मैं इन्हें पहचानता हूँ।

शांतनु ने कहा, अरे वाह! पहचानते हैं क्या?

कपाल का पसीना पोंछ कर दत्त चौधरी ने कहा, आपका नाम क्या माधवी है? पुकार का नाम माधू?

शांत और भद्र हँसी के साथ ईशानी ने कहा, जी हाँ। आपका नाम भी मैं नहीं भूली हूँ।—यह कहकर उसने अपने आँचल के कोने से एक नोटबुक निकालकर कहा, यह आप हमारे फूलकाठी के घर में छोड़ आए थे। आपके ऊपर की जेब में था यह। आपको इसी कमरे [illegible] में

दत्त चौधरी ने कहा, नहीं।

सिलविया और शान्तनु, दोनों चुप! ईशानी ने साफ गले से कहा, लेकिन उन्हें यह बताना आवश्यक है कि मैं आपकी पहली संतान की माँ हूँ!

दत्त चौधरी ने सर उठाया! बोले, आपकी इस धारणा का मतलब मैं ठीक समझ नहीं सका। मुझे माफ कीजियेगा।

सिलविया ने अब मीठे स्वर में कहा, आपकी स्त्री की धारणा ही ठीक है मिस्टर दत्त चौधरी। यही विक्तर की माँ हैं।

—विक्तर की माँ! यानी जो विक्तर हमारे यहाँ था?

—जी हाँ।

दत्त चौधरी बड़ी देर तक सर झुकाये रहे। उसके बाद सिर उठाकर बोले, सबेरे ईशानी राय की अकाल मृत्यु पर समवेदना प्रकट करने के लिए आया था। हाँ, यह बात सच है। इन्हें मैं पहचानता हूँ। एक समय इनसे परिचय भी हुआ था। लेकिन आप सबके मन में एक ऐसी साजिश है, यह मुझे मालूम नहीं था। आप लोगों से घनिष्ठता करना ही मेरी भूल हो गई है।

ईशानी बोली, आप क्या सारी घटना से ही इनकार करना चाहते हैं?

—विक्तर मेरा लड़का है, यह मैं हरगिज नहीं मानूंगा।

—मानिए मत, विश्वास तो करते हैं?

दत्त चौधरी बोले, जब मानता ही नहीं तो विश्वास करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

ईशानी ने कहा, विश्वास क्यों नहीं करते?

—जो जानने से परे हैं, ज्ञान के अतीत है, जो बात धारणा में भी नहीं है, वह अगर मेरे कंधे पर लदे, तो उसे मानूंगा भी नहीं, विश्वास भी नहीं करूँगा।

लेकिन आपका और मेरा दस साल पहले का सारा रेकर्ड अस्पताल में है, इस नोटबुक की नकल और फोटू—सब वहाँ है। आप क्या अदालत के हाकिम के सामने खड़े होकर भी यह सब अस्वीकार करेंगे? इस नोटबुक में आपकी जो तसवीर चिपकी हुई है, हाकिम क्या इसको लेकर भी विचार नहीं करेंगे?

रूमाल से मुंह पोंछकर दत्त चौधरी ने उत्तेजित होकर कहा, आप लोगों का इरादा क्या है? हमारे पारिवारिक जीवन की सारी सुख-शांति

मटियामेट हो जाय ? मेरी स्त्री सदा घृणा और संदेह लिए रहे, आप क्या यही चाहते हैं ?

ईशानी शांत होकर उनकी ओर ताक रही थी। अबकी सिलविया ने कहा, आप बेफिक्र रहें मिस्टर दत्त चौधरी, आपके बारे में कोई बुरा मनसूबा माधवी का नहीं है ! आप उसके पति भी नहीं, यहाँ तक कि प्यार के पात्र भी नहीं। मैं समझ सकती हूँ, पुरुष के सामाजिक और नैतिक दायित्व को पालन करने का सुयोग आपको नहीं मिला। तर्क-वितर्क से या अदालत में जाकर इस समस्या का हल नहीं निकलेगा। आप अगर हम लोगों की सलाह मान लें तो यह बात कभी आपकी स्त्री के कानों तक भी नहीं पहुँचेगी।

बेबस और बदरंग चेहरे से दत्त चौधरी ने कहा, कहिए, मुझे क्या करना होगा ?

—विक्तर को लेकर मेरे विलायत जाने से पहले आप इस आशय का एक कागज रजिस्ट्री कर दें कि विक्तर मेरी पहली संतान है लेकिन उसकी माँ माधवी राय से मेरा कोई वैवाहिक नाता नहीं है। माधवी संपूर्ण स्वाधीन है। इसके गवाह होंगे शांतनु और मैं और हस्ताक्षर करेंगी माधवी राय।

—ऐसा कागज लिख देने से क्या कोई सुविधा होगी ?

अबकी गला साफ करके शांतनु ने अपनी राय जाहिर की। बोला, आपको शायद पता नहीं है, माधवी को मैंने अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण किया है, मगर आप इस राह के रोड़े हो रहे हैं। यह कागज उस रोड़े को दूर करेगा !

—अच्छा ! यानी ब्लैकमेल ?—दत्त चौधरी एकाएक गरज उठे, अब सब समझा। पहले मेरी बात का जवाब दीजिये। विक्तर शांतनु चौधरी का लड़का नहीं है, इसका सबूत क्या है ?

—चुप रहो सूअर !—ईशानी चेयर से उछल पड़ी। वह जी-जान से चीखीं—नंदू ! दीवानचंद !

पलक मारते ही सिलविया ने झपट कर ईशानी को जकड़ लिया। छिः माधवी, ये हमारे अतिथि हैं न ! संयम मत खोओ।

शांतनु जरा हँसा। बोला, मिस्टर दत्त चौधरी, आपकी ही बात माने लेता हूँ। विक्तर मेरा ही लड़का है, उसे प्यार करता हूँ, इसलिए मेरा है। सच पूछिए तो प्यार ही तो पितृत्व है ! लेकिन मैं अपनी स्नेह की [illegible]

कमला की सोच रहा हूँ। जिसके वैसी साध्वी स्त्री है, वह कापुरुष क्यों होता है अरुण बाबू ?

दत्त चौधरी शांत हो गए। बोले, मेरी परिस्थिति में पड़ने पर पुरुष-मात्र ही कापुरुष होते हैं शांतनु बाबू !

—होते हैं, माना। लेकिन जिस निरपराध स्त्री ने अपनी सारी जिंदगी आपके लिए सारे कलंक और उत्पीड़न को मान लिया, उसके प्रति आप पुरुष का विचार कीजिए ! वह आपकी स्त्री होतीं, तो शायद आपको मुसीबत होती। वह मगर वह नहीं हैं। आप सिर्फ अपनी संतान को मान लें, वह उसी से सुखी होंगी। स्त्री और पुरुष के जीवन में बहुत ही गिरावट होती है, भूल-चूक होती है, लेकिन मनुष्यता का बोध उन सबको जलाकर निर्मल कर देता है मिस्टर दत्त चौधरी !

सिलविया ने कहा, हम वचन देते हैं कि आपकी स्त्री के पास यह सब घटना कभी प्रकट नहीं होगी।

दत्त चौधरी ने कहा, उनसे अगर कभी आप लोगों की भेंट मुलाकात हो ?

शांतनु ने कहा, नहीं। हम सभी जल्दी ही दिल्ली से चले जा रहे हैं।

—लेकिन भविष्य में विक्तर कभी लौटकर अगर मेरी संपत्ति पर दावा करे ?

—यह तो बहुत स्वाभाविक है—शांतनु ने कहा, वह आपका लड़का है, दावा तो उसका है। लेकिन आपको यह बता दूँ, उन सबके विलायत जाने के पहले मैं लिखा-पढ़ी करके आपसे विक्तर को 'दत्तक' ले लूँगा। आशा करता हूँ, इसमें आपको आपत्ति नहीं होगी !

अरुण बाबू ने झट उठकर शांतनु को बंधु की नाईं गले लगाया। बोले, मैं आपका सदा के लिए एहसानमंद रहा। उस समय मैंने आप पर चोट की, मुझे माफ कीजिएगा।

शांतनु ने कहा, चोट मुझे लगी नहीं अरुण बाबू। माधवी से मेरा परिचय अभी साल भर का भी नहीं हुआ। लेकिन मैंने जिन्हें पत्नी मान कर ग्रहण किया, उनके पाँव के नीचे के एक-एक काँटे को मैं अपने हाथ से हटा देना चाहता हूँ। मेरे जीवन की वही सार्थकता है !

ईशानी चुप बैठी थी। दत्त चौधरी अब उठ खड़े हुए। ईशानी राय का कोई रहस्य उन्हें बताया नहीं गया और उनकी स्त्री कमला के अस्पताल से निकलने के पहले ही इन लोगों ने दिल्ली छोड़ देने का निश्चय

कर लिया।

दत्त चौधरी ने कहा, ठीक है, मैं भी वचन दिए जाता हूँ, इसी सप्ताह के अन्दर आप [illegible] मुताबिक सब कागज-पत्तर में रजिस्ट्री कर दूँगा। लो, आज चलता हूँ।

ईशानी झुककर शांतनु के पैरों के पास लोट पड़ी। वेसब्र रुलाई के मारे उसने शांतनु के पाँव को जकड़ लिया। गोले वालों के गुच्छे शांतनु के पाँवों पर बिखर पड़े। [illegible] अंतिम कीमत चुकाने के लिए आँखों के आँसू के सिवा ईशानी को [illegible] कोई संबल नहीं था।

शांतनु चुप हो रहा। उसने [illegible] बाधा नहीं दी। आँसू गीली धीमी आवाज से ईशानी ने कहा, मुझे [illegible] रोने दे शांतनु, अपना सारा परिचय मैं भेंट कर आई हूँ—तेरे पैरों [illegible] जिनमें मैं जीवन-मणि की जगह खोज पाऊँ।

शांतनु ने भी अपनी आँखें पोंछीं। [illegible] तुझे दुःख में मैंने नहीं पाया, तेरे लिए आँखों में आँसू भी नहीं बहाया [illegible] बड़ी आसानी से आई थी, इसीलिए मैं अहंकार के मारे जर्जर था। [illegible] उसी अहंकार पर आघात नहीं किया, इसीलिए बड़े शोचनीय [illegible] में मेरे दिन बीते। खैर, वह ईशानी मर गई, वह मैं भी जिंदा नहीं [illegible]। अब नए जीवन में चलो; सहज, साधारण, स्वाभाविक जीवन में। अजाने, [illegible] पहचाने लोगों के बीच हम अपने को नए सिरे से गढ़ें—चलो—

ईशानी ने कहा, हाँ, वहीं चल शांतनु, जहाँ कोई न पहचाने, [illegible] न खोजे...

× × ×

कौशल्या नदी के किनारे-किनारे लगभग तीन मील जाने पर पहाड़ी बगल में तेज प्रवाह ने जरा मोड़ लिया है। वह [illegible] होकर [illegible] उपत्यका में उतर आया है। आसपास के अरण्यलोक में प्रथम हेमन्त की रंगीन चिड़ियाँ आई हैं। वनमल्लिका की झाड़ियाँ अभी भी [illegible] हैं, सेव के बगीचे में रंग चढ़ा है। [illegible] अनार और [illegible] के [illegible] में पतंगों ने अभी से ही जाना-आना [illegible] कर दिया है। नीले निर्मल आकाश में राजहंसों के [illegible] जैसे बादल उड़े जा रहे हैं। [illegible] से थोड़ी दूर। पहाड़ी टीले की एक गोदी पर लकड़ी का छोटा-सा मकान। [illegible] वाले [illegible] और अपराजिता की [illegible] ने बहुत [illegible] से [illegible] रखी [illegible]। फूल के पौधों ने बरामदा मानो [illegible] हुआ था। [illegible] के [illegible] जन के